ॐ

स्वामी शरण कृत

वेदायन

सरल पाठ, काव्यानुवाद, मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ सहित

प्रकाशक

पालीवाल प्रकाशन

117/एच-1/02, पालीवाल भवन, पाण्डु नगर, कानपुर

सहयोग राशि : पाँच सौ रुपये

पुस्तक	:	वेदायन
लेखक	:	स्वामी शरण
सर्वाधिकार	:	लेखकाधीन
संस्करण	:	प्रथम 2019
सहयोग राशि	:	रु. 500/—
प्रकाशक	:	**पालीवाल प्रकाशन** 117/एच-01/02, पालीवाल भवन, पाण्डु नगर कानपुर - 208005
मुद्रक	:	**पालीवाल प्रकाशन** 117/एच-01/02, पालीवाल भवन, पाण्डु नगर कानपुर - 208005

VEDAYAN
BY SWAMI SHARAN

सहयोग राशि : पाँच सौ रुपये

ॐ

स्वामी शरण कृत

वेदायन

सरल पाठ, काव्यानुवाद, मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ सहित

विषय-सूची

1. प्रस्तावना 5
2. वेदायन : एक दिव्य अभियान 7
3. भूमिका 8
4. निवेदन 9
5. वेद परिचय : प्रमुख तथ्य तथा मान्यतायें 11
6. वैदिक (आर्ष) साहित्य 14
7. ऋग्वेद 15-107
1. अग्नि सूक्त (मण्डल 1, अनुवाक 1, सूक्त 1) 15
2. इन्द्र सूक्त (मण्डल 2, अनुवाक 26, सूक्त 12) 27
3. पुरुष सूक्त (मण्डल 10, अनुवाक 80, सूक्त 90) 56
4. हिरण्यगर्भ सूक्त (मण्डल 10, अनुवाक 83, सूक्त 121) 80
5. सङ्गठन सूक्त (मण्डल 10, अनुवाक 85, सूक्त 191) 100
7. सामवेद 107-127
6. अग्नि सूक्त (अध्याय 1, सूक्त 1) 107
7. स्वस्ति सूक्त (अध्याय 28, सूक्त 9) 121
8. अथर्ववेद 127-181
8. मेधाजनन सूक्त (काण्ड 1, अनुवाक 1, सूक्त 1) 127
9. अध्यात्म सूक्त (काण्ड 15, अनुवाक 87, सूक्त 3) 134
10. जीवन सूक्त (काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 67) 147

11. कर्म सूक्त (काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 68) 150
12. जीवन सूक्त (काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 69) 152
13. जीवन सूक्त (काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 70) 155
14. वेद सूक्त (काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 71) 157
15. वेद सूक्त (काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 72) 159
16. अश्विना सूक्त (काण्ड 20, अनुवाक 111, सूक्त 143) 162
9. यजुर्वेद 181-153
17. सविता सूक्त (अध्याय 1, सूक्त 1) 181
18. व्रत-दीक्षा सूक्त (अध्याय 5, मन्त्र 40-43) 194
19. सूची सूक्त (अध्याय 23, मन्त्र 33-38) 201
20. सविता सूक्त (अध्याय 30, मन्त्र 1-5) 211
21. वसु सूक्त (अध्याय 31, मन्त्र 5) 217
22. ब्रह्म सूक्त (अध्याय 32, मन्त्र 1-10) 220
23. शिवसङ्कल्प सूक्त (अध्याय 34, सूक्त 1) 236
24. वेद स्तुति (अध्याय 36, सूक्त 1) 246
25. वेद स्तुति (अध्याय 36, सूक्त 2) 251
26. वेद स्तुति (अध्याय 36, सूक्त 3) 256
27. वेद स्तुति (अध्याय 36, सूक्त 4) 264
28. वेद स्तुति (अध्याय 36, सूक्त 5) 271
29. ओम् स्तुति (अध्याय 40, सूक्त 1) 281
30. ओम् स्तुति (अध्याय 40, सूक्त 2) 290
31. ओम् स्तुति (अध्याय 40, सूक्त 3) 295
32. ओम् स्तुति (अध्याय 40, सूक्त 4) 299
33. ओम् स्तुति (अध्याय 40, सूक्त 5) 303

ॐ

प्रस्तावना

वेद भारतीय संस्कृति व सनातन धर्म का आदि उद्‌गम मूल आधार है। यह विश्व का सर्वमान्य प्राचीनतम साहित्य और समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं धर्म-संस्कृति का मूल स्रोत भी है। प्राचीन काल से वेद का स्वाध्याय तथा उसी के अनुसार आचरण ही एक मात्र धर्म माना जाता रहा है। निराकार परमात्मा वेद के रूप में हमें प्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध होते हैं। वेद में प्राकृतिक शाश्वत सत्य का ही वर्णन है, किसी व्यक्ति, कथा, कहानी या किसी विशेष समय की किसी घटना का नहीं, इसीलिए इसे शाश्वत धर्म-विश्व धर्म-मानव धर्म या सनातन धर्म का प्रतिरूप कहा जाता है। वेद की रचनाओं को ही मन्त्र कहा जाता है। अन्य ग्रन्थों में श्लोक, पद्य, वाक्य आदि होते हैं, मन्त्र नहीं। वेद के अतिरिक्त किसी अन्य श्लोक, पद्य, वाक्य को मन्त्र नहीं कह सकते हैं। यह किसी भौगोलिक, धर्म-सम्प्रदाय व समय सीमा से भी परे, सभी के लिए है और इसीलिए इसमें आज की समस्त समस्याओं, विवादों, मतभेदों को दूर करने के उपाय हैं। वेदों में मानव समाज के लिए आवश्यक सम्पूर्ण श्रेष्ठ विचार उपलब्ध हैं, जो कि मात्र आस्था-विश्वास पर आधारित न होकर पूर्णतः तर्कसंगत व प्रामाणिक हैं।

वेद और वैदिक संस्कृत भाषा सनातन धर्म के मूल आधार है। सनातन धर्म के सभी सम्प्रदाय वेद, वैदिक संस्कृत तथा युगाब्द को मानते हैं। सभी ग्रन्थों में वेदों को ही धर्म का स्रोत बताया गया है और यही सनातन धर्म की एकता का आधार है। इतना सब होते हुए भी वेदों का प्रस्तुतीकरण क्लिष्ट रूप में होना एवम् सरलता से जनसुलभ न होना ही इसके सदुपयोग में एकमात्र बाधा है। इसी परेशानी को समझते हुए स्वामी शरण जी एवं उनके सहयोगियों ने वेदों के सरलीकरण व सर्वसुलभ करने का

बीड़ा उठाया और सभी वेदों के प्रामाणिक भाष्य का कार्य किया है। इसी के साथ-साथ विश्व में पहली बार वैदिक शब्द कोश और बृह्द् तथा सम्पूर्ण वैदिक धातु कोश भी तैयार किया है।

प्रत्येक भारतीय परिवार में वेद की स्थापना हो तथा वैदिक मन्त्र गुंजायमान हो, इसके लिए प्रस्तुत **'वेदायन'** एक महत्वपूर्ण प्रयास है। लघु वेद के रूप में प्रस्तुत इस **'वेदायन'** में चारो वेदों के चुने हुए प्रमुख सूक्त-मन्त्र सरल रूप में प्रस्तुत किये गये हैं और इसके मन्त्रार्थों को काव्य रूप (पद्यपाठ) में हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है। इसकी मूल भावना को समझाने के लिए और मनन करने के लिए विशेष रूप से भावार्थ भी दिया जा रहा है, जिससे परिवार के सभी सदस्य इसका नियमित पाठ व मनन-चिन्तन कर स्वयं व परिवार को वेदमय बना सकें। यजुर्वेद का अन्तिम मन्त्र ॐ महामन्त्र भी प्रमुख गायत्री मन्त्र है - **ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ॐ खम् ब्रह्म।** यह मन्त्र सम्पूर्ण वेद के मूल तत्व को व्यक्त करता है। समय का अभाव होने पर भी इसका पाठ व मनन चिन्तन यथासम्भव अधिक से अधिक अवश्य करना चाहिए। परमात्मा की तरह वेद पर भी सभी का (सम्प्रदाय, लिंग, वर्ण से परे) समान अधिकार है। प्रत्येक घर में वेद मन्दिर की स्थापना वेद पुस्तकों के रूप में होनी चाहिए। इसके स्वाध्याय से अनेक रूढ़ियों, कुरीतियों तथा अन्ध-विश्वासों का निराकरण ऐसे ही हो जाता है जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार का। सम्पूर्ण चारो वेदों का रखना व पढ़ना बहुत से लोगों के लिए कठिन हो सकता है, अतः यह वेदायन लघु वेद के रूप में आपके चरणों में समर्पित है। यह आपके पूरे परिवार के लिए बहुत उपयोगी होगा, ऐसा विश्वास है।

डॉ. उमेश पालीवाल

मैनेजिंग डायरेक्टर, पालीवाल डायग्नोस्टिक्स प्रा. लि.

प्रेसीडेण्ट - आरोह फाउण्डेशन, बिठूर

संस्थापक - पालीवाल प्रकाशन

ॐ

वेदायन : एक दिव्य अभियान

वेद के महत्व से सभी परिचित हैं, परन्तु सरल, सुबोध, निष्पक्ष, प्रामाणिक भाष्य उपलब्ध न हो पाने से जन सामान्य प्रत्यक्षतः वेद से जुड़ नहीं सका है। प्रचलित वेद भाष्यों में निष्पक्ष अर्थ न कर अपनी ओर से बहुत कुछ जोड़कर अपनी मान्यता के अनुसार वेद भाष्य करने का प्रयास किया गया है। इस अभाव को दूर करने के लिए समर्पित वेदोपासक श्री स्वामी शरण जी ने लघु वेद के रूप में **वेदायन** का प्रणयन किया। उसमें प्रस्तुत संयुक्ताक्षरों तथा सन्धियों से मुक्त सरल पाठ तथा व्याकरण सम्मत प्रामाणिक निष्पक्ष सरल भाष्य जन सामान्य के लिए स्वीकार्य तथा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

प्रतिष्ठित जमींदार परिवार में जन्मे श्रद्धेय श्री कृष्ण कुमार पालीवाल जी एवम् संस्कार मूर्ति श्रीमती आशा पालीवाल जी के वैदिक आशीर्वाद से ही परिवार में जन्मदिन आदि सभी शुभ अवसर वैदिक संस्कारों के साथ सम्पन्न होते रहें। घर में संचालित वैदिक साहित्य केन्द्र में वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण आदि आधारभूत प्रमुख साहित्य सहज रूप में उपलब्ध रहा। इसका लाभ इस अभियान के मुख्य संयोजक श्री स्वामी शरण जी को भी बाल्यावस्था से ही मिला। इसी आध्यात्मिक वातावरण का प्रतिफलन है शुद्ध वैदिक धर्म-संस्कृति के प्रचार-प्रसार का शिवसंकल्प। आप भी इस दिव्य अभियान से जुड़ें और वेदमाता का आशीर्वाद प्राप्त कर लाभान्वित हों।

डॉ. मृदुला पालीवाल

सचिव, पालीवाल प्रकाशन एवम् सोसाइटी

ॐ

भूमिका

'वेदायन' चारो वेदों का संक्षिप्त, सारभूत एवं काव्यानुवाद सहित एक लघु रूप है। वस्तुतः श्री स्वामी शरण जी (जो कि वेदों के निमित्त एक पूर्णतः समर्पित व्यक्तित्व हैं) के कृतित्व का एक अनुपम झरोखा है **'वेदायन'**। तटस्थ एवं निष्पक्ष रहते हुए वेद-मन्त्रों का काव्यानुवाद कर पाना उनके ही वश की बात है। इसमें चारो वेदों के प्रथम व अन्तिम सूक्तों सहित प्रमुख वेद सूक्तों का सरल पाठ सम्मिलित किया गया है। यह पुस्तक दैनिक पाठ, उपासना एवं वैदिक सत्संग हेतु अत्यन्त उपयोगी है।

समाजसेवी एवं वेदभक्त डॉ. उमेश पालीवाल ने वैदिक संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए सम्पूर्ण वेद भाष्य के सरलीकरण एवं प्रकाशन का 'शिवसंकल्प' लिया है। इसी उद्देश्य से पालीवाल प्रकाशन का सृजन हुआ था। आपके सहयोग से ही सम्पूर्ण **यजुर्वेद** भाष्य, सम्पूर्ण **सामवेद** भाष्य, **ऋग्वेद** भाष्य - संक्षिप्त संस्करण एवं **अथर्ववेद** भाष्य - संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित हो चुका है। इसी के साथ विश्व में पहली बार **वैदिक शब्दकोश** एवं **बृहद् एवम् सम्पूर्ण वैदिक धात्वादि कोश** का भी प्रकाशन किया जा चुका है। वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए **'सम्पूर्ण स्वास्थ्य'** पत्रिका का प्रकाशन भी पिछले आठ वर्षों से अनवरत् किया जा रहा है।

वर्तमान पीढ़ी वैदिक साहित्य से विमुख न होने पाये, इस दिशा में यह एक स्तुत्य प्रयास है। आवश्यकता है सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय को इसी भाँति प्रस्तुत करने की जिससे हमारे नवयुवक एवं नवयुवतियाँ भारतीय संस्कृति से संयुक्त रहें तथा जीवन को सार्थक बनाने में विपुल रत्नराशि को आत्मसात् कर धन्य हो सकें। इस दुर्गम मार्ग को सुगम बनाने हेतु स्वामी शरण जी को शतशः नमन एवं साधुवाद।

आ नो भद्राः कृतवो यन्तु विश्वतः।

डॉ. कृष्णदत्त

(पूर्व मनोवैज्ञानिक के. जी. एम. यू. लखनऊ)

ॐ

निवेदन

हमारे अध्ययन, चिन्तन, लेखन ही नहीं, जीवन का मुख्य उद्देश्य वेद का स्वाध्याय-साधना ही है। हमारी मान्यता है कि वेद भगवान् ही हमारे गुरु हैं। वेद ही परमात्मा का शब्द-शरीर तथा प्रत्यक्ष रूप है। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा भारतीय धर्म-संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद का पाठ तथा स्वाध्याय करना हमारा परम धर्म है। हमारी मान्यताएँ, चिन्तन तथा आचार-विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए।

वेद में सूक्त ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विभाग हैं, अतः सूक्त को ही व्यावहारिक दृष्टि से इकाई मानते हैं। वेद में एक मन्त्र से लेकर शताधिक मन्त्रों वाले सूक्त भी हैं। वेदायन वेदों का लघु रूप है। इस पुस्तक में चारो वेदों के प्रथम व अन्तिम सूक्तों सहित प्रमुख वेदसूक्तों का सरल पाठ, काव्यानुवाद, मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ प्रस्तुत किया गया है। काव्यानुवाद-पद्यानुवाद में भी ध्यान रखा गया है कि वेदमन्त्रों का अर्थ तटस्थ तथा निष्पक्ष रूप में प्रस्तुत किया जाये। पद्यानुवाद में यह कार्य निश्चित रूप से कठिन है, परन्तु ईश्वर की कृपा से जो कुछ सम्भव हो सका है, वह सेवा में प्रस्तुत है। आधुनिक काल में संस्कृत जन-साधारण की भाषा नहीं रह गयी है, अतः वेदमन्त्र के शब्दों का वास्तविक अर्थ अर्थात् शब्दशः अनुवाद प्रस्तुत करना आवश्यक हो गया है। हमने अपने वेदभाष्य में धातुज अर्थ स्पष्ट करते हुए मन्त्रार्थ में शाब्दिक अनुवाद किया है। इस प्रयास में न्यूनतायें सम्भव हैं, परन्तु एक दिशा तो मिल ही गयी है। दोषदर्शन की तुलना में श्रेष्ठतर प्रयास सदैव अनुकरणीय है। भविष्य में सम्पूर्ण वेद को इसी रूप में प्रस्तुत किया जा सके तो अति उत्तम होगा। आशा की जानी

चाहिए कि हमारे सहयोगी वेदप्रेमी विद्वान् इस कार्य को पूर्ण करेंगे।

दैनिक उपासना तथा पारिवारिक वैदिक सत्संग के लिए यह पुस्तक जन सामान्य के लिए उपयोगी है। उच्चस्तरीय वैदिक उपासकों को तो किसी प्रतीक कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु जनसामान्य को प्रतीक-पूजा का आश्रय भी चाहिए। वेद स्थापना तथा वेदपाठ करना ही श्रेष्ठ धार्मिक कर्मकाण्ड है, कोई अन्य प्रतीक हो अथवा न हो। वैदिक यज्ञ अथवा यजन (यज देवपूजा-सङ्गतिकरण-दानेषु) का मुख्य अर्थ देवपूजा-सङ्गतिकरण-दान तथा हवन (हु दाने दानादानयोः च) का मुख्य अर्थ दान आदान-प्रदान करना है। अतः हवन-यज्ञ-पूजन के लिए मूर्तिस्थापना अथवा काष्ठ-दहन आवश्यक नहीं है। धार्मिक कार्य के नाम पर पर्यावरण की हानि न हो, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। परम्पराओं की तुलना में वेद तथा विवेक को महत्व देना चाहिए। प्रेम पूर्वक वेदस्थापना, वेदपाठ तथा स्वाध्याय का प्रचार-प्रसार करना चाहिए। वेदपाठ तथा स्वाध्याय करने से दोष-दुर्गुण स्वतः धीरे-धीरे दूर होते जाते हैं।

विगत शताब्दियों के संघर्ष-काल में अनेक हानिकारक कुप्रथाएँ तथा वेद-विरोधी अनुचित मान्यताएँ हमारे समाज में आ गयीं थीं। वैदिक पुनर्जागरण के प्रभाव से बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवा-विवाह का विरोध, नारियों तथा शूद्रों को शिक्षा नहीं देने, जन्म के आधार पर ऊँच-नीच मानने तथा छुआछूत जैसे अनेक दोष बहुत कुछ दूर हो गये हैं। परन्तु जाति प्रथा, मूर्ति-पूजा, हवन-यज्ञ के नाम पर काष्ठ आदि दहन, पुनर्जन्म, दिशा-शूल, शुभ-अशुभ मुहूर्त, भविष्यफल, भूत-प्रेत, चमत्कार जैसे अन्धविश्वासों के नाम पर आडम्बर फैलाकर ठगी-लूट को अभी समाप्त नहीं किया जा सका है। हमें वेद को आदर्श मानकर इस दिशा में प्रयास करना है।

पाण्डु नगर, कानपुर **स्वामी शरण**

मकर संक्रान्ति, पौष, 5120 युगाब्द, 2075 वि. **मो. 9839105629**

ॐ

वेद परिचय : प्रमुख तथ्य तथा मान्यतायें

1.ओम् परमात्मा का मुख्य नाम है। वेद में ओम् के ही स्मरण का आदेश है। प्रत्येक मन्त्र से पूर्व ओम् का उच्चारण अवश्य किया जाता है।

2. वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा सनातन धर्म-संस्कृति का मूल आधार है।

3. वेद मन्त्रों का सङ्ग्रह है, अतः वेद संहिता भी कहते हैं। वेद में सङ्कलित रचनाओं को ही मन्त्र कहते हैं। अन्य ग्रन्थों में पद्य, श्लोक, वाक्य हैं। उनकी किसी रचना को मन्त्र नहीं माना जाता है। मन्त्र का अर्थ मनन-चिन्तन करना है। वह भी पूर्ण सद्भावना के साथ करें तो पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

4. वेद में इतिहास या कथा-कहानी बिल्कुल नहीं है। वेद में प्राकृतिक शाश्वत सत्य का ही वर्णन है, किसी व्यक्ति या किसी विशेष समय की किसी घटना का नहीं।

5. वेद की चार संहितायें या विभाग हैं - 1. ऋग्वेद, 2. सामवेद, 3. अथर्ववेद, 4. यजुर्वेद। चारो संहिताओं को सम्मिलित रूप से वेद कहते हैं। इसे चतुर्वेद या विश्ववेद भी कहा गया है।

6. अथर्ववेद को छन्दोवेद, आङ्गिरस वेद, श्रोत्र वेद, ब्रह्मवेद भी कहते हैं।

7. वेद में कुल मन्त्रों की संख्या लगभग 21 हजार है। इनमें 10589 मन्त्र ऋग्वेद में हैं। सामवेद में 1875, अथर्ववेद में 5977, यजुर्वेद में 1977 मन्त्र हैं।

8. विभिन्न ऋषियों द्वारा किये गये वेद मन्त्रों के सम्पादन को शाखा कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में वेदों की 1131 शाखाओं का उल्लेख है, परन्तु अब

बहुत कम शाखायें उपलब्ध हैं।

9. सभी शाखाओं में मन्त्र वेद के ही हैं। उनके क्रम तथा गणना में भेद मिलता है। उदाहरण के लिए यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में दो छन्द को एक मन्त्र मानें या दोनों छन्दों को पृथक् मन्त्र स्वीकार करें, इसे शाखा भेद कहा जाता है। इस प्रकार मन्त्रों की कुल सङ्ख्या में अन्तर आ जाता है।

10. सभी मन्त्र छन्दबद्ध हैं, अतः वेद को छन्दस् भी कहते हैं।

11. अनेक मन्त्र चारो वेद संहिताओं में मिलते हैं तथा अनेक मन्त्र वेद में अनेक बार आये हैं। शाखाओं के सम्पादक ऋषियों ने ऐसा किसी विषय को स्पष्ट करने तथा चारो वेद संहिताओं को स्वतन्त्र रूप से पूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से किया है।

12. वेद मन्त्रों का गम्भीर अध्ययन-चिन्तन कर उसे आत्मसात् कर लेने वाले विद्वान् साधक को मन्त्रदृष्टा तथा ऋषि कहते हैं।

13. चारो वेदों के विद्वान् आचार्य को ब्रह्मा कहते हैं। दो वेदों के आचार्य को द्विवेदी, तीन वेदों के आचार्य को त्रिवेदी तथा चारो वेदों के आचार्य को चतुर्वेदी कहते हैं।

14. चतुर्वेदी आचार्य को ही वैदिक यज्ञों में ब्रह्मा का पद प्रदान किया जाता है। वह यज्ञ का प्रमुख सञ्चालक होता है।

15. चारो वेदों के विद्वान् मन्त्र दृष्टा ब्रह्मर्षि की उपाधि प्राप्त करते हैं। ब्रह्मर्षि को ही सर्वोच्च सम्मान 'भगवान्' सम्बोधन किया जाता है।

16. सनातन धर्म तथा वैदिक संस्कृति के आदि पितामह ब्रह्मा हैं। प्रतीकात्मक रूप से चारो वेद ही उनके चार मुख माने जाते हैं।

17. वेद की भाषा वैदिक संस्कृत है। लौकिक या प्रचलित संस्कृति की अपेक्षा वेद की भाषा अधिक सरल तथा वैज्ञानिक है। वेद की भाषा प्राचीनतम है तथा अन्य भाषाओं की जननी है।

18. प्रत्येक मन्त्र के साथ ऋषि, देवता, छन्द का उल्लेख अवश्य

होता है। मन्त्र पाठ, स्वाध्याय, साधना के लिए उनका महत्व है।

19. ऋषि मन्त्र की मूल भावना है जो साधक के लिए आवश्यक है। किसी मन्त्र का ऋषि विश्वमित्र है तो उस मन्त्र का मूल भाव विश्वमैत्री है।

20. देवता किसी मन्त्र का विषय होता है। शिव सङ्कल्प सूक्त का देवता मन है। इसका अर्थ है कि इस सूक्त में मन के विषय में वर्णन है।

21. छन्द से मन्त्र का काव्यात्मक स्वरूप तथा लय स्पष्ट होता है। गायत्री छन्द में आठ-आठ वर्णों के तीन चरण होते हैं। इससे स्पष्ट है कि पाठ करने में आठ वर्णों के पश्चात् विराम देना चाहिए। छन्द का ध्यान रखे विना मन्त्र पाठ से समुचित प्रभाव नहीं उत्पन्न हो पाता है।

22. ऋत वेद का प्रमुख सिद्धान्त है। सार्वभौम प्राकृतिक नियमों को ऋत कहते हैं। वेद में ऋत का ही वर्णन है।

23. इन्दु भी महत्वपूर्ण वैदिक मान्यता है। इन्दु शब्द के तीन अर्थ हैं, प्रकाशयुक्त, ऐश्वर्ययुक्त तथा रसयुक्त। वेद में इन्दु का अर्थ वेद ज्ञान के प्रकाश, आध्यात्मिक ऐश्वर्य तथा वेद विद्या के दिव्य रस से युक्त है। सामान्यतः वैदिक विद्वानों तथा मन्त्र साधकों को भी इन्दु कहा गया है।

24. यज्ञ शब्द के तीन अर्थ देवपूजा, सङ्गतिकरण तथा दान हैं। देव शब्द का अर्थ है दिव्य वेद विद्या तथा दिव्य गुणों से युक्त विद्वान्। यज्ञ का भाव है वैदिक विद्वानों का सम्मान-सहयोग, सामाजिक एकता समरसता तथा इस उद्देश्य के लिए अपने साधनों का एक अंश देना।

25. वेद मन्त्रों में दिव्य शक्तियाँ समाहित हैं। सभी धार्मिक कार्य केवल वेदमन्त्रों द्वारा सम्पन्न करने चाहिए।

पाण्डु नगर, कानपुर **स्वामी शरण**

मो. 9839105629

ॐ

वैदिक (आर्ष) साहित्य

1. वेद (4) - 1. ऋग्वेद, 2. सामवेद, 3. अथर्ववेद, 4. यजुर्वेद।।

2. वेदाङ्ग - संस्कृत भाषा विज्ञान।1. व्याकरण, 2. वर्ण उच्चारण शिक्षा, 3. निघण्टु, 4. निरुक्त, 5. छन्द, 6. गणित-ज्योतिष।

3. उपाङ्ग (दर्शन) - 1. योग, 2. सांख्य, 3. वैशेषिक, 4. मीमांसा, 5. न्याय, 6. वेदान्त।

4**. अनुवेद :-**

(क) **ब्राह्मण** - प्रत्येक वेद के अलग-अलग ब्राह्मण ग्रन्थ मिलते हैं।

(ख) **आरण्यक** – वानप्रस्थियों का चिन्तन, विचार

(ग) **उपनिषद् (11)** - उपनिषद् विशुद्ध परमात्मा का चिन्तन है। 1. ईश, 2. केन, 3. कठ, 4. प्रश्न, 5. मुण्डक, 6. माण्डूक्य, 7. ऐतरेय, 8. तैतरेय, 9. श्वेताश्वतर, 10. छान्दोग्य, 11. बृहदारण्यक।

(घ) **सूत्र ग्रन्थ** - धर्मसूत्र, गृहसूत्र, शुल्व सूत्र आदि।

5. उपवेद - आयुर्वेद, अर्थवेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, ज्योतिर्वेद, गणित, यन्त्र सर्वस्व, वैमानिकी आदि।

विशेष :- वेद स्वतः प्रमाण हैं, परम प्रमाण हैं। अन्य सभी ग्रन्थों की प्रामाणिकता वेद पर निर्भर है। उनके विचार वेद के अनुकूल होने पर ही स्वीकार्य हो सकते हैं।

स्वामी शरण कृत

वेदायन भाष्य

सरल पाठ, मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ सहित

अग्नि सूक्त

(ऋग्वेद, मण्डल 1, अनुवाक 1, सूक्त 1)

01. अग्निम् ईडे पुरोहितम्, यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्।
होतारम् रत्नधातमम् ॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

अग्नि पुरोहित यज्ञ के, होता ऋत्विज देव हैं।
स्तुति कर, जो रत्नधा ॥ 01 ॥

संहितापाठ

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥01 ॥

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- पुरोहितम् = पुरोहित, **यज्ञस्य** = यजन का, **ऋत्विजम्** = ऋत्विज, ऋत-सञ्चालक, ऋतज्ञ, **होतारम्** = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले, **रत्नधातमम्** = रत्न, रमणीय को धारण करने वाले, **देवम्** = देव, **अग्निम्** = अग्नि की, अग्रणी, तेजस्वी, गतिस्वरूप, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी (परमात्मा) की **ईडे** = स्तुति करता हूँ। **॥ 01 ॥**

भावार्थ :- वेद में परमात्मा का मुख्य नाम ओम् है जो सभी मन्त्रों के प्रारम्भ में बोला जाता है। वेद में ओम् के पश्चात् अग्नि तथा ब्रह्म नाम को प्रमुखता दी गयी है। वह परमात्मा अग्नि अर्थात् अग्रणी है, पुरोहित

अर्थात् सबका हित करने वाला है, उसमें भी अग्रणी है। वह यजन अर्थात् देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान जैसे श्रेष्ठ कार्यों का दिव्य ऋत्विज अर्थात् ऋत का सञ्चालनकर्ता, ऋतज्ञ है। सृष्टि सञ्चालन नियम व्यवस्था ही ऋत है। वह होता अर्थात् आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाला है तथा वेद-मन्त्रों को जानने वाले मानव रत्नों को धारण करने वाला है। इसी प्रकार अग्रणी जन समाज के हित में यजन अर्थात् देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान जैसे श्रेष्ठ कार्यों का सञ्चालन करने के लिए मानव रत्नों का आह्वान करते हैं, उनके साथ आदान-प्रदान करते हैं। **॥ 01 ॥**

पदार्थ :- अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **ईडे** = स्तुति करता हूँ (ईड् = स्तुति करना)। **पुरोहितम्** = पुरोहित को (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, हि - चलना, जाना, जानना, पाना, वृद्धि करना, प्रेरणा करना)। **यज्ञस्य** = यजन का (यज्ञ = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **देवम्** = देव को (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **ऋत्विजम्** = ऋत्विज, ऋत-सञ्चालक, ऋतज्ञ को (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना, जन्- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **होतारम्** = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले को (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे - शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। **रत्नधातमम्** = रत्न, रमणीय को धारण करने वाले को (रत्-रम् - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, धा - धारण करना, पहनना, पोषण करना) **॥ 01 ॥**

02. अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः, ईड्यो नूतनैः उत।

सः देवान् आ इह वक्षति ॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

पूर्व करें, नूतन करें, ऋषिगण अग्नि-स्तुति करें।
यहीं देवगण को मिलें ॥ 02 ॥

संहितापाठ

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति ॥ 02 ॥

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, तेजस्वी (परमात्मा) **पूर्वेभिः** = पूर्व, पूर्ण **ऋषिभिः** = ऋषियों द्वारा, **नूतनैः** = नूतनों द्वारा **उत** = भी **ईड्यो** = स्तुत्य, स्तुति करने योग्य (है)। **सः** = वह **इह** = यहां, **देवान्** = देवों को **आ** = समन्तात्, सम्यक्, **वक्षति** = पालन, रक्षा करता है, एकत्र करता है, प्राप्त करता है **॥ 02 ॥**

भावार्थ :- परमात्मा की स्तुति-उपासना सभी के लिए हितकारी है। विद्वान् ऋषि तथा नूतन प्रवेशित विद्यार्थी समान रूप से उसकी स्तुति कर लाभ उठा सकते हैं। नया दीक्षा लेने वाला साधक भी शीघ्र ही यहीं पर देवों का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। महत्वपूर्ण बात यही है कि देवत्व का यह अनुदान-अवसर यहीं प्राप्त होता है, किसी दूसरे लोक में नहीं। वैदिक उपासना का फल प्रत्यक्ष है, परलोक या पुनर्जन्म का काल्पनिक आश्वासन मात्र नहीं **॥ 02 ॥**

पदार्थ :- अग्निः = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, गतिस्वरूप (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **पूर्वेभिः** = पूर्व, पूर्ण द्वारा (पूर्व - पूर्व, पहले, (सर्वनाम), पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना)। **ऋषिभिः** = ऋषियों द्वारा (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तर्दृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)। **ईड्यो** = स्तुत्य, स्तुति करने

योग्य (ईड - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **नूतनैः** = नूतन, नवीन, नये लोगों द्वारा (नु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, निश्चय करना, नूतन होना, नया करना, नवीन करना)। **उत** = ही, भी, उसी प्रकार (अव्यय, निपात)। **सः** = वह (सर्वनाम)। **देवान्** = देवों को (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। **इह** = इसमें, यहां, यह (सर्वनाम)। **वक्षति** = पालन, रक्षा करता है (वक्ष - पालन करना, रक्षा करना, वक्ष - क्रोध करना, एकत्र करना, ढेर करना) **॥ 02 ॥**

03. अग्निना रयिम् अश्नवत्, पोषम् एव दिवे-दिवे।
यशसम् वीरवत्तमम् ॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

प्राप्त अग्नि से शब्द, गति, नित्य हमें पोषण मिले।
श्रेष्ठ वीर सम यश मिले ॥ 03 ॥

संहितापाठ

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम् ॥ 03 ॥

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- अग्निना = अग्नि, गतिस्वरूप, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी (परमात्मा) द्वारा **दिवे-दिवे** = प्रतिदिन **एव** = ही **रयिम्** = प्रगति, विद्या, ज्ञान, वाणी, **पोषम्** = पोषण, **वीरवत्तमम्** = अत्यन्त वीर के समान, **यशसम्** = यश, कीर्ति, **अश्नवत्** = व्याप्त होता है, प्राप्त होता है **॥ 03 ॥**

भावार्थ :- वेद मन्त्रों से परमात्मा की उपासना प्रत्यक्ष फलदायी है, उससे प्रतिदिन ही पोषण मिलता है, शक्ति, क्षमताएँ निरन्तर बढती जाती हैं। वीर नायकों के समान यश की प्राप्ति होती है। वीर का अर्थ है ऊर्जावान्, शक्तिशाली। ऋषि-साधक तथा समाज का नेतृत्व करने वाले मनीषी इसी

श्रेणी में आते हैं। स्पष्ट है कि साधना का फल प्रत्यक्ष रूप से प्रतिदिन प्राप्त होना चाहिए। क्षमता, साधना तथा परिस्थिति के अनुसार उसका स्पष्ट अनुभव होने में कुछ समय लग सकता है। परन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि जीवन भर या वर्षों साधना करने पर भी परिणाम न मिले। ऐसा होता है तो स्पष्ट है कि साधना प्रणाली में ही कुछ न्यूनता है।। **03 ।।**

पदार्थ :- अग्निना = अग्नि द्वारा, अग्नि के साथ (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **रयिम् =** प्रगति, विद्या, ज्ञान, वाणी को (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। **अश्नवत् =** व्याप्त होता है, प्राप्त होता है (अश् = भोजन करना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना)। **पोषम् =** पोषण करने वाले (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। **एव =** ही (अव्यय)। **दिवे-दिवे =** प्रतिदिन (अव्यय)। **यशसम् =** यश, कीर्ति को (यश् - प्रख्यात होना, कीर्ति होना, व्याप्त होना, फैलना)। **वीरवत्तमम् =** अत्यन्त वीर के समान (वीर - शूरवीर होना, पराक्रम करना)।। **03 ।।**

04. अग्ने यम् यज्ञम् अध्वरम्, विश्वतः परिभूः असि।
सः इत् देवेषु गच्छति ।। 04 ।।

काव्यानुवाद

अग्नि! अहिंसक यज्ञ जो, तुमसे ही परिव्याप्त है।
वह देवों में जा मिलें।। 04 ।।

संहितापाठ

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति।। 04 ।।

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- अग्ने = हे अग्नि! गतिस्वरूप, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी **यम् =** जिस **अध्वरम् =** अहिंसक, अवर्णनीय **यज्ञम् =** यजन को **विश्वतः =** सबसे **परिभूः =** सब ओर विद्यमान, सर्वत्र विद्यमान **असि =** हो। **सः =** वह **इत् =** ही **देवेषु =** देवों में **गच्छति =** जाता है, स्थान पाता है।। **04 ।।**

भावार्थ :- यज्ञ शब्द यज् धातु से बना है। इसके तीन अर्थ देवपूजा अर्थात् विद्वानों की सेवा, सहायता, सङ्गतिकरण अर्थात् सङ्गठन तथा दान अर्थात् आय तथा सम्पति का एक अंश वेद भगवान् को समर्पित करना है। सभी देवों में, दिव्य शक्तियों में वह परमात्मा ही प्राप्त होता है। जो इस प्रकार अहिंसक यज्ञ की भावना को समझता है तथा स्वयम् भी ऐसा यज्ञ करता है, वही देवत्व को प्राप्त करता है।। **04 ।।**

पदार्थ :- अग्ने = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, ग्रहण करना)। **यम् =** जिसे, जिसको, (सर्वनाम)। **यज्ञम् =** यजन को (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। **अध्वरम् =** अहिंसक, अवर्णनीय (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। **विश्वतः =** सबसे, विश्व से (सर्वनाम)। **परिभूः =** सब ओर होने वाला, सर्वत्र विद्यमान (परि = सभी ओर, (उपसर्ग), भू - होना)। **असि =** हो (अस् - होना)। **सः =** वह (सर्वनाम)। **इत् =** ही (अव्यय)। **देवेषु =** देवों में (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **गच्छति =** जाता है (गम्, गच्छ् = जाना)।। **04 ।।**

05. अग्निः होता कविक्रतुः, सत्यः चित्र-श्रवस्तमः।
देवो देवेभिः आगमत् ।। 05 ।।

काव्यानुवाद

होता कविक्रतु अग्नि प्रभु, सत्य कीर्तिमय चित्र।
देवों द्वारा ही मिले, परम देव वह मित्र ।। 05 ।।

संहितापाठ

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरागमत्॥05॥

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- अग्निः = अग्नि, गतिस्वरूप, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी (परमात्मा) **होता** = आह्वान् ग्रहण, दान करने वाले, **कविक्रतुः** = शब्द करने वाले (वेदकाव्य के कर्ता) **सत्यः** = सत्य, **चित्र-श्रवस्तमः** = आश्चर्य-जनक अत्यन्त विश्रुत, महान् विद्वान् **देवो** = देव (दिव्य परमात्मा) **देवेभिः** = देवों द्वारा, देवों के साथ **आ-गमत्** = आते हैं, प्राप्त होते हैं॥05॥

भावार्थ :- देव शब्द का मूल शाब्दिक अर्थ दिव्यगुण युक्त है। परमात्मा ही परमदेव है, महादेव है। उसकी वाणी वेद भी महादेव हैं, वेद के विद्वान् देव हैं तथा प्रकृति भी देव है क्योंकि प्रकृति के उपयोगी गुणों एवम् विशेष शक्तियों से ही जीवन सम्भव है। देवों द्वारा, देवों के साथ ही देवत्व तथा परमदेव परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है॥05॥

पदार्थ :- अग्निः = अग्नि, गतिस्वरूप, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **होता** = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। **कविक्रतुः** = शब्द करने वाले (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना, कृ - करना)। **सत्यः** = सत्य (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। **चित्र-श्रवस्तमः** = आश्चर्य-जनक अत्यन्त विश्रुत, महान् विद्वान् (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना, श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **देवो** = देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **देवेभिः** = देवों

द्वारा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **आ-गमत्** = गतिमान, जाने वाले, जाता है, गया (आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। गम् = जाना, जानना, पाना)॥05॥

06. यत् अङ्ग दाशुषे त्वम्, अग्ने भद्रम् करिष्यसि। तव इत् तत् सत्यम् अङ्गिरः॥06॥

काव्यानुवाद

दानी के तुम अंग हो, अग्नि! करो कल्याण जो।
नाम अंगिरा सत्य है॥06॥

संहितापाठ

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥06॥

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- अग्ने = हे अग्नि, गतिस्वरूप, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी परमात्मन्! **अङ्ग** = हे अङ्ग!, विद्वान्, प्रगतिमान! **त्वम्** = तुम **दाशुषे** = दानी के लिए **यत्** = जो **भद्रम्** = कल्याण **करिष्यसि** = करोगे, करते हो, **तत्** = वह **तव** = तुम्हारा **इत्** = ही **सत्यम्** = सत्य **अङ्गिरः** = अङ्गिरः (स्वरूप है)॥06॥

भावार्थ :- परमात्मा दानियों के लिए उनका अङ्ग ही है। जो देने का स्वभाव रखते हैं, समाज को कुछ देते रहते हैं, परमात्मा उनका अङ्ग-स्वरूप है अर्थात् अङ्ग के समान अपना है, सहयोगी है, निकट है। वह ऐसे दानियों का कल्याण करता है तो विशेष बात नहीं है। परमात्मा का एक नाम अङ्गिरः भी है, जिसका अर्थ है अङ्ग-स्वरूप, विस्तार करने वाला, रक्षा करने वाला। वह जिसका अङ्ग है, अथवा जो उसके अङ्ग हैं, उनका हित करना तो केवल उसके अङ्गिरः नाम को सत्य करना ही है। परमात्मा को

अपने अङ्गिरः नाम को सार्थक करने के लिए, उसे सत्य सिद्ध करने के लिए दानियों का कल्याण करना ही पड़ता है। अर्थात् परमात्मा हमारे ऊपर कोई कृपा या उपकार नहीं करता है, दानियों का कल्याण तो उसे करना ही है, उसका यह स्वभाव है। जैसे प्रकाश तथा ऊष्मा देना सूर्य का स्वभाव है। वह हमें प्रकाश नहीं देगा तो सूर्य नहीं कहा जायेगा। अङ्ग धातु का अर्थ चलना व चिह्न करना भी है। परमात्मा दानियों के लिए चलता है, उन्हें चिह्नित करता है। अर्थात् परमात्मा दानियों की पहचान कर उन्हें प्रगति प्रदान करता है **।। 06 ।।**

पदार्थ :- यत् = जो (सर्वनाम)। **अङ्ग** = अङ्ग, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। **दाशुषे** = दानी के लिए (दश् - देना)। **त्वम्** = तुम (सर्वनाम)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **भद्रम्** = कल्याणकारी को (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। **करिष्यसि** = करोगे, करते हैं (कृ - करना)। **तव** = तुम्हारा (सर्वनाम)। **इत्** = ही (अव्यय)। **तत्** = वह, उस को (सर्वनाम)। **सत्यम्** = सत्य को (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। **अङ्गिरः** = विद्वान्, गतिशील, पाने वाला (अंग् = अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना) **।। 06 ।।**

07. उप त्वा अग्ने दिवेदिवे, दोषावस्तः धिया वयम्। नमो भरन्तः एमसि ।। 07 ।।

काव्यानुवाद

अग्नि! तुम्हारे निकट हम, प्रातः - सायम् नित्य।
बुद्धि-पूर्वक नमन कर, आते हो, यह सत्य ।। 07 ।।

संहितापाठ

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ।।07 ।।

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि! **वयम्** = हम सब, **दिवेदिवे** = प्रतिदिन **दोषावस्तः** = प्रातः तथा सायम् अथवा दिन तथा रात्रि में **त्वा** = तुम्हारे **उप** = समीप **धिया** = बुद्धि द्वारा **नमो** = नमन। **भरन्तः** = भरण करते हैं। **एमसि** = आते हो, प्रेरित करते हो **।। 07 ।।**

भावार्थ - हम प्रतिदिन प्रातः-सायम् परमात्मा के समीप बुद्धि से नमन करते हैं, अर्थात् बुद्धिपूर्वक परमात्मा की उपासना करते हैं। उपासना प्रातः-सायम् करनी चाहिए तथा बुद्धिपूर्वक करनी चाहिए एवम् प्रतिदिन करनी चाहिए। तीनों बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रतिदिन, नियमित उपासना आवश्यक है, किसी भी परिस्थिति में नियमितता बनी रहनी चाहिए। प्रातः-सायम् नियमपूर्वक उपासना करें, अन्यथा दिन में तथा रात में किसी भी समय दो बार अवश्य उपासना करें। सबसे महत्वपूर्ण है कि उपासना बुद्धिपूर्वक करें, अर्थात् परमात्मा के स्वरूप को, उपासना के विज्ञान को समझकर वेदमन्त्रों का अर्थ समझते हुए उपासना करें। यदि हम इस प्रकार उपासना करते हैं तो परमात्मा हमारा भरण-पोषण करता है, हमें प्राप्त होता है, प्रेरित करता है। केवल आस्था-श्रद्धा-भावना से उपासना के नाम पर कुछ भी करते रहने से उसका लाभ नहीं मिल सकता है **।। 07 ।।**

पदार्थ - उप = समीप (उपसर्ग)। **त्वा** = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा (सर्वनाम)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **दिवेदिवे** = प्रतिदिन (अव्यय)। **दोषावस्तः** = प्रातः तथा सायम् अथवा दिन तथा रात्रि में (अव्यय)। **धिया** = धारणा द्वारा, बुद्धि द्वारा (धी - धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि - धारण करना, युक्त होना)। **वयम्** = हम, हम सब, हम लोग (सर्वनाम)। **नमो** = नमन (नम - नमस्कार

करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **भरन्तः** = भरण करते हुए, भरण करने वाले (भृ - पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। **एमसि** = प्रेरित करते हो, आते हो (आ-इमसि। आ-इ - आना, आ - समन्तात्, सम्यक्, भलीभाँति, इ - जाना, जानना, पाना, प्रेरित करना)॥ 07 ॥

08. राजन्तम् अध्वराणाम्, गोपाम् ऋतस्य दीदिविम्।
वर्धमानम् स्वे दमे॥ 08 ॥

काव्यानुवाद

रहें अहिंसक ज्योतिमय, ऋत रक्षक शुभ कान्ति।
वर्धमान को स्वयम् में, सन्धि करें, हो शान्ति॥ 08 ॥

संहितापाठ

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे॥ 08 ॥

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ : अध्वराणाम् अहिंसकों के **राजन्तम्** प्रकाशमान, **गोपाम्** रक्षा करने वालों को **ऋतस्य** ऋत का **दीदिविम्** प्रकाश करने वाले, **वर्धमानम्** वृद्धिमान को **स्वे** अपने में **दमे** सन्धि करते हैं॥ 08 ॥

भावार्थ : परमात्मा का दिव्य तेज अहिंसक कार्यों में ही प्रकाशित होता है। अतः धर्म के नाम पर हिंसा महापाप है। परमात्मा पृथ्वी की रक्षा करने वाले लोगों को ऋत का प्रकाश देते हैं। ऋत कहते हैं सार्वभौम प्राकृतिक नियमों को। जिन नियमों के आधार पर सृष्टि का संचालन होता है, वे नियम ही ऋत हैं, जैसे गुरुत्वाकर्षण आदि। जो लोग पृथ्वी की रक्षा करने वाले हैं, इन नियमों का ज्ञान उनके लिए ही है। ऋत के आधार पर ही विज्ञान का विकास होता है। ऋत तथा उसके आधार पर विकसित विज्ञान पृथ्वी के रक्षकों के लिए है। इसका ज्ञान उन्हें नहीं मिलना चाहिए जो इसका दुरुपयोग कर विनाश करना चाहते हैं। परमात्मा तो व्यक्त,

प्रकट सृष्टि के रूप में निरन्तर वृद्धि कर रहा है। वृद्धि हमें भी करनी है, अतः हम परमात्मा से सन्धि कर लेते हैं, उससे जुड़ जाते हैं। दमे क्रिया की धातु दम् उपशमे है। अतः दम् धातु का मुख्य अर्थ उपशमन करना है। इसके अर्थ शान्त करना, दमन करना, जीतना, स्वाधीन करना तथा सन्धि करना भी है। स्वयम् को शान्त करना है, अपने दोषों का दमन करना है, दुर्गुणों को जीतना है तथा मन को दोषों-दुर्गुणों से स्वाधीन-मुक्त करना है तथा परमात्मा से तो सन्धि ही करना है जिससे दिव्य चेतना का लाभ हमें मिल सके॥ 08 ॥

पदार्थ : राजन्तम् = प्रकाशमान, प्रकाश करने वाले, प्रकाश करते हुए (राज् = चमकना, प्रकाशित-शोभित होना)। **अध्वराणाम्** = अहिंसकों के (अ - नहीं, धूर् - मार डालना या दुःख देना)। **गोपाम्** = रक्षा करने वालों के (गुप् = रक्षा करना)। **ऋतस्य** = ऋत के (ऋ-ऋत - गति करना, सञ्चालित करना)। **दीदिवम्** = प्रकाश करने वाले (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **वर्धमानम्** = बढ़ते हुए, वृद्धि करते हुए (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। **स्वे** = अपने लिए, अपने में (सर्वनाम)। **दमे** = सन्धि करते हैं (दम् = सन्धि करना, उपशमन करना, शान्त करना, दमन करना, जीतना, स्वाधीन करना)॥ 08 ॥

09. सः नः पितेव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ 09 ॥

काव्यानुवाद

पिता-पुत्र सम अग्नि! हो, सूपायन, सम्बन्ध कर।
स्वस्ति हेतु सबके लिए॥ 09 ॥

संहितापाठ

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥ 09 ॥

(ऋषि - मधुच्छन्द, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ : सः वह (परमात्मा) **नः** हमारे लिए **सूनवे** जन्म दिये (सन्तान, पुत्र) के लिए **पितेव** पिता के समान (है)। **अग्ने** हे अग्ने!, (परमात्मन्!) **सूपायनो** सूपायन, उत्तम उपाय वाले, उत्तम निकट प्राप्त **स्वस्तये** कल्याण के लिए **नः** हमको **सचस्वा** संयुक्त करो ।। 09 ।।

भावार्थ : परमात्मा हमारे लिए उसी तरह है जैसे सन्तान के लिए पिता। हम ऐसे परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि आप हमें वैसे ही निकट प्राप्त हों जैसे पुत्र पिता को प्राप्त कर लेता है। आप हमारे कल्याण के लिए हमारे निकट रहें, हमें संरक्षण तथा मार्गदर्शन प्रदान करें, हमको अपने से तथा सद्ज्ञान से संयुक्त करें ।। 09 ।।

पदार्थ : सः = वह (सर्वनाम)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **पितेव** (पिता + इव) = पिता के समान (पि - जाना, चलना, जानना, पाना, पा - रक्षा करना, पालन करना, इव - के समान)। **सूनवे** = सन्तान के लिए, पुत्र के लिए (सू = जन्म देना)। **सूपायनो** = उत्तम उपाय, उत्तम निकट प्रगति, प्राप्ति (सु + उप + अयनः, सु - उत्तम, श्रेष्ठ, उप - समीप, अय् - चलना, जाना, ध्वनि करना)। **भव** = हो (भू = होना)। **सचस्वा** = संयुक्त करो (सच - पूरा समझना, अच्छी तरह जानना, सम्बन्धी होना, संसर्गी होना)। **स्वस्तये** = कल्याण के लिए (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति = कल्याण) ।। 09 ।।

इन्द्र सूक्त

(ऋग्वेद, मण्डल 2, अनुवाक 26, सूक्त 12)

10. यो जातः एव प्रथमो मनस्वान्,
देवः देवान् क्रतुना परि अभूषत्।

यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्,
नृम्णस्य मह्ना सः जनासः इन्द्रः ।। 01 ।।

काव्यानुवाद

मनस्वी प्रथम देव, जिसने जना है,
सुकर्मा सुभूषित किया देवगण को।
सदा शुष्म से रोदसी जो डराये,
नरों के महत् से, वही इन्द्र लोगों ।। 01 ।।

संहितापाठ

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्य्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ।। 01 ।।

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यो जिसने, **मनस्वान्** मनस्वी, **देवः** देव ने, **प्रथमो** प्रथम, **एव** ही, **देवान्** देवगणों को, **जातः** उत्पन्न किया, जाना, शब्द किया, **क्रतुना** कर्म द्वारा, **परि** सर्वतः, सभी ओर **अभूषत्** भूषित किया, **रोदसी** रोदसी ने, रोने वाले, रुलाने वाले, करुणाशील ने **यस्य** जिसके **शुष्मात्** शुष्म से, (शुष्म-बल से), शोषण से, सुखाने से **नृम्णस्य** नरत्व की, **मह्ना** महत्ता द्वारा, **अभ्यसेताम्** डराया, **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है) ।। 01 ।।

भावार्थ :- जो मनस्वी सृष्टि में प्रथम है, जो देवगणों को भी उत्पन्न करने वाला तथा उनको कृतित्व द्वारा भूषित करने वाला देव है, वह रोने वाला, रुलाने वाला, करुणाणील है, देवजन जिसके शुष्म अर्थात् शुष्क करने के सामर्थ्य से नरत्व की महत्ता द्वारा दुष्टों को भयभीत करते हैं, डराते हैं, वही सृष्टि को परस्पर समुचित रूप से सम्बन्धों में बाँधे हुए है, हे लोगों! वह इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यमान परमात्मा है ।। 01 ।।

पदार्थ :- यो जो (सर्वनाम)। **जातः** उत्पन्न किया, जाना, शब्द किया (जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना, जण् - जानना, शब्द करना)। **एव** ही (अव्यय) **प्रथमो** प्रथम (प्रथ् - विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **मनस्वान्** मनस्वी (मन् - जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **देवः** देव ने (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **देवान्** देवगणों को (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **क्रतुना** कृतित्व द्वारा (कृ-करना)। **परि** सर्वतः, सभी ओर (उपसर्ग)। **अभूषत्** भूषित किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भूष् - भूषित करना, भूषित होना, शोभित होना, शोभित करना)। **यस्य** जिसके (सर्वनाम) **शुष्मात्** शुष्म से, शोषण से सुखाने से (शुष् - सूखना, सुखाना)। **रोदसी** रोने वाला, रुलाने वाला, करुण (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना)। **अभ्यसेताम्** डराया, भयभीत किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भ्यस् - भय होना, डरना, डराना)। **नृम्णस्य** नरत्व की (नृ - ले जाना)। **मह्ना** महत्ता द्वारा (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)॥ **01** ॥

11. यः पृथिवीम् व्यथमानाम् अदृंहत्,
यः पर्वतान् प्रकुपितान् अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षम् विममे वरीयो,
यो द्याम् अस्तभ्नात्, सः जनासः इन्द्रः ॥02 ॥

काव्यानुवाद

जिन्होंने व्यथित भूमि को कर दिया दृढ़,

जिन्होंने प्रकोपित हुए गिरि रमाये।
जिन्होंने रचा अन्तरिक्षम् वरीयः,
द्यौ को सम्भाला, वही इन्द्र लोगों ॥ 02 ॥

संहितापाठ

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥ 02 ॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यः जिसने **व्यथमानाम्** व्यथमान, व्यथित **पृथिवीम्** पृथिवी को **अदृंहत्** दृढ़ किया। **यः** जिसने **प्रकुपितान्** प्रकोपित **पर्वतान्** पर्वतों को **अरम्णात्** रमाया। **यो** जिसने **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **वरीयो** वरीय, वरणीय, प्रिय **विममे** विशेष मान किया, निर्माण किया, रचा, **यो** जिसने **द्याम्** प्रकाशमान को **अस्तभ्नात्** स्थापित किया, **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है)॥

भावार्थ :- जिसने पृथ्वी को दृढ़ता दी, जिसने व्यथमान, व्यथित पर्वतों को सम्भाला। जिसने अन्तरिक्ष का विशेष मानकर, मापकर रचना की। जिसने प्रकाशमान सूर्य आदि नक्षत्रों को स्थापित किया, हे लोगों, वह इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यमान परमात्मा ही है॥ **02** ॥

पदार्थ :- यः = जिसने, जो (सर्वनाम)। **पृथिवीम्** = पृथिवी को (पृथ्, प्रथ् - विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **व्यथमानाम्** व्यथमान को, व्यथित को (व्यथ - व्यथित होना, दुःखी होना)। **अदृंहत्** दृढ़ किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। **यः** जिसने, जो (सर्वनाम)। **पर्वतान्** पर्वतों को (पर्व् - पूर्ण करना, पूरा करना, भरना, विभाग करना)। **प्रकुपितान्** प्रकोपित को (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, कुप- क्रोध करना, बोलना, चमकना)। **अरम्णात्** रमाया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, रम्

- रमना, रमण करना, रम जाना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **विममे** विशेष मान किया, निर्माण किया, रचा (वि - विशेष, मा - मापना, मान करना, शब्द करना, समाना, वि-मा - विशेष मान करना, निर्माण करना, बनाना)। **वरीयो** वरीय, वरणीय, प्रिय (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, प्रिय होना, प्रिय मानना, प्रिय करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **द्याम्** प्रकाशमान को (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै - तिरस्कार करना)। **अस्तभ्नात्** स्थापित किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, स्तम्भ - दृढ़ होना, अचल होना, स्तब्ध होना)। **सः** वह **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)॥ 02॥

12. यो हत्वा अहिम् अरिणात् सप्त सिन्धून्,
यो गाः उदाजत् अपधा बलस्य।
यो अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजान,
सम् वृक् समत्सु, सः जनासः इन्द्रः॥ 03॥

काव्यानुवाद

अहि का हनन, स्वर दिया सिन्धुओं को,
बल से दबा गान जिसने उठ़ाया,
जिन्होंने शिला मध्य में अग्नि जन्मा,
समादान-कर्ता, वही इन्द्र लोगों॥ 03॥

संहितापाठ

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा बलस्य।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान सम्वृक्समत्सु स जनास इन्द्रः॥ 03॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यो जिसने **अहिम्** अहि को, अहितकारी को, अगतिशीलता को **हत्वा** मारकर **सप्त** सात, समवाय, समूह, पूर्ण ज्ञान युक्त **सिन्धून्** सिन्धुओं को, सिद्धियों को, पूर्णताओं को, अध्ययन को, सम्बन्धों को **अरिणात्** गतिशील किया, शब्द दिया, **यो** जिसने **बलस्य** बल के **अपधा** अपधारित, दबा हुआ **गाः** गान को **उदाजत्** उठ़ाया, ऊपर लाया, उत्कृष्टता से चलाया, **यो** जो **अश्मनोः** अश्म के, व्यापक के **अन्तः** भीतर **अग्निम्** अग्नि को **जजान** उत्पन्न किया। **समत्सु** सम्यक् सतत गतिशीलों में, समानताओं में **सम्** सम्यक् **वृक्** आदानकर्ता (है), **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान् (है)॥ 03॥

भावार्थ :- जो अहि को अर्थात् अहितकारी को तथा अगति को मारने वाला है, सात सिन्धुओं अर्थात् सिद्धियों को, पूर्णताओं को, अध्ययन को, सम्बन्धों को, सम्बन्धनों को गतिशीलता तथा वाणी देता है, जो , बलपूर्वक दबाये हुए गान, गायन को उठ़ाता है, उत्कृष्टता से चलाता है, जो अश्म अर्थात् व्यापकता के भीतर अग्नि अर्थात् अग्रता, प्रगति, ऊर्जा, तेज को उत्पन्न करने वाला है, जो सम्यक् सतत गतिशील, समानताओं में समान रूप से आदान करता है, ग्रहण करता है, हे लोगों! वह परम ऐश्वर्यमान् इन्द्र परमात्मा है॥ 03॥

पदार्थ :- यो जिसने, जो (सर्वनाम) **हत्वा** हनन कर (हन्- मारना)। **अहिम्** अहि को (अ - नहीं, हि - गति, वृद्धि करना। अह् - फैलना, विस्तृत होना, व्यापक होना, अर्पण करना, समर्पण करना)। **अरिणात्** गतिमान किया, बहाया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, रि-री - जाना, लेना। रिण - शब्द करना, चूर्ण होना, अल्प होना)। **सप्त** सात, समवाय, समूह, पूर्ण ज्ञान (सात (संख्या)। सप् - समवाय होना, संलग्न होना,

मिलाप होना, पूर्ण ज्ञान होना)। **सिन्धून्** = सिन्धुओं को, सिद्धि को, पूर्णताओं को, अध्ययन को, सम्बन्धों को (सिध- सिद्ध होना, पूर्ण होना, जाना, जानना, पाना, अध्ययन करना, दीक्षा देना, शुभ कार्य करना, सि- सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। **यो** जो (सर्वनाम)। **गाः** गान, गायक (गा - स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गम् - जाना, जानना, पाना)। **उदाजत्** उठाया, ऊपर लाया, उत्कृष्टता से चलाया (उत् - उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च (उपसर्ग)। आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)।अज् - जाना, चलना, स्थापन करना, फेकना)। **अपधा** = अपधारित, दुष्टता से रखे हुए (अप - दूर, नीचे, अपकार (उपसर्ग), धा - धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, देना, दान करना)। **बलस्य** बल का (बल् - बल होना, जाना, स्पष्ट करना, प्राण होना, चेतन होना, जीना, जीते रहना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना, द्रव्य को रोकना)। **यो** जो (सर्वनाम)। **अश्मनोः** व्याप्त, व्यापक, प्राप्त (अश् - भोजन करना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना)। **अन्तः** भीतर, मध्य (उपसर्ग, अव्यय)। **अग्निम्** अग्नि को (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **जजान** उत्पन्न किया (जन - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, प्रकट होना)। **सम्** सम्यक् (उपसर्ग)। **वृक्** आदान कर्ता (वृक- लेना, स्वीकार करना, छीन लेना, चीरना, फाड़ना, वृच- हिंसा करना)। **समत्सु** सम्यक् सतत गतिशील, समानताओं में (सम् = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग), सम् - समान होना, सम विभाग करना, न घबराना, परिणाम होना, अत् - निरन्तर चलना, सतत गमन करना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)॥ 03 ॥

13. येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि,
यो दासम् वर्णम् अधरम् गुहा अकः।
श्वघ्नी इव यो जिगीवान् लक्षम् आदद्,
अर्यः पुष्टानि, सः जनासः इन्द्रः॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

रचा विश्व जिसने परम शक्तिशाली,
धरे दानियों को गुहा, ज्ञान, गति जो।
जिन्होंने दिये लक्ष्य, जो द्रुत, प्रशंसक,
जो अर्य पोषक, वही इन्द्र लोगों॥ 04 ॥

संहितापाठ

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्य्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः॥ 04 ॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- येन जिस **च्यवना** समर्थ द्वारा, पार कराने वाले द्वारा, विद्वान् द्वारा **इमा** यह **विश्वा** विश्व **कृतानि** किया गया, रचा गया, **यो** जिसने **गुहा** गुह्य **अकः** प्रगतिशील ने **दासम्** दानी को, सेवाधर्मी को, सेवाभावी को **वर्णम्** वरणीय को, प्रेरणा को **अधरम्** धारण किया, **यो** जिसने **जिगीवान्** स्तुति करने वाले ने **श्वघ्नी** द्रुतगामी, प्रगतिशील **इव** के समान **लक्षम्** लक्ष को **आदद्** दे दिया, **अर्यः** अर्य, प्रगतिशील, विद्वान्, व्यापक ने **पुष्टानि** पोषित किया **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है)॥ 04 ॥

भावार्थ :- जिस गुह्य, विद्वान्, प्रगतिशील ने इस नश्वर विश्व को रचा, जो दानियों तथा वरणीय लोगों को धारण करने वाला है, जो स्तुति करने वाले को आच्छादित करता है, जो प्रगतिशीलों को लक्ष्य प्राप्ति के

संघर्ष में विजय देता है, जो अर्य अर्थात् प्रगतिशील, विद्वान्, व्यापक जनों का पोषण करने वाला है, हे लोगों! वह इन्द्र परम ऐश्वर्यवान् है **।। 04 ।।**

पदार्थ :- येन जिसके द्वारा (सर्वनाम) **इमा** यह (सर्वनाम) **विश्वा** विश्व सभी, सब (सर्वनाम) **च्यवना** समर्थ, हँसने वाला, तैरने वाला, पार कराने वाला, विद्वान् (च्यु - हँसना, सहना, समर्थ होना, सहन करना, तैरना, गिरना, भटकना, जाना, जानना, पाना) **कृतानि** किया गया (कृ- करना) **यो** जो (सर्वनाम) **दासम्** दास को, दानी को, सेवाधर्मी को, सेवाभावी को (दास् - दान करना, सेवा करना, काटना) **वर्णम्** वर्ण को, वरणीय को, प्रेरणा को (वृ - वरण करना, स्वीकार करना, वर्ण - वर्णन करना, चमकना, आज्ञा करना, प्रेरणा करना, भेजना, रंगना) **अधरम्** धारण किया (अधर्- न्यून करना, जीतना, निम्न गति करना, अ - नहीं (अव्यय), अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, धृ - धारण करना)। **गुहा** गुह्य, गुहा (गुह् - आच्छादन करना, ढकना, गति करना, जाना, जानना, हिंसा करना) **अकः** प्रगतिशील (अक् - जाना, जानना, पाना, टेढ़ा जाना कुटिल गति करना)। **श्वघ्नी** द्रुतगामी (शव-श्व - जाना, भागना, दौड़ना) **इव** के समान, की भाँति (अव्यय) **यो** जो **जिगीवान्** स्तुति करने वाले ने (गा-जिगा- स्तुति करना, प्रशंसा करना) **लक्षम्** लक्ष को (लक्ष् - देखना, विचार करना) **आदद्** दे दिया (आ-सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, दा-देना) **अर्यः** अर्य, प्रगतिशील, विद्वान्, व्यापक (ऋ - जाना, सम्पादन करना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना) **पुष्टानि** पुष्ट किया, पोषित किया (पुष् - पालन- पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना) **सः** वह (सर्वनाम) **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना) **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) **।। 04 ।।**

14. यम् स्मा पृच्छन्ति कुह सः इति घोरम्,
उत ईम् आहुः न एषो अस्ति इति एनम्।
सो अर्यः पुष्टीः विजः इव आ मिनाति,
श्रत् अस्मै धत्त, सः जनासः इन्द्रः ।। 05 ।।

काव्यानुवाद

जिसे पूछते सब कहाँ घोर है वह,
जिसे कह रहे हैं, नहीं यह, नहीं यह।
प्रगतिशील, पोषक, विजेता, सुरक्षक,
श्रद्धा उसी में, वही इन्द्र लोगों ।। 05 ।।

संहितापाठ

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेतिं घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ।। 05 ।।

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यम् जिस **घोरम्** = घोर को, **सः** = वह, **कुह** = कहाँ **स्मा** = है **इति** = इस प्रकार **पृच्छन्ति** = पूछते हैं। **एनम्** = इसे, **उत** = वैसा **ईम्** = ही **एषो** = यह **न** = नहीं, **अस्ति** = है, **इति** = इस प्रकार **आहुः** = कहते हैं। **सो** = वह **अर्यः** = अर्य, प्रगतिशील, विद्वान्, व्यापक **पुष्टीः** = पोषक **विजः** विजेता, भयंकर **इव** = के समान **आ** = समन्तात्, सम्यक्, **मिनाति** = प्रक्षेपण करता है, स्थापन करता है, रक्षा करता है। **अस्मै** = हमारे लिए **श्रत्** सत्य **धत्त** = धारण, पोषण करता है, **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है) **।। 05 ।।**

भावार्थ :- जिस घोर को सभी पूछते हैं कि वह कहाँ है, जिसके विषय में विद्वान् कहते हैं - यह नहीं है, ऐसा, कोई है ही नहीं। वह अर्यों का, प्रगतिशीलों का पोषण करने वाला,रक्षक है और सत्य को हमारे लिए

धारण करता है, हे लोगों! वही इन्द्र परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा है ॥ 05 ॥

पदार्थ :- यम् जिसे, जिसको, (सर्वनाम) **स्मा** = है (अस् - होना)। **पृच्छन्ति** = पूछते हैं (पृश्-पृच्छ् - पूछना, प्रश्न करना)। **कुह** = कहाँ (सर्वनाम)। **सः** = वह, उसने (सर्वनाम)। **इति** = ऐसा, यह, इसी प्रकार (अव्यय)। **घोरम्** = घोर को (घुर् = भयंकर होना, चमकना, घोर् = चतुराई से चलना)। **उत** = ही, भी (अव्यय, निपात)। **ईम्** = के समान, इस प्रकार (अव्यय)। **आहुः** = आदान-प्रदान किया हुआ, आहुत, आह्वान किये, बुलाये हुए, व्याप्त (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना)। **न** = नहीं, के समान, उपमार्थक (अव्यय)। **एषो** = यह (सर्वनाम)। **अस्ति** = है (अस् - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। **इति** = ऐसा, यह, इसी प्रकार (अव्यय)। **एनम्** = इसको, इसे (सर्वनाम)। **सो** = वह, उसने (सर्वनाम)। **अर्यः** = अर्य को, प्रगतिशील को (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। **पुष्टीः** = पुष्टि, पोषण (पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना)। **विज** विजेता, भयंकर (विज - डरना, डर से कांपना, आपदाग्रस्त होना, विपत्ति में पड़ना)। **इव** = के समान, की भाँति (अव्यय)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। **मिनाति** = प्रक्षेपण करता है, स्थापन करता है, रक्षा करता है (मि - प्रक्षेपण करना, स्थापन करना, रक्षा करना)। **श्रत्** सत्य को (उपसर्ग)। **अस्मै** = हमारे लिए (सर्वनाम)। **धत्त** = धारण, पोषण करो, धारण करता है (धा = धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना) **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) ॥ 05 ॥

15. यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य,
यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो यो अविता सुशिप्रः,
सुतसोमस्य, सः जनासः इन्द्रः ॥ 06 ॥

काव्यानुवाद

सदा प्रेरणा पूर्ण का, जो कृशों का,
जिन्होंने रचा ब्रह्म के याचकों को।
वही शब्दकर्ता, सुरक्षक सुशिप्रः,
सदा सोमसुत का, वही इन्द्र लोगों!! 06 ॥

संहितापाठ

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ 06 ॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यो जो **रध्रस्य** = पूर्ण का, शुद्ध का, **यो** जो **कृशस्य** कृश का **चोदिता** = प्रेरित करने वाला, **यो** जो **ब्रह्मणो** = ब्रह्म का, **नाधमानस्य** = याचक, स्वस्तिवाचक का, **कीरेः** करने वाला **युक्तग्राव्णो** = शब्दयुक्त, **सुतसोमस्य** = सुतसोम का, ऐश्वर्यवान् सोम का, **अविता** = रक्षक, **सुशिप्रः** = उत्तम क्षरण करने वाला (है), **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है) ॥ 06 ॥

भावार्थ :- कोई पूर्ण हो, शुद्ध हो, समर्थ हो अथवा कृश हो, दुर्बल हो, परमात्मा सभी को प्रेरणा देता है, मार्ग दिखाता है। वह रक्षक है, वह उत्तम क्षरण करने वाला भी है। सृजन का, निर्माण का एक जीवनकाल होता है, उसके पश्चात् उसका क्षरण स्वाभाविक है। यह क्षरण भी उत्तमता से किया जाये, विवेक पूर्वक किया जाये जिससे हानि नहो, ऐसी प्रेरणा देने

वाला वही इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा ही है॥ 06॥

पदार्थ :- यो जिसने, जो (सर्वनाम)। **रध्रस्य** = रध्र का, पूर्णता का (रध - पूरा करना, समाप्त करना, अपकार करना, मार डालना, दुःख देना, पक्व होना, पकना, शुद्ध होना, निर्दोष होना, भूल न करना)। **चोदिता** = प्रेरित करने वाला, प्रेरणा-दाता (चुद् - प्रेरणा करना, पूछना, प्रश्न करना, प्रार्थना करना)। **यः** जिसने, जो (सर्वनाम)। **कृशस्य** कृश का (कृश - कृश होना, सूक्ष्म होना, दुर्बल होना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **ब्रह्मणो** = ब्रह्म का (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **नाधमानस्य** = याचना करते हुए, नाधमान का, याचक का (नाध - याचना करना, रोगी होना, श्रीमान् होना, आशीर्वाद देना, स्वस्ति-वाचन करना)। **कीरेः** करने वाला (कृ - करना)। **युक्तग्राव्णो** = शब्दयुक्त, मिश्रित (युज् - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना, ग्रु - शब्द करना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **अविता** = रक्षक (अव् - रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना)। **सुशिप्रः** = उत्तम क्षरण करने वाला (सु - अच्छा, उत्तम, शिप - क्षरण होना, काटने योग्य होना)। **सुतसोमस्य** = सुतसोम का, ऐश्वर्यवान् सोम का, उत्पन्न करने वाले का (सु - उत्तम, अच्छा, सु - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना) **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)॥ 06॥

16. यस्य अश्वासः प्रदिशि यस्य गावो,
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यम् यः उषसम् जजान,

यो अपाम् नेता, स जनासः इन्द्रः॥ 07॥

काव्यानुवाद

जिसके सुशासन रहें अश्व गायें,
सभी रथ तथा ग्राम जिसके सुशासन।
जिसने बनाये उषा, सूर्य जिसने,
रक्षण प्रदाता, वही इन्द्र लोगों॥ 07॥

संहितापाठ

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः॥ 07॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यस्य = जिसके **प्रदिशि** = प्रदिशा में, मार्गदर्शन में **अश्वासः** = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक **यस्य** = जिसके **गावो** = शब्द, वाणी, वचन **यस्य** = जिसके **ग्रामा** = ग्रामों **यस्य** = जिसके **विश्वे** = सभी **रथासः** = रथ (हैं), **यो** जिसने **सूर्यम्** = सूर्य को, **यो** जिसने **उषसम्** = उषा को, प्रभात को, **जजान** = उत्पन्न किया, **यो** जो **अपाम्** = अपों का, पालकों का, रक्षकों का **नेता** = नेता, ले जाने वाला (है), **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है)॥ 07॥

भावार्थ :- अश्व अर्थात् तीव्र गति युक्त, व्यापक अथवा घोड़े, गावो, गावः अर्थात् शब्द, वाणी, वचन अथवा गायें, ग्राम, रथ आदि सभी सजीव, निर्जीव परमात्मा के ही अनुशासन में रहते हैं। वह ही सूर्य तथा उषा को उत्पन्न करने वाला है। वही हमारे पालन-रक्षण का वाहक है, हे लोगों! वही इन्द्र है॥ 07॥

पदार्थ :- यस्य = जिसका (सर्वनाम)। **अश्वासः** = अश्व, तीव्र गति युक्त, व्यापक (अश् - व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना,

व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **प्रदिशि** = प्रदिश में, प्रकृष्ठ दिशा-निर्देश में, अनुशासन में (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, दिश् - दिखाना, दिखाना, समझाना, कहना, देना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **गावो** = शब्द, वाणी, वचन (गा - स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना, गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **ग्रामा** = ग्राम (ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **विश्वे** = सभी (सर्वनाम)। **रथासः** = रथ, रमणीय (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। **यः** जिसने, जो (सर्वनाम) **सूर्यम्** = सूर्य को (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। **यः** जिसने, जो (सर्वनाम) **उषसम्** = उषा को, प्रभात को (उषस् - प्रभात होना)। **जजान** = उत्पन्न किया (जन- उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, प्रकट होना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम) **अपाम्** = अपा को, पालकों-रक्षकों को (अप - पालन करना)। **नेता** = ले जाने वाला (नी - ले जाना)। **सः** वह (सर्वनाम) **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना) **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)**।। 07 ।।**

17. यम् क्रन्दसी संयती विह्वयेते,
परे अवरे उभया अमित्राः।
समानम् चिद् रथम् आतस्थिवांसा,
नाना हवेते, सः जनासः इन्द्रः। 08 ।।

काव्यानुवाद

जिसे क्रन्दसी संयती सब पुकारें,

उत्तम, अधम जो उभय शत्रु स्वामी।
सम चेतना रथ समारूढ़ होकर,
बहुविध पुकारें, वही इन्द्र लोगों।। 08 ।।

संहितापाठ

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः।। 08 ।।

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यम् = जिसे, **परे** = दूर, पूर्ण करने वाले में, उत्तम में, **अवरे** = अवर में, अवरणीय, अधम में, **उभया** = दोनों **अमित्राः** = अमित्र, अस्नेही **क्रन्दसी** = क्रन्दनशील, **संयती** = संयत्, सम्यक् यत्न करने वाले, **विह्वयेते** = विशेष आह्वान करते हैं। **समानम्** = समान **चिद्** = चेतन **रथम्** = रथ पर **आतस्थिवांसा** = आतस्थिवान्, सुस्थित होकर **नाना** = अनेक **हवेते** = पुकारते हैं, ग्रहण करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं, **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है)**।। 08 ।।**

भावार्थ :- जिसे क्रन्दनयुक्त तथा संयत जन पुकारते हैं, परे तथा अवरे अर्थात् जो परे है, दूर है और जो अवर अर्थात् अवरणीय, निम्न या अधम है, दोनो ही अमित्र हैं, परस्पर मित्र नहीं हैं, वे भी पुकारते हैं। विद्वानों ने परे का अर्थ उत्तम किया है। पृ पूरणे अर्थात् पूर्ण करना धातु मानकर परे का अर्थ पूर्ण करने के भाव से उत्तम ले सकते हैं। समान रूप से चेतना के रथ में स्थित होकर लोग उसे पुकारते है, हे लोगों! वही इन्द्र है**।। 08 ।।**

पदार्थ :- यम् = जिसे, जिसको (सर्वनाम)। **क्रन्दसी** = क्रन्दनयुक्त (क्रन्द् - रोना, पुकारना, दुःख होना)। **संयती** = संयत्, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् आदेश, सम्यक् एकत्रीकरण करने वाले (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, यत् - दुःख देना, मारना, ठोकना, चपेटना, आज्ञा करना, एकत्र करना, मना करना, रोकना, यत् = यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना,

ठहराना)। **विह्वयेते** = विशेष आह्वान करते हैं (वि - विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। हु-ह्वे - शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। **परे** = पर, परम, दूर (पर - पराया, अन्य, परे, पश्चात् (उपसर्ग)। पृ - पूर्ण करना, भरना)। **अवरे** = अवर, अवरणीय, अधम में (अ - नहीं, वृ-वर्-वरण करना, इच्छा करना, आशा करना, अवर - नीचे (उपसर्ग, सर्वनाम)। **उभया** = दोनों, पूर्णताओं द्वारा (उभय - दोनो (सर्वनाम), उभ् - पूर्ण करना, भरना)। **अमित्राः** = अमित्र, अस्नेही (अ - नहीं, मिद् - प्रीति करना, स्नेह करना)। **समानम्** = समान (सम् - सम्यक् रूप से, भलीभाँति, सम् - न घबराना, एक समान रहना)। **चिद्** = चेतन को (चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। **रथम्** = रथ को (रम - रमना, प्रिय होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। **आतस्थिवांसा** = सम्यक् स्थित (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, स्था - ठहरना, स्थित होना)। **नाना** = अनेक, बहुत, विविध (अव्यय)। **हवेते** = बुलाते हैं, दान, आदान-प्रदान, तृप्ति करते हैं (हू - दान करना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) **॥ 08 ॥**

18. यस्मात् न ऋते विजयन्ते जनासो,
यम् युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानम् बभूव,
यो अच्युतच्युत्, सः जनासः इन्द्रः ॥ 09 ॥

काव्यानुवाद

जिसके बिना लोग विजयी न होते,
रक्षाकृते युद्ध-कर्ता पुकारें।

जो विश्व का दिव्य प्रतिमान होकर,
अचल को करे चल, वही इन्द्र लोगों ॥ 09 ॥

संहितापाठ

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ 09 ॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यस्मात् = जिसके **ऋते** = विना **जनासो** = जन, लोग **न** = नहीं **विजयन्ते** = विजयी होते हैं, **यम्** = जिसको, **युध्यमाना** = युद्ध करने वाले **अवसे** = रक्षा के लिए **हवन्ते** = आह्वान करते हैं, **यो** जो **विश्वस्य** = विश्व का, **प्रतिमानम्** = प्रतिमान, मानक **बभूव** = हुआ, **यो** जो **अच्युतच्युत्** = अच्युत को च्युत करने वाला, अचल को सचल बनाने वाला (है), **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है) **॥ 09 ॥**

भावार्थ :- जिसके बिना लोग विजेता नहीं होते हैं, युद्ध करने वाले योद्धा रक्षा हेतु जिसका आह्वान करते हैं, जो विश्व का प्रतिमान है, जो अच्युत को च्युत करने वाला अर्थात् अचल को सचल बनाने वाला है, हे लोगों!, वह, इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यमान परमात्मा ही है **॥ 09 ॥**

पदार्थ :- यस्मात् = जिससे (सर्वनाम)। **न** = नहीं (अव्यय)। **ऋते** = विना (अव्यय)। **विजयन्ते** = विजय करते हैं, विजयी होते हैं (वि - विशेष, जि - जय होना, जीतना)। **जनासो** जन, लोग (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **यम्** = जिसे, जिसको (सर्वनाम)। **युध्यमाना** = युद्ध करने वाले (युध् - युद्ध करना, लड़ाई करना)। **अवसे** = रक्षा के लिए, रक्षा करते हो (अव् - रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। **हवन्ते** = आह्वान करते हैं, आदान - प्रदान करते हैं (हू - दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **विश्वस्य** = विश्व का, सभी का

(सर्वनाम)। **प्रतिमानम्** = प्रतिमान (प्रति - सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, मा - मापना, तुलना करना)। **बभूव** = हो गया (भू - होना, प्राप्त होना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **अच्युतच्युत्** = अचल को चल करने वाला (अ - नहीं, च्यु - गिरना, भटकना, जाना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना) **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)॥ 09 ॥

19. यः शश्वतो महि एनो दधानान्,
अमन्यमानान् शर्वा जघान।
यः शर्धते न अनुददाति शृध्याम्,
यो दस्योः हन्ता, सः जनासः इन्द्रः॥ 10 ॥

काव्यानुवाद

शश्वत महत् को करे देव धारण,
न जो मान्य मानें, विहिंसक मिटाये।
हिंसा करे, जो न अनुदान देता,
जो दस्यु-हन्ता, वही इन्द्र लोगों॥ 10 ॥

संहितापाठ

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्द्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः॥10॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यः जिसने **शश्वतो** शाश्वत, **महि** पूजनीय **एनो** पाप को **दधानान्** धारण करने वालों को, **अमन्यमानान्** = न मानने वालों, अविचारशीलों, अमन्यमानों को, **शर्वा** = हिंसक को **जघान** = मार दिया, हनन किया, **यः** जो **शृध्याम्** = विजयों में **न** = नहीं **अनुददाति** = अनुदान देता है, **शर्धते** = जीतता है, **यः** जो **दस्योः** = दस्यु का, दस्यु का, डसने, नष्ट करने वाले

का, **हन्ता** = हन्ता, मारने वाला (है), **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है)॥10॥

भावार्थ :- जो शश्वत, महत्, पूजनीय को धारण करता है, पापियों तथा मान्य को न मानने वालों का हनन करता है, जो विजय में अनुदान नहीं देता है, जय करता है, जो दस्यु को मारने वाला है, हे लोगों! वह इन्द्र है॥10॥

पदार्थ :- यः जिसने, जो (सर्वनाम)। **शश्वतो** शश्वत (शश्व्- नित्य होना, सदैव होना, शश्वत होना) **महि** पूजनीय (मह- सम्मान करना, पूजा करना) **एनो** यह, इनको, दोष, पाप (एनो - यह, इनको (सर्वनाम)। एन - इन - दोष होना, पाप होना)। **दधानान्** धारण करने वाला (धा-धारण करना) **अमन्यमानान्** = न मानने वाला, अविचारशील, अमन्यमानों को (अ - नहीं, मन् - मानना, समझना, विचार करना)। **शर्वा** = हिंसक (शर्व - क्षत करना, घाव करना, मार डालना)। **जघान** = मार दिया, हनन किया (हन्-घ्न - मारना, हिंसा करना)। **यः** जो (सर्वनाम) **शर्धते** = जीतता है, सहन करता है (शृध् - सहन करना, जीतना, शक्ति होना, सामर्थ्य होना) **न** = नहीं (अव्यय)। **अनुददाति** = अनुदान करता है (अनु - पीछे, अनुकूल, दा - देना)। **शृध्याम्** = जय में, शक्ति-सामर्थ्य में (शृध् - सहन करना, जीतना, शक्ति होना, सामर्थ्य होना)। **यो** जो (सर्वनाम)। **दस्योः** = दस्यु का, डसने, नष्ट करने वाले का (दस् - नष्ट होना, नष्ट करना, डसना, रक्षण, पालन, स्थापन करना, देखना)। **हन्ता** = मारने वाला (हन् - मारना)। **सः** वह। **जनासः** लोगों (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)॥ 10 ॥

20. यः शम्बरम् पर्वतेषु क्षियन्तम्,
चत्वारिंश्याम् शरदि अनु अविन्दत्।
ओजायमानम् यो अहिम् जघान,

दानुम् शयानम्, सः जनासः इन्द्रः ॥ 11 ॥

काव्यानुवाद

जो पर्वतों में विनाशी जलों को,
शरद् कर्म चालीस में प्राप्तकर्ता,
सोता हुआ दानु, अहि ओजशाली,
जिन्होंने मिटाया, वही इन्द्र लोगों ॥ 11 ॥

संहितापाठ

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥11 ॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यः जो **पर्वतेषु** = पर्वतों में, पर्वतों पर **क्षियन्तम्** = निवास करने वाले, क्षति करने वाले **शम्बरम्** = शम्बर को, जल को, ताडनकारी को **चत्वरिंश्याम्** = चालीसवें **शरदि** = शरद् में **अनु-अविन्दत्** = प्राप्त किया, **यो** जिसने **शयानम्** = शयन करते हुए, सोते हुए **दानुम्** = दानी, काटने वाले **ओजायमानम्** = ओजयुक्त, शक्तिशाली **अहिम्** = अहि को, अगतिशील, फैले हुए को **जघान** = मार दिया, हनन किया, **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है) ॥ 11 ॥

भावार्थ :- जिसने पर्वतों पर निवास करने वाले शम्बर अर्थात् ताडनकारी को चालीसवें शरद् में प्राप्त किया, अर्थात् खोज लिया। जो अगतिशील, काटने वाले शक्तिशाली को मारने वाला है, हे लोगों, वह परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र परमात्मा है ॥ 11 ॥

पदार्थ :- यः = जिसने, जो (सर्वनाम)। **शम्बरम्** = शम्बर को, ताडनकारी को (शम्ब्- जल होना, ताडन करना, गर्जन करना, मर्दन करना)। **पर्वतेषु** = पर्वतों में, पर्वतों पर (पर्व् - पूर्ण करना, पूरा करना,

भरना, विभाग करना)। **क्षियन्तम्** = निवास करने वाले को, क्षति करने वाले को (क्षि-जाना, चलना, जानना, पाना, निवास करना, रहना, बसना, क्षय होना)। **चत्वरिंश्याम्** = चालीसवें में (संख्या)। **शरदि** = शरद में (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना, शृ - मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। **अनु** = पश्चात्, पीछे, अनुकूल (उपसर्ग)। **अविन्दत्** = प्राप्त किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, विन्द - प्राप्त करना, सम्पादित करना)। **ओजायमानम्** = ओजायमान को (ओज् - शक्तिमान् होना, जीवित होना, बढ़ना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **अहिम्** = व्यापक को (अ - नहीं (उपसर्ग)। हि - चलना, जाना, जानना, पाना, वृद्धि करना, प्रेरणा करना। अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना)। **जघान** = मार दिया, हनन किया (हन्-घ्न - मारना, हिंसा करना)। **दानुम्** = काटने वाले को, दानी को (दा - काटना, दा - देना, सौंपना, लौटाना, रखना)। **शयानम्** = शयन करते हुए को (शी-शय् = शयन करना, सोना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना) ॥ 11 ॥

21. यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान्,
अव असृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणम् अस्फुरद् वज्रबाहुः,
द्याम् आ रोहन्तम्, सः जनासः इन्द्रः ॥ 12 ॥

काव्यानुवाद

करे जो पराक्रभ, धरे सप्त रश्मिः,
प्रगति, वृद्धिकर्ता, सृजक सप्तसिन्धु।
धरे वज्र, द्यो को सुरोहण करे जो,
उसे जो प्रगति दे, वही इन्द्र लोगों ॥ 12 ॥

संहितापाठ

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्त्तवे सप्त सिन्धून्।

यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥12॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यः जिस **सप्तरश्मिः** = सप्तरश्मियुक्त **तुविष्मान्** = प्रगतिशील, वृद्धिशील **वृषभः** = पराक्रमी ने **सर्तवे** = बहने के लिए **सप्त** = सात **सिन्धून्** = सिन्धुओं को **अव-असृजत्** = अवसृजन किया, **यो** जो **वज्रबाहुः** = वज्रबाहु, बाहु में वज्र धारण करने वाला **द्याम्** = द्यु को, प्रकाशमान को **आ** = समन्तात्, सम्यक्, **रोहन्तम्** = रोहण करने वाले, चढ़ते हुए, बढ़ते हुए **रौहिणम्** = रोहणकर्ता को **अस्फुरद्** = प्रस्फुरण किया, गतिमान किया, **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है) **॥ 12 ॥**

भावार्थ :- पराक्रमी, सप्तरश्मि युक्त परम ऐश्वर्यमान इन्द्र परमात्मा ने ही प्रवाह के लिए सात सिन्धुओं का सृजन किया। वह प्रकाश की ओर सम्यक् आरोहण करने वाले का स्फुरण करता है, उसे प्रगति, विस्तार देने वाला है। वह परम ऐश्वर्यमान इन्द्र परमात्मा है **॥ 12 ॥**

पदार्थ :- यः जिसने, जो (सर्वनाम)। **सप्तरश्मिः** = सप्तरश्मि (सप्त - सात, रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। **वृषभः** = पराक्रमी (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना, वृष - बरसना, सींचना, प्रोक्षण करना, मार डालना या पीड़ा करना, दुःख देना, पीड़ित करना)। **तुविष्मान्** = प्रगतिशील, वृद्धिशील (तु - जाना, वृद्धि करना, बढ़ना, पूर्ण करना, दुःख देना, मार डालना)। **अव** = नीचे, दूर, प्राप्त (उपसर्ग)। **असृजत्** = सृजन किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सृज्- सृजन करना, रचना करना, बनाना, विविध रूप से उत्पादन करना)। **सर्तवे** = बहने के लिए (सृ -

जाना, सरकना, चलना, जानना, पाना) **सप्त** = सात (संख्या)। **सिन्धून्** = सिन्धुओं को (सिध - सिद्ध होना, पूर्ण होना, जाना, जानना, पाना, अध्ययन करना, दीक्षा देना, शुभ कार्य करना, सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **रौहिणम्** = रोहणकर्ता को (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। **अस्फुरद्** = स्फुरण किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, स्फुर - हिलाना, फैलना) **वज्रबाहुः** = वज्रबाहु (वज् - गति करना, जाना, बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, बाहर होना, परे हो जाना, हिंसा करना)। **द्याम्** = द्यु को, सबसे बढ़कर, विशिष्ट, प्रकाशमय (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। **रोहन्तम्** = रोहण करने वाले, चढ़ते हुए, बढ़ते हुए को (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना) **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) **॥ 12 ॥**

22. द्यावा चिद् अस्मै पृथिवी नमेते,
शुष्मात् चिद् अस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपाः निचितो वज्रबाहुः,
यो वज्रहस्तः, सः जनास इन्द्रः ॥ 13 ॥

काव्यानुवाद

इसे भूमि-द्यौ भी नमन कर रहे हैं,
महा शक्तिशाली कि पर्वत भयाकुल,
वही सोमपा, है वही वज्रबाहु,
वही वज्रधारी, वही इन्द्र लोगों ॥ 13 ॥

संहितापाठ

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।

यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ।।13 ।।

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- द्यावा = अग्रगामी, प्रकाशमय, द्यावा, **पृथिवी** = पृथ्वी **चिद्** = भी **अस्मै** = इसके लिए **नमेते** = नमन करते हैं। **अस्य** = इसके **शुष्मात्** = शुष्म-बल से **पर्वता** = पर्वत **चिद्** = भी **भयन्ते** = भयभीत होते हैं। **यः** जो **वज्रबाहुः** = वज्रबाहु, **निचितो** = निरन्तर चयनित, एकत्र किया गया **सोमपाः** = सोम का पालक, सोमपान करने वाला (है), **यो** जो **वज्रहस्तः** = वज्रहस्त, गतिग्राही, वज्र ग्रहण करने वाले, वज्रधारी (है) **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है) **।। 13 ।।**

भावार्थ :- जिसको प्रकाशमान द्यु लोक तथा विस्तृत पृथ्वी नमन करते हैं, जिसके शोषण-सामर्थ्य से पर्वत जैसे विशाल तथा शक्तिशाली भी भयभीत हो जाते हैं। जो सोम का निरन्तर पालन करने वाला और पान करने वाला है, जो वज्र धारण करने वाला है, वही इन्द्र है।**। 13 ।।**

पदार्थ :- द्यावा = द्यावा, अग्रगामी, प्रकाशमय (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **चिद्** = भी, ही (अव्यय)। **अस्मै** = इसके लिए (सर्वनाम)। **पृथिवी** = पृथ्वी, विस्तृत भूमि, विस्तार (पृथ्, प्रथ् - विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **नमेते** = नमन करते हैं (नम - नमन करना, सम्मान देना, नमना)। **शुष्मात्** = शुष्म से, शोषण से, सुखाने से (शुष् - सुखाना)। **चिद्** = भी, ही (अव्यय)। **अस्य** = इसका (सर्वनाम)। **पर्वता** = पर्वत (पर्व् - पूर्ण करना, पूरा करना, भरना, विभाग करना)। **भयन्ते** = भयभीत होते हैं (भी - भय होना, डर होना, डराना)। **यः** जिसने, जो (सर्वनाम)। **सोमपाः** = सोम-पालक, सोमपान करने वाला (सु -

उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना। सो–स्य, सय - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना। पा - रक्षा करना, पालन करना, पी-पिब् - पीना, पान करना)। **निचितो** = निरन्तर चेतन, निरन्तर चयनित, एकत्र किया गया (नि - निश्चित, निरन्तर, चित् - चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना, चि - चुनना, चयन करना)। **वज्रबाहुः** = वज्रबाहु (वज् - गति करना, जाना, बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, बाहर होना, परे हो जाना, हिंसा करना)। **यो** जिसने, जो (सर्वनाम)। **वज्रहस्तः** = वज्रहस्त, गतिग्राही, वज्र ग्रहण करने वाले, हाथ में वज्र वाले (वज् - गति करना, जाना, हस्त - देना, लेना, ग्रहण करना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) **।। 13 ।।**

23. यः सुन्वन्तम् अवति यः पचन्तम्,
यः शंसन्तम् यः शशमानम् ऊती।
यस्य ब्रह्म वर्धनम् यस्य सोमो,
यस्य इदम् राधः, सः जनासः इन्द्रः ।। 14 ।।

काव्यानुवाद

सुग्राही, सुपाचक, प्रशंसक, शमनकर,
इन सब जनों का सुरक्षक, सुपालक।
रहा ब्रह्म-बर्धित, सदा सोम-स्वामी,
यही राध जिसका, वही इन्द्र लोगों ।। 14 ।।

संहितापाठ

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।

यस्य ब्रह्म वर्द्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ।।14 ।।

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यः जो **ऊती** = शब्दकर्ता, रक्षक **सुन्वन्तम्** = आसवन कर्ता को, सृजनशील को, ऐश्वर्यवान् को, **यः** जो **पचन्तम्** = पाचक को, परिपक्व करने वाले को, **यः** जो **शंसन्तम्** = प्रशंसक को, **यः** = जो **शशमानम्** = शमनकारी को, **अवति** = रक्षा करता है, **यस्य** = जिसका **ब्रह्म** = ब्रह्म, महान्, बृहत् **वर्धनम्** = वर्धन, वृद्धि, **यस्य** = जिसका **सोमो** = सोम, सृजन-ऐश्वर्य-अन्तकर्ता, **यस्य** = जिसका **इदम्** = यह, **राधः** = शुद्ध, निर्दोष निर्णय, वृद्धि (है), **जनासः** हे लोगों!, **सः** वह, **इन्द्रः** परम ऐश्वर्यमान (है) **।। 14 ।।**

भावार्थ :- जो विविध गुणों, क्षमताओं से सम्पन्न लोगों का संरक्षण, पालन करता है, समस्त ऐश्वर्य तथा सामर्थ्य जिसमें निहित हैं, वह इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा ही है **।। 14 ।।**

पदार्थ :- यः जिसने, जो (सर्वनाम)। **सुन्वन्तम्** = उत्पन्न करने वाले को (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। **अवति** = रक्षा करता है (अव् - रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। **यः** जिसने, जो (सर्वनाम)। **पचन्तम्** = पाचन करने वाले को, पकाने वाले को, व्यक्त करने वाले, प्रसिद्ध करने वाले को (पच् - पकाना, व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, जीर्ण होना)। **यः** जिसने, जो (सर्वनाम)। **शंसन्तम्** = स्तुति करने वाले को, प्रशंसा करने वाले को (शंस् = इच्छा करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना)। **यः** = जिसने, जो (सर्वनाम)। **शशमानम्** = शमनकारी को, कूर्दन करने वाले को (शम् - शमन करना, शान्त करना, विचार करना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट दिखाना। शश् - कूर्दन करना, कूदना, उछलना, कूदते हुए चलना)। **ऊती** = शब्द करने वाला, रक्षा करने वाला (ऊ - शब्द करना, विश्वास

करना, ऊ-अव् - रक्षा करना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **ब्रह्म** = ब्रह्म, बड़ा, विराट, बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **वर्धनम्** = वर्धन को, बढ़ाने वाले को (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **सोमो** = सृजन-ऐश्वर्य-अन्तकर्ता (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य होना, अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू = प्रेरणा देना, सो - अन्त करना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **इदम्** = यह, इसको (सर्वनाम)। **राधः** = शुद्ध, निर्दोष निर्णय, वृद्धि (रध् - शुद्ध होना, निर्दोष होना, पूर्ण करना, समाप्त करना, परिपक्व होना, अपकार करना, हिंसा करना, राध - बढ़ना, निर्णय करना, सिद्ध होना)। **सः** वह (सर्वनाम)। **जनासः** लोगों (जन-उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **इन्द्रः** = परम ऐश्वर्यमान (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना) **।। 14 ।।**

24. यः सुन्वते पचते दुध्रः आ चिद्,
वाजम् दर्दर्षि स किल असि सत्यः।
वयम् ते इन्द्र, विश्वह प्रियासः,
सुवीरासो विदथम् आ वदेम ।। 15 ।।

काव्यानुवाद

सुदोग्धा, सुसर्जक, सुपाचक, सुविद्‌वान,
सदा सत्य हो तुम, तुम्हारे लिए इन्द्र!
प्रियजन सभी, वीर उत्तम बनें हम,
कहें देव! विद्या सभी से सदा हम ।। 15 ।।

संहितापाठ

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम॥ 15॥

(ऋषि - गृत्समद, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यः जो **दुध्र** = दोहनकर्ता **चिद्** = ही **आ** = सम्यक् **सुन्वते** = आसवन करता है, **पचते** = पाचन करता है, परिपक्व करता है, पकाता है, **वाजम्** = विद्या को, गति को **दर्दर्षि** = धारण, सहन, समर्थ, दृढ करता है, **स** = वह **किल** = निश्चय ही **सत्यः** = सत्य **असि** = हो। **इन्द्र** हे परम ऐश्वर्यमान! **वयम्** = हम **विश्वह** = सभी **प्रियासः** = प्रिय, **सुवीरासो** = उत्तम वीर, सुवीर **ते** = तुम्हारे **विदथम्** = विदथ, विद्या, ज्ञान को **आ** = सम्यक्, **वदेम** = कहें, बतायें॥ 15॥

भावार्थ :- परम ऐश्वर्यमान परमात्मा ही सत्य है। हम सब उसके प्रियजन बनें, अच्छे वीर, पराक्रमी बनें। उसके ज्ञान को सम्यक् रूप से कहें, समाज में उस विद्या का प्रकाश फैलायें॥ 15॥

पदार्थ :- यः जिसने, जो (सर्वनाम) **सुन्वते** = स्नान करता है, सवन करता है (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। **पचते** = परिपक्व करता है (पच् = पकाना, व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, जीर्ण होना)। **दुध्र** = दोहन, जाना, शीघ्रता से जाना (द्रु - जाना, शीघ्रता से जाना, चलना, बहना, प्रवाहित होना)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। **चिद्** = भी, ही (अव्यय)। **वाजम्** = विद्या को, गति को (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, वा - गति करना, बहना)। **दर्दर्षि** = दृढ़ करते हो (दृद् = दृढ़ करना, दृढ़ होना, धारण करना, सहन करना, समर्थ होना)। **स** = वह, उसने (सर्वनाम)। **किल** = निश्चय ही (सर्वनाम)। **असि** = हो (अस् - होना)। **सत्यः** = सत्य (सत् = होना, सतत होना,

निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। **वयम्** = हम, हम सब, हम लोग (सर्वनाम)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **इन्द्र** परम ऐश्वर्यमान (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **विश्वह** = विश्व, सभी (सर्वनाम)। **प्रियासः** = प्रिय (प्री - प्रीति करना, तृप्त करना, प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना, कामना करना)। **सुवीरासो** = अच्छे वीर, सुवीर (सु - अच्छा, सुन्दर, वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना) **विदथम्** = विदथ को, विद्वान् को (विद - सुधि रखना, समझना, जानना, समझाना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। **वदेम** = कहें (वद - स्पष्ट कहना, बोलना, समझाना)॥ 15॥

पुरुष सूक्त

(ऋग्वेद, मण्डल 10, अनुवाक 28, सूक्त 90)

25. सहस्रशीर्षाः पुरुषः, सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिम् विश्वतो वृत्वा, अति अतिष्ठत् दशाङ्गुलम्॥ 01॥

काव्यानुवाद

सहस्र शीर्ष वह परम पुरुष, वह सहस्र नेत्र, वह सहस्र पाद।
सर्वतः किये आवृत भू को, दश अंगुल सबसे और अधिक॥ 01॥

संहितापाठ

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ 01॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - पुरुषः पुरुष, परिपूर्ण, **सहस्रशीर्षाः** सहस्रों, हजारों शिरों वाला, **सहस्राक्षः** सहस्रों, हजारों नेत्र वाला, **सहस्रपात्** सहस्रों, हजारों पाद अर्थात् पैरों वाला (है)। **स** वह **भूमिम्** भूमि को, उत्पन्न हुए को, भुवन

को, सृष्टि को **विश्वतोः** = सब ओर से **वृत्वा** आवृत कर **दशाङ्गुलम्** दश अंगुल **अति** अधिक **अतिष्ठत्** स्थित है **॥ 01 ॥**

भावार्थ - परमात्मा अनादि-अनन्त है। प्रतीकात्मक रूप से कहा जाता है कि उसके सहस्रों अर्थात् अनन्त शिर, अनन्त हाथ, अनन्त नेत्र, अनन्त पैर आदि हैं। वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होने के साथ ही उससे भी अधिक है। सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा का एक पाद या अंश है, वह सम्पूर्ण सृष्टि से भी बहुत अधिक है **॥ 01 ॥**

पदार्थ - सहस्रशीर्षा = सहस्रों, हजारों शिरों वाला (सहस्र - हजार, शीर्ष - शीर्ष होना, उच्च होना, मुख्य होना)। **पुरुषः** = पुरुष (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)। **सहस्राक्षः** = सहस्रों, हजारों नेत्र वाला (सहस्र - हजार, अक्ष् - देखना, खेलना)। **सहस्रपात्** = सहस्रों, हजारों पाद अर्थात् पैरों वाला (सहस्र - हजार, पद् - चलना, पत् - चलना, ऐश्वर्य होना)। **स** = वह (सर्वनाम)। **भूमिम्** = भूमि को (भू - होना)। **विश्वतोः** = सब ओर से (सर्वनाम)। **वृत्वा** = आवृत कर, ढक कर (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। **अति** - अधिक। **अतिष्ठत्** = स्थित हुआ (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, तिष्ठ् - ठहरना, स्थित होना)। **दशाङ्गुलम्** = दश अंगुल (दश - दस (संख्या), अङ्ग - चलना, अंकुरित होना, अंग होना, अवयव होना) **॥ 01 ॥**

26. पुरुषः एव इदम् सर्वम्, यत् भूतम् यत् च भाव्यम्। उत अमृतत्वस्य ईशानो, यत् अन्नेन अतिरोहति ॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

हो चुकी सृष्टि, जो होनी है, वह सब कुछ परम पुरुष ही है।
वह अमृत तत्व का ईश्वर है, कर अन्न, प्राण से आरोहण ॥ 02 ॥

संहितापाठ

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ 02 ॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - इदम् यह **सर्वम्** सब, **यत्** जो **भूतम्** उत्पन्न हुआ, **च** और **यत्** जो **भाव्यम्** उत्पन्न होने वाला (है), **पुरुषः** = पुरुष, परिपूर्ण, **एव** = ही (है)। **अमृतत्वस्य** = अमृतत्व का, अमरता का **उत** = भी **ईशानो** = अधिकार, शासन करने वाला (है), **यत्** = जो **अन्नेन** = अन्न, प्राण द्वारा **अतिरोहति** = अत्यन्त बढ़ता है, ऊपर चढ़ता है **॥ 02 ॥**

भावार्थ - जो कुछ हो चुका है, और जो भविष्य में हो सकता है, वह सब कुछ पुरुष अर्थात् परिपूर्ण परमात्मा ही है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। वही अमृतत्व अर्थात् अमरता का शासक है, विभिन्न रूपों में वहीं वृद्धि कर रहा है, शेष सभी तो नाशवान् हैं, क्षरणशील हैं **॥ 02 ॥**

पदार्थ- पुरुषः = पुरुष (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)। **एव** = ही (अव्यय)। **इदम्** यह (सर्वनाम) **सर्वम्** सब (सर्वनाम)। **यत्** जो (सर्वनाम)। **भूतम्** उत्पन्न हुआ (भू - होना, उत्पन्न होना) **यत्** जो (सर्वनाम)। **च** और (अव्यय)। **भाव्यम्** उत्पन्न होने वाला (भू - होना, उत्पन्न होना)। **उत** = ही, भी, ओर (अव्यय, निपात)। **अमृतत्वस्य** = अमृतत्व का, अमरता का (अ - नहीं, मृ - मरना)। **ईशानो** = अधिकार करने वाला, शासन करने वाला (ईश - ऐश्वर्य-अधिकार होना)। **यत्** = जिसे, जो (सर्वनाम)। **अन्नेन** = अन्न द्वारा, प्राण द्वारा (अन् - जीवन होना, प्राणवान् होना, समर्थ होना, जाना, अद् = खाना)। **अतिरोहति** = अत्यन्त बढ़ता है (अति - अधिक, रुह् - जन्म होना, बढ़ना, चढ़ना) **॥ 02 ॥**

27. एतावान् अस्य महिमा, अतो ज्यायान् च पूरुषः।
पादो अस्य सर्वा भूतानि, त्रिपात् अस्य अमृतम् दिवि॥ 03॥

काव्यानुवाद

यह सृष्टि उसी की महिमा है, उससे भी अधिक पुरुष ईश्वर।
सब सृष्टि उसी का एक पाद, हैं दिव्यलोक वह अमृत त्रिपद॥ 03॥

संहितापाठ

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ 03॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - एतावान् यह **अस्य** इसका (परमात्मा का) **महिमा** महिमा, महत्ता, महात्म्य (है), **च** और **पूरुषः** पुरुष, परिपूर्ण (परमात्मा) **अतो** = इससे **ज्यायान्** अधिक, ज्येष्ठ, वर्धित (है)। **अस्य** इसका **पादो** एक पाद (अंश) **सर्वा** सब **भूतानि** उत्पन्न सृष्टि (है), **अस्य** इसका **अमृतम्** अमृत **त्रिपाद्** तीन पाद (तीन अंश) **दिवि** दिव में, दिव्य स्वरूप में (है)**॥ 03॥**

भावार्थ - सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा का ही महत्व प्रकट कर रही है। सम्पूर्ण सृष्टि तो उसका मात्र एक पाद या एक अंश मात्र है। सृष्टि से परे उससे भी अधिक तीन पाद या तीन अंश परमात्मा का विशुद्ध दिव्य स्वरूप ही है। परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त तो है ही, उससे भी कई गुना अधिक परमात्मा का दिव्य स्वरूप है**॥ 03॥**

पदार्थ - एतावान् यह, इतना (सर्वनाम)। **अस्य** इसका (सर्वनाम)। **महिमा** महिमा, महत्ता, महात्म्य (मह् - महत्व होना, पूज्य होना)। **अतो** = इससे (अव्यय)। **ज्यायान्** अधिक, ज्येष्ठ, वर्धित, बड़ा (ज्या - ज्येष्ठ होना, बड़ा होना, बढ़ना, वृद्ध होना)। **च** और (अव्यय)। **पूरुषः** पुरुष, परिपूर्ण (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा

करना, तृप्त करना)। **एव** ही (अव्यय)। **उत** ही (अव्यय)। **पादो** पाद (पद् - चलना, भूषित होना)। **अस्य** इसका **सर्वा** सब (सर्वनाम)। **भूतानि** उत्पन्न हुआ, प्रभूत, सम्भूत, सृष्टि (भू - होना)। **त्रिपाद्** तीन पाद (त्रि - तीन, पद् - चलना, भूषित होना)। **अस्य** इसका (सर्वनाम)। **अमृतम्** अमृत (अ - नहीं, मृ - मरना)। **दिवि** दिव में, दिव्य स्वरूप में (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)**॥ 03॥**

28. त्रिपात् उर्ध्वः उत् ऐत् पुरुषः,
पादो अस्य इह अभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् वि अक्रामत्,
साशनानशने अभि॥ 04॥

काव्यानुवाद

वह ऊर्ध्व त्रिपद, वह परम पुरुष, वह एक पाद से पुनः प्रकट।
सब अशन जीव, सब अनशन भी, संव्याप्त उसी से सदा रहे॥ 04॥

संहितापाठ

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रमत्साशनानशने अभि॥ 04॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - त्रिपात् तीन पाद (तीन अंश) **पुरुषः** पुरुष, परिपूर्ण (परमात्मा) **ऊर्ध्व** ऊपर, उच्च स्थिति में **उत्** ही **ऐत्** प्राप्त होता है। **अस्य** इसका **पादो** एक पाद (एक भाग) **इह** यहाँ (सृष्टि में) **पुनः** फिर **अभवत्** हुआ। **ततो** = इसलिए, उससे **विष्वङ्** विश्व, सभी, व्याप्त **साशनानशने** खाने वाले और न खाने वाले में, व्यापक और अव्यापक में **अभि** सभी ओर **वि-अक्रामत्** विक्रम किया, संरक्षण किया, व्याप्त हुआ**॥ 04॥**

भावार्थ - परमात्मा का तीन पाद या अंश तो उच्च अवस्था अर्थात्

शुद्ध स्वरूप में, दिव्य स्वरूप में अवस्थित रहता है, केवल एक पाद या एक अंश ही सृष्टि के रूप में व्यक्त होता है। इस एक पाद में साशन तथा अनशन सभी रूप सम्मिलित हैं। साशन तथा अनशन अर्थात् व्यापक और अव्यापक। इसका अन्य अर्थ है खाने वाले और न खाने वाले। इसका एक भावार्थ तो यह है कि भोजन कर जीवन यापन करने वाले अर्थात् जीव तथा विना भोजन के रहने वाले अर्थात् निर्जीव पदार्थ। हम जिसे जीव तथा निर्जीव कहते, मानते हैं, वे सभी परमात्मा के ही विविध रूप हैं। परम सत्य के रूप में, परम तात्विक रूप में तो उनमें भी कोई भेद नहीं है। सामाजिक दृष्टि से इसका भावार्थ खाने वाले, नष्ट करने वाले, अन्य लोगों का अधिकार या भाग छीनने वाले दुर्जन तथा सहजता से सरल जीवन जीने वाले सज्जन भी किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य तर्कसंगत भावार्थ भी लिये जा सकते हैं **।। 04 ।।**

पदार्थ - त्रिपात् = तीन पाद (त्रि - तीन, पद् - चलना, भूषित होना)। **ऊर्ध्व** = ऊपर, उच्च अवस्था (सर्वनाम) **उत्** = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च (उपसर्ग)। **ऐत्** = प्राप्त है (**आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। इ - जाना, जानना, पाना)। **पुरुषः** = पुरुष, परिपूर्ण (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)। **पादो** = पाद (पद् - चलना, भूषित होना)। **अस्य** = इसका (सर्वनाम)। **इह** = यह (सर्वनाम)। **अभवत्** = हुआ (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **पुनः** = फिर (अव्यय)। **ततो** = अतः, इसलिए, उससे, उसके अनन्तर (सर्वनाम)। **विष्वङ्** = विश्व अथवा व्याप्त (विष्-विविष् - व्याप्त होना)। **वि-अक्रामत्** = विशेष रूप से प्राप्त हुआ (वि - विशेष, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, क्रम् - चलना, जाना, जानना, पाना, निर्भयता से जाना, रक्षा करना)। **साशनानशने** = खाने वाले और न खाने वाले (स-अशन-अन्-अशन्, स - सहित, साथ, अश् - व्याप्त होना, पाना, पहुँचना, संग्रह करना। अश् - खाना, अन् -

नहीं)। **अभि** = प्रति **।। 04 ।।**

29. तस्मात् विराट् अजायत, विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अति अरिच्यत, पश्चात् भूमिम् अथो पुरः ।। 05 ।।

काव्यानुवाद

अधिपुरुष विराज परम से ही, उत्पन्न विराट् हुआ स्वामी।
उसने विभाग, विस्तार किया, यह भूमि रची, फिर पूर्ण किया ।। 05 ।।

संहितापाठ

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।। 05 ।।

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- तस्मात् उससे, **अधि** अधिष्ठाता **पूरुषः** पुरुष (परमात्मा) से **विराजो** विराज, विशेष ज्योति, प्रकाश से **विराट्** विराट्, विशेष ध्वनि, शब्द **अजायत** उत्पन्न हुआ। **जातो** उत्पन्न करने वाले, उत्पन्न हुए **स** उसने (सृष्टिकर्ता परमात्मा अथवा विराट्, विशेष ध्वनि, शब्द) ने **पश्चात्** पीछे **भूमिम्** भूमि को, **अथो** इसके अनन्तर **पुरः** पुर, पूर्णतः, **अति-अरिच्यत** अतिशय एकत्र किया, विस्तार किया, अलग किया **।। 05 ।।**

भावार्थ - इस मन्त्र से पूर्व यह स्पष्ट किया जा चुका है कि परमात्मा का एक अंश ही सम्पूर्ण सृष्टि के रूप में व्यक्त हुआ है। इस मन्त्र में सृष्टि के सृजन का क्रम या प्रक्रिया बतायी जा रही है। सर्वव्यापी परम चेतन विशेष ज्योति स्वरूप परमात्मा से सबसे पहले विराट् अर्थात् विशेष ध्वनि, शब्द उत्पन्न हुआ। उसके पश्चात् उस विराट् शब्द से भूमि अर्थात् सृष्टि हुई, फिर उसे पूर्ण किया गया। पुर शब्द का अर्थ पूर्ण करना, भरना, अभिगमन होता है। इस शब्द का प्रयोग अभिगमन के आधारभूत माध्यम या लक्ष्य जीव शरीर, ग्राम नगर आदि के अर्थ में भी होता है **।। 05 ।।**

पदार्थ - तस्मात् = उससे (सर्वनाम)। **विराट्** विराट्, विशेष ध्वनि, शब्द (वि - विशेष, रट् - ध्वनि करना, शब्द करना)। **अजायत** उत्पन्न हुआ (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, जन् - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना)। **विराजो** विराज, विशेष प्रकाश से (वि - विशेष, राज् - चमकना, शोभित होना, तेज होना)। **अधि** अधिक, अधिष्ठाता (उपसर्ग)। **पूरुषः** पुरुष (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)। **स** उसने (सर्वनाम)। **जातो** उत्पन्न (जन् - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना)। **अति-अरिच्यत** अतिशय एकत्र किया, विस्तार किया, अलग किया (अति - अधिक, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, रिच् - एकत्र करना, जोड़ना, फैलाना, अलग करना)। **पश्चात्** पीछे (अव्यय)। **भूमिम्** भूमि को (भू - होना)। **अथो** इसके अनन्तर (अव्यय)। **पुरः** पुर, पूर्ति, पूर्ण, भरण (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)॥ 05 ॥

30. यत् पुरुषेण हविषा, देवा यज्ञम् अतन्वत।
वसन्तो अस्य आसीत् आज्यम्,
ग्रीष्मः इध्मः शरत् हविः ॥ 6 ॥

काव्यानुवाद

जो हविष् पुरुष द्वारा स्वामी, देवों ने यजन वितान किया।
इसका वसन्त तो आज्य बना, था ग्रीष्म इध्म, था शरद् हविः ॥ 06 ॥

संहितापाठ

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्मः इध्म शरद्धविः ॥ 06 ॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- यत् जिस **हविषा** हविष् द्वारा, दानयोग्य, ग्रहणयोग्य द्वारा

पुरुषेण पुरुष द्वारा, पुरुष के साथ **देवा** देवगण (दिव्यगुणयुक्त) **यज्ञम्** यज्ञ को **अतन्वत** विस्तृत करते हैं। **वसन्तो** वसन्त **अस्य** इसका **आज्यम्** आज्य (प्रक्षेपण, स्थापन, गमन में समर्थ पदार्थ या ऊर्जा), **ग्रीष्मः** ग्रीष्म **इध्मः** प्रकाशक, **शरत्** शरत् **हविः** हवि (देय, दान, ग्रहणीय) **आसीत्** था ॥ 06 ॥

भावार्थ - इस मन्त्र में यज्ञ का सत्य स्वरूप बताया गया है। यजन हविष् पुरुष अर्थात् हविगुणयुक्त परमात्मा के साथ किया जाता है। हवि शब्द हु धातु से बना है जिसका अर्थ होता है आदान-प्रदान करना तथा दान करना। परमात्मा के साथ हमारा निकट सम्बन्ध है। हम स्वयम् को परमात्मा के प्रति समर्पित कर देते हैं तो हमें दिव्य संरक्षण तथा अनुदान प्राप्त होते हैं। अन्य लोगों को भी हम अपना यह अनुभव प्रदान करते रहें, यजन में सहयोग देते रहें, यह है दान करना। परमात्मा को हविष् विशेषण के साथ स्मरण करने का यही भाव है। यज्ञ तथा यजन शब्द यज् धातु से बनते हैं जिसका अर्थ होता है देवपूजा, संगतिकरण, दान करना। अतः यज्ञ या यजन करने के लिए परमात्मा के हविष् गुण या स्वरूप का स्मरण करना स्वाभाविक तथा उचित है। अब यजन में सहायक सामग्री के रूप में वसन्त को उस यज्ञ का आज्य अर्थात् प्रक्षेपण, स्थापन, गमन में समर्थ पदार्थ या ऊर्जा के रूप में माना गया है। वसन्त ऋतु ही ऐसे कार्यों के लिए उपयुक्त होती है। ग्रीष्म ऋतु में प्रकाश सर्वाधिक होता है, यही उससे प्रेरणा ले सकते हैं। शरद् ऋतु हवि है अर्थात् दान तथा आदान-प्रदान की प्रेरणास्वरूप है। सकारात्मक चिन्तन-विचार हों तो सभी ऋतुओं - अवसरों से सकारात्मक प्रेरणा ले सकते हैं तथा यजन जैसे श्रेष्ठ कार्य कर सकते हैं, अन्यथा प्रत्येक स्थिति में कठिनाइयाँ हमें कार्य करने से रोक सकती हैं ॥ 06 ॥

पदार्थ- यत् जिस **हविषा** हविष् द्वारा (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना) **पुरुषेण** पुरुष के साथ (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना), **देवा** देवगण

(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। **यज्ञम्** यज्ञ को (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)। **अतन्वत** विस्तृत किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, तन् - विस्तार करना)। **वसन्तो** वसन्त (वस् - निवास करना)। **अस्य** इसका (सर्वनाम)। **आज्यम्** आज्य, प्रक्षेपण, स्थापन, गमन में समर्थ को (अज् - स्थापन, गमन, प्रक्षेपण करना)। **ग्रीष्मः** ग्रीष्म (ग्रीष् - तपना, ऊष्म होना)। **इध्मः** प्रकाशक (इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। **शरत्** शरत् (शृ - सुनना, जाना)। **हविः** हवि (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना)। **आसीत्** था (अस् - होना)॥ 06 ॥

31. तम् यज्ञम् बर्हिषि प्र औक्षन्, पुरुषम् जातम् अग्रतः। तेन देवा अयजन्त, साध्या ऋषयः च ये॥ 07 ॥

काव्यानुवाद

वह सृजनकार, वह अग्र पुरुष, उसको प्रोक्षित कर यजन किया।
उससे देवों ने यजन किया, साध्यों, ऋषियों ने यजन किया॥ 07 ॥

संहितापाठ

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ 07 ॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - **तम्** उस **अग्रतः** अग्रणी **जातम्** उत्पन्नकर्ता **यज्ञम्** यजन, पूज्य **पुरुषम्** पुरुष को **बर्हिषि** वृद्धि में, शब्द में, श्रेष्ठता-प्रधानता में, प्रयासों में **प्र-औक्षन्** सींचते हुए, स्वच्छ करते हुए **तेन** उसके द्वारा **ये** जो **देवा** देवगण (विद्वान्), **साध्या** साध्यगण **च** और **ऋषयः** ऋषिगण **अयजन्त**

यजन, पूजन-दान-संगतिकरण करते हैं॥ 07 ॥

भावार्थ - वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। सबसे पहले ज्ञान वेद से ही मिला। यह तथ्य पूर्व मन्त्र में बताया जा चुका है। उससे ही देवगण अर्थात् दिव्यगुणों तथा विद्या से युक्त श्रेष्ठजन, साध्यजन तथा ऋषिगण यजन अर्थात् पूजन, दान तथा संगठन के सामाजिक कार्य करते हैं। बर्हिषि पद बृह् धातु से बना है जिसका अर्थ वृद्धि करना, शब्द करना होता है। अतः बर्हिषि का अर्थ है वृद्धि में, शब्द में। बर्हिषि में बर्ह् धातु मानने पर उसका अर्थ श्रेष्ठता-प्रधानता में तथा प्रयास में होता है। बर्ह् धातु का अर्थ श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना होता है। अतः इसका पदार्थ श्रेष्ठ प्रयासों में मानता उपयुक्त है॥ 07 ॥

पदार्थ - **तम्** उसे (सर्वनाम) **अग्रतः** अग्रणी (अग् - जाना, आगे जाना) **जातम्** उत्पन्न को (जन् - उत्पन्न होना) **यज्ञम्** यज्ञ को (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) **पुरुषम्** पुरुष को (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना), **बर्हिषि** श्रेष्ठता-प्रधानता में, प्रयास में (बृह् - वृद्धि करना, शब्द करना। बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना) **प्र औक्षन्** सींचते हुए, स्वच्छ करते हुए (प्र - प्रकृष्ट, अधिक। उक्ष् - सिंचन करना, स्वच्छ करना)। **तेन** उसके द्वारा (सर्वनाम) **ये** जो (सर्वनाम) **देवा** देवगण (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना), **साध्या** साध्यगण (साध् - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, साधना करना, यशस्वी होना) **च** और (अव्यय) **ऋषयः** ऋषिगण (ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना) **अयजन्त** यजन किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, यज् - देव-पूजन, संगतिकरण, दान करना)॥ 07 ॥

32. तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः, सम्भृतम् पृषद्-आज्यम्।
पशून् तान् चक्रे वायव्यान्, आरण्या ग्राम्याः च ये॥ 08॥

काव्यानुवाद

उस यजन सर्वहुत से स्वामी, सब पृषद् आज्य सम्भृत पाया।
उससे वायव्य, अरण्य, ग्राम्य, उत्पन्न किये पशु-प्राणी सब॥ 08॥

संहितापाठ

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये॥ 08॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- सर्वहुतः सर्वस्व दानी **तस्मात्** उस **यज्ञात्** यजन से, (यजन-पुरुष से, पूर्ण परमात्मा से) **पृषद्-आज्यम्** पृषद्-आज्य को, प्रगति, सरलता, अभिसिञ्चन को **सम्भृतम्** सम्यक् भरण किया। **तान्** उन **वायव्यान्** वायव्य, प्रवाहमान, प्रगतिशील, गतिमान, रचनाशील, **आरण्याः** शब्दकर्ता, युद्धकर्ता, संघर्षशील **च** और **ये** जो **ग्राम्याः** ग्राम्य, ग्रामीण **पशून्** पशुओं को **चक्रे** (उत्पन्न) किया॥ 08॥

भावार्थ - इस पुरुष सूक्त में परमात्मा को पहले पुरुष कहा गया, उसके पश्चात् परमात्मा के दिव्य यजन का वर्णन करते हुए उसको यजन-पुरुष कहा गया, पुनः यज्ञ या यजन कहा गया है। परमात्मा ने जो सृष्टि रचना रूपी यजन प्रारम्भ किया, उस यजन से जीवन-यापन के लिए अनुकूल साधन उत्पन्न हुए। उसके पश्चात् विविध पशु-प्राणी उत्पन्न हुए। पशु शब्द पश् धातु से बनता है जिसका अर्थ देखना तथा बन्धन करना होता है। मनुष्य सहित सभी पशु अर्थात् देखने में तथा सम्बन्ध बनाने में समर्थ हैं। सभी पशुओं का अपना समाज होता है। प्राणी या जीवों की उत्पत्ति से पूर्व उपयोगी भूमि, जल, वनस्पति आदि उत्पन्न हो गये, तभी

विकसित जीवन का अस्तित्व सम्भव हो सका॥ 08॥

पदार्थ- तस्मात् उससे **सर्वहुतः** सर्वस्व दानी, सब को दान अथवा आह्वान करने वाले (सर्व - सब, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना) **यज्ञात्** यजन से (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) **पृषद्** पृषद् (पृष् - जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना)। **आज्यम्** आज्य को, सम्यक् गति, ज्ञान को, पीने, पालन-रक्षण को (अज् - जाना, स्थापन करना, दौड़ाना, फेकना)। **सम्भृतम्** सम्यक् भरण किया (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, भृ - भरण करना, भरना)। **तान्** उनको (सर्वनाम) **पशून्** पशुओं को (पश् - देखना, बन्धन होना) **वायव्यान्** वायव्यों को (वा - गति करना, बहना, पवन-सा चलना, वे - बुनना, रचना करना)। **आरण्याः** आरण्य (अरण्य, अ - नहीं, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना) **च** और (अव्यय) **ये** जो (सर्वनाम) **ग्राम्याः** ग्राम्य, ग्रामीण (ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना) **चक्रे** किया (कृ - करना)॥ 08॥

33. तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः, ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्, यजुः तस्मात् अजायत॥ 09॥

काव्यानुवाद

उस यजन पुरुष से प्रकट ऋचा, सब साम उसी से प्रकट हुए।
उससे ही छन्द अथर्व प्राप्त, उत्पन्न उसी से यजुः हुए॥ 09॥

संहितापाठ

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ 09॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - सर्वहुतः सर्वस्व दानी **तस्मात्** उस **यज्ञात्** यजन से, (यजन-स्वरूप परमात्मा) से **ऋचः** ऋचायें (ऋग्वेद के मन्त्र), **सामानि**

साम (सामवेद के मन्त्र) **जज्ञिरे** उत्पन्न हुए। **तस्मात्** उससे **छन्दांसि** छन्द (सभी छन्द, विशेष रूप से अथर्ववेद के मन्त्र) **जज्ञिरे** उत्पन्न हुए। **तस्मात्** उससे **यजुः** यजुः या यजुष् (यजुर्वेद के मन्त्र) **अजायत** उत्पन्न हुए **॥09॥**

भावार्थ - सम्यक् दृष्टि-सम्पन्न मननशील प्राणी मनुष्य के अस्तित्व में आने पर उसको समुचित ज्ञान तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता थी। इसके लिए परमात्मा ने वेदों को उत्पन्न किया। वेदों का सृजन कैसे हुआ तथा मनुष्य को कैसे प्राप्त हुए, यह गम्भीर चिन्तन तथा शोध का विषय है। माना जा सकता है कि जीवों में चेतनशक्ति तो परमात्मा की चेतना ही है, अतः आदि मानवीय सृष्टि के सरल पवित्र देवजन उस परम चेतन सत्ता परमात्मा की चेतना से एकात्म स्थापित कर उस वेद ज्ञान को प्राप्त कर सके होंगे **॥ 09 ॥**

पदार्थ- तस्मात् उस (सर्वनाम)। **सर्वहुतः** सर्वस्व दानी, सब को दान करने वाले (सर्व - सब, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना)। **यज्ञात्** यजन से (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **ऋचः** ऋचायें (ऋच् - स्तुति करना, चमकना, आच्छादित करना)। **सामानि** साम (साम - सान्त्वना देना, शान्त करना, समाधान करना)। **जज्ञिरे** उत्पन्न हुए (जन् - उत्पन्न होना)। **तस्मात्** उससे (सर्वनाम)। **छन्दांसि** छन्द (छन्द - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)। **जज्ञिरे** उत्पन्न हुए (जन् - उत्पन्न होना)। **यजुः** यजुः, यजुष् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **तस्मात्** उससे (सर्वनाम)। **अजायत** उत्पन्न हुए (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, जन् - उत्पन्न होना) **॥ 09 ॥**

34. तस्मात् अश्वा अजायन्त, ये के च उभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्, तस्मात् जाता अजावयः ॥ 10 ॥

काव्यानुवाद

उससे ही जन्मे उभय-भोज, जो अश्व आदि पशु प्राणी सब।

उससे उत्पन्न हुई गायें, उससे ही बकरी, भेड़ हुए ॥ 10 ॥

संहितापाठ

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ 10 ॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- तस्मात् उससे **अश्वा** अश्व, व्यापक (घोड़े), **च** और **ये** जो **के** कोई **उभयादतः** उभयभक्षी, उभयभोजी **अजायन्त** उत्पन्न हुए। **तस्मात्** उससे, **ह** ही **गावो** प्रगतिशील, मननशील, शब्दकर्ता (गौ, गायें) **जज्ञिरे** उत्पन्न हुए। **तस्मात्** उससे **अजावयः** गतिशील तथा रक्षक, रक्षणीय (बकरी और भेड़) **जाता** उत्पन्न हुए **॥ 10 ॥**

भावार्थ - जिस तरह परमात्मा ने वेद का ज्ञान सभी के कल्याण के लिए दिया, उसी प्रकार अश्व (द्रुतगामी, व्यापक), गौ (प्रगतिशील, मननशील, शब्दकर्ता), अज, अवय (गतिशील तथा रक्षक, रक्षणीय) आदि भी उत्पन्न हुए। अश्व, गौ, अजावय (अज-अवय) शब्दों को व्यापक भावार्थ वाले धातुज अर्थ में लें तो ये समाज के विविध स्वभाव वाले मनुष्य माने जा सकते हैं। लोक प्रचलित घोड़ा, गाय, भेड़-बकरी आदि अर्थ लेने पर मानना चाहिए कि ये भी प्रकृति के संरक्षण तथा संतुलन के लिए उपयोगी सृष्टि हैं। अश्व, गौ, भेड़-बकरी आदि सभी पशु परमात्मा की ही सृष्टि हैं। परमात्मा ने इनमें भेद नहीं किया है। अतः किसी विशेष पशु की रक्षा के लिए विशेष तत्पर होना तथा अन्य को मारना उचित नहीं कहा जा सकता है। मनुष्य के हित का ध्यान रखते हुए विवेकपूर्वक उचित निर्णय करना चाहिए। जनहित में इनका पालन तथा हनन करना उचित है **॥ 10 ॥**

पदार्थ- तस्मात् उससे (सर्वनाम)। **अश्वा** अश्व, द्रुतगामी, व्यापक (अश् - व्याप्त होना, जाना, द्रुतगति से चलना, पाना, पहुँचना, संग्रह करना, ढेर करना)। **अजायन्त** उत्पन्न हुए (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, जन्

- उत्पन्न होना)। **ये** जो (सर्वनाम)। **के** कोई (सर्वनाम)। **च** और (अव्यय) **उभयादतः** उभयभक्षी, दोनो को खाने वाले (उभय - दोनो, अद् - खाना, खिलाना, नष्ट करना)। **गावो** प्रगतिशील, मननशील, शब्दकर्ता (गु - बोलना, मनन करना)। **ह** ही (अव्यय)। **जज्ञिरे** उत्पन्न हुए (जन् - उत्पन्न होना)। **तस्मात्** उससे (सर्वनाम)। **तस्मात्** उससे (सर्वनाम)। **जाता** उत्पन्न हुए (जन् - उत्पन्न होना) **अजावयः** गतिशील तथा रक्षक, रक्षणीय (अज-अवयः, अज् - स्थापन, गमन, प्रक्षेपण करना, अव् - रक्षा करना)॥ **10** ॥

35. यत् पुरुषम् वि अदधुः, कतिधा वि अकल्पयन्। मुखम् किम् अस्य कौ बाहू, का ऊरू पादा उच्येते॥ 11 ॥

काव्यानुवाद

उस परम पुरुष का किस प्रकार, कल्पना करें, सब समझ सकें।
मुख क्या उसका, क्या बाहु-युगल, क्या उरु, क्या पाद कहें स्वामी॥

संहितापाठ

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥ 11 ॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - यत् जिस **पुरुषम्** पुरुष को (परमात्मा को) **वि अदधुः** विशेष रूप से धारण किया है, **कतिधा** कितने प्रकार से **वि अकल्पयन्** विशेषतः कल्पना की है। **अस्य** इसका **मुखम्** मुख **किम्** क्या **आसीत्** था, **कौ** क्या **बाहू** बाहु, प्रयास, प्रगति, **का** क्या, **ऊरू** शब्द, ध्वनि, विश्वास, **पादा** पाद, चरण, भूषण **उच्येते** कहे जाते हैं॥ **11** ॥

भावार्थ - परम सत्य यही है कि परमात्मा का कोई आकार या शरीर है ही नहीं। फिर भी सरलता से समझने के लिए तथा समाज की व्यवस्था में परमात्मा के प्रति श्रद्धा भावना के लिए उसकी कल्पना रूपक के माध्यम

से की गयी है। इस मन्त्र में प्रश्न किया गया है कि समाज के सापेक्ष उसके मुख, हाथ, पैर आदि की कल्पना किस रूप में की जाये। आगे के मन्त्रों में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है।

पदार्थ - यत् जिस, जो (सर्वनाम) **पुरुषम्** पुरुष को (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना) **वि अदधुः** विशेष रूप से धारण किया (वि - विशेष, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, धा - धारण करना), **कतिधा** कितने प्रकार से (सर्वनाम) **वि-अकल्पयन्** विशेषकर कल्पना की है (वि - विशेष, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, कल्प् - कल्पना करना)। **अस्य** इसका (सर्वनाम) **मुखम्** मुख (मुख् - मुख्य होना, जाना, खाना) **किम्** क्या (सर्वनाम) **आसीत्** था (अस् - होना), **का** क्या (सर्वनाम) **बाहू** बाहु, प्रयास, प्रगति (बाह् - प्रयास करना, बह् - गति करना, हिंसा करना), **कौ** क्या (सर्वनाम) **ऊरू** शब्द, ध्वनि, विश्वास (ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना, विश्वास करना), **पादा** पाद, चरण, भूषण (पद् - चलना, भूषित होना) **उच्येते** कहे जाते हैं (उच्-वद् - कहना, बोलना)॥ **11** ॥

36. ब्राह्मणो अस्य मुखम् आसीत्, बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तत् अस्य यत् वैश्यः, पद्भ्याम् शूद्रो अजायत॥ 12 ॥

काव्यानुवाद

ब्राह्मण उसका मुख-रूप हुआ, दो बाहु यथा राजन्य-रूप।
उरु का स्वरूप हैं वैश्य यथा, श्रीचरण पुरुष के शूद्र-रूप॥ 12 ॥

संहितापाठ

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ 12 ॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- ब्राह्मणो ब्राह्मण (ब्रह्म अर्थात् बड़ा, बृहत्, महान्) **अस्य** इसका **मुखम्** मुख **आसीत्** था। **बाहू** बाहु **राजन्यः** राजकर्मी **कृतः** किये। **तत्** वह **यत्** जो **अस्य** इसकी **ऊरू** शब्द, विश्वास, **वैश्यः** वैश्य (है), **पद्भ्याम्** पाद, चरण, भूषण के लिए **शूद्रो** शूद्र, शुद्धिकर्ता, शुद्ध **अजायत** उत्पन्न हुआ **॥ 12 ॥**

भावार्थ - ब्रह्म का अर्थ है बड़ा। सबसे बड़ा होने से परमात्मा ब्रह्म है। वेद को शब्द ब्रह्म कहा जाता है। इनको जानने वाला उपासना करने वाला ब्राह्मण है। उस ज्ञान को प्रवचन-शिक्षण के माध्यम से अन्य लोगों को देने के कारण वह मुख की भूमिका में कल्पित है। राजन्य अर्थात् राज्यकर्मी ही तो शासन के हाथ हैं। सभी प्रशासनिक कार्य वे ही करते हैं। विश् धातु का अर्थ प्रवेश करना, भीतर जाना है। जो लोग समाज में घुले-मिले हैं, समाज के कार्यों में सहभागी हैं, वे वैश्य हैं। सामान्यतः लौकिक संस्कृत भाषा में विश शब्द प्रजा, सामान्य जनों के लिए आता है जिस अर्थ में इस समय निवासी या नागरिक शब्द प्रचलित है। यह जन-सामान्य ही विद्वान्, शासकीय कर्मचारी आदि सभी के निर्वाह का दायित्व निभाता है। शूद्र शब्द का अर्थ है शुद्ध-पवित्र करने वाला। वह पैर अर्थात् गतिशीलता का प्रतीक माना गया है। प्राकृतिक वस्तुओं को शोधन-परिष्कार कर समाज के लिए उपयोगी बना देने वाले शिल्पी इसी प्रकार के लोग हैं। वाहन आदि का निर्माण यदि शिल्पी-यन्त्रविद् न करें तो गतिशीलता सीमित हो जायेगी तथा जन-जीवन पंगु हो जायेगा **॥ 12 ॥**

पदार्थ- ब्राह्मणो ब्राह्मण (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना) **अस्य** इसका (सर्वनाम) **मुखम्** मुख (मुख् - मुख्य होना, जाना, खाना) **आसीत्** था (अस् - होना), **बाहू** बाहु, प्रयास, प्रगति (बाह् - प्रयास करना, बह् - गति करना, हिंसा करना), **राजन्यः** राजकर्मी (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित

होना, जीतना) **कृतः** किये (कृ - करना)। **अस्य** इसकी (सर्वनाम) **ऊरू** शब्द, ध्वनि, विश्वास (ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना, विश्वास करना) **तत्** वह (सर्वनाम) **यत्** जो (सर्वनाम) **वैश्यः** वैश्य, सूचना, प्रेरणा, प्रवेश करने वाला (विश्-सूचना देना, प्रेरणा देना, प्रवेश करना)। **पद्भ्याम्** पाद, चरण, भूषण के लिए (पद् - चलना, भूषित होना) **शूद्रो** शूद्र, शुद्धिकर्ता, शुद्ध (शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना)। **अजायत** उत्पन्न हुआ (जन् - उत्पन्न होना) **॥ 12 ॥**

37. चन्द्रमा मनसो जातः, चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखात् इन्द्रः च अग्निः च, प्राणात् वायुः अजायत ॥ 13 ॥

काव्यानुवाद

उसके मन से उत्पन्न चन्द्र, नेत्रों से सूर्य जन्म पाता।
मुख से ही इन्द्र, अग्नि जन्में, प्राणों से वायु-स्वरूप बना ॥ 13 ॥

संहितापाठ

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ 13 ॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- चन्द्रमा चन्द्रमा **मनसो** मन से **जातः** उत्पन्न हुआ। **चक्षोः** चक्षु अर्थात् नेत्रों से **सूर्यो** सूर्य **अजायत** उत्पन्न हुआ। **मुखात्** मुख से **इन्द्रः** परम ऐश्वर्य **च** और **अग्निः** अग्नि, **च** और **प्राणात्ः** प्राण से **वायुः** वायु **अजायत** उत्पन्न हुआ **॥ 13 ॥**

भावार्थ - ध्यान देने योग्य है कि पहले मूल प्रश्न यह किया गया है कि पुरुष परमात्मा की कल्पना करने पर रूपक के रूप में समाज और प्रकृति की कल्पना किस रूप में की गयी है। इस मन्त्र में बताया गया है कि चन्द्रमा को इस रूपक में मन से उत्पन्न माना गया है। चन्द्रमा का

प्रकाश शीतल होता है। मन को प्रकाश तो चाहिए, परन्तु वह शीतल होना चाहिए। नेत्र को सूर्य के रूपक में कल्पित किया गया है। सूर्य से ही हमारे नेत्रों को देखने की शक्ति प्राप्त होती है। प्रकाश के अन्य साधन भी तो परोक्ष रूप में सूर्य की ऊर्जा से ही कार्य करते हैं। वायु के कम्पन तथा तरंगों से ही सुनना सम्भव हो पाता है। मुख से ग्रहण किया गया भोजन भी जठराग्नि से ही पचता है। मुख से परम ऐश्वर्य होने का भाव आध्यात्मिक ऐश्वर्य को माना जाना चाहिए। मुख की वाणी भी अग्नि के समान अग्रणी, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी होनी चाहिए, यह भावना भी इस कल्पना में निहित है॥ 13॥

पदार्थ - चन्द्रमा चन्द्रमा (चन्द् - चमकना, आनन्द होना, प्रकाश होना, सन्तोष होना)। **मनसो** मन से (मन् - मनन करना)। **जातः** उत्पन्न हुआ (जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **चक्षोः** चक्षु अर्थात् नेत्रों से (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। **सूर्यो** सूर्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। **अजायत** उत्पन्न हुआ (जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **मुखात्** मुख से (मुख् - जाना, जानना, पाना, खाना)। **इन्द्रः** परम ऐश्वर्य (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **च** और (अव्यय)। **अग्निः** अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **च** और (अव्यय)। **प्राणात्** प्राण से (प्र - प्रकृष्ट, अन् - चेतन होना, प्राण होना)। **वायुः** वायु (वा - गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)। **अजायत** उत्पन्न हुआ (जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)॥ 13॥

38. नाभ्याः आसीत् अन्तरिक्षम्, शीर्ष्णो द्यौः सम् अवर्तत। पद्भ्याम् भूमिः, दिशः श्रोत्रात्, तथा लोकान् अकल्पयन्॥

काव्यानुवाद

वह अन्तरिक्ष है नाभि-जनित, शिर से द्यौ वर्तमान स्वामी।
पद से जन्मी है भूमि यही, कानों से दिशा, लोक जन्मे॥ 14॥

संहितापाठ

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥ 14॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- नाभ्याः नाभि से **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष **आसीत्** था, **शीर्ष्णो** शिर से **द्यौः** प्रकाशयुक्त **सम् अवर्तत** सम्यक् रूप से वर्तमान हुआ। **पद्भ्याम्** पैरों से **भूमिः** भूमि, **श्रोत्रात्** श्रवण से, **दिशः** दिशा **तथा** उसी प्रकार **लोकान्** लोकों को **अकल्पयन्** कल्पित किया॥ 14॥

भावार्थ - नाभि मध्य स्थान है, उसी स्थान से शरीर को पोषण भी मिलता है। उसे अन्तरिक्ष कहा गया है। अन्तरिक्ष में ही सभी लोक अवस्थित हैं। भूमि पैर के रूप में है। जैसे पैर के आश्रय से ही शरीर स्थित होता है तथा गति करता है, उसी प्रकार से भूमि के आधार पर ही जीव तथा प्रकृति स्थित हैं। प्रकृति में भूमि तथा समाज में शूद्र का स्थान पैरों के समान महत्वपूर्ण है। समाज तथा प्रकृति के संरक्षण के लिए आवश्यक है कि भूमि की रक्षा की जाये, इसी प्रकार शूद्रों का भी संरक्षण तथा सम्मान किया जाये॥ 14॥

पदार्थ - नाभ्याः नाभि से (नभ् - मध्य होना, केन्द्र होना, हिंसा करना)। **आसीत्** था (अस् - होना)। **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष (अन्तः - बीच में, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **शीर्ष्णो** शिर (शीर्ष - शीर्ष होना, उच्च होना, मुख्य होना)। **द्यौः** प्रकाशयुक्त (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - प्रकाशित होना)। **सम् अवर्तत** सम्यक् वर्तमान हुआ (सम् - सम्यक्, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृत्

- वर्तना, वर्तमान होना, होना)। **पद्भ्याम्** पैरों के लिए (पद् - चलना)। **भूमिः** भूमि (भू - होना)। **दिशः** दिशा (दिश् - दिखाना, समझाना, देना)। **श्रोत्रात्** श्रवण से (श्रु - सुनना)। **तथा** उसी प्रकार (अव्यय)। **लोकान्** लोकों को (लोक् - देखना, बोलना) **अकल्पयन्** कल्पना की (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, कल्प् - कल्पना करना)॥ **14** ॥

39. सप्त अस्य आसन् परिधयः, त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यत् यज्ञम् तन्वाना, अबध्नन् पुरुषम् पशुम्॥ 15॥

काव्यानुवाद

थीं सप्त परिधियाँ उसकी ही, समिधा थीं, सप्त त्रयी स्वामी।
देवों ने यजन वितान किया, आबद्ध पुरुष पशु को करके॥ 15॥

संहितापाठ

सप्तास्यासन्परिधयास्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्॥ 15॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - अस्य इसकी **सप्त** सात **परिधयः** परिधियाँ **आसन्** थीं, **त्रिः सप्त** तीन और सात **समिधः** समिध, प्रकाश **कृताः** किये। **यत्** जो **देवा** देवगण **यज्ञम्** यज्ञ को **तन्वाना** विस्तृत करते हुए, **पुरुषम्** पुरुष को, **पशुम्** पशु को, सद्दृष्टिसम्पन्न सम्बन्धी को **अबध्नन्** बांध लिया, सम्बन्धित किया॥ **15** ॥

भावार्थ - इस मन्त्र में यजन का रूपक के माध्यम से सुन्दर काव्यमय वर्णन किया गया है। उसकी सात परिधियाँ हैं, प्रत्येक परिधि में तीन-तीन ज्योतियाँ हैं। सभी सात परिधियों में प्रत्येक में तीन, इस प्रकार तीन गुणित सात अर्थात् इक्कीस ज्योतियाँ हैं, प्रकाश हैं। इन्द्रधनुष के मुख्य सात वर्णों की सात मुख्य परिधियाँ तथा उन सभी सात वर्णों के तीन-तीन

मद्धिम, सामान्य, तीव्र रंग या प्रकाश-वर्ण माने जा रहे हैं। इस प्रकार 21 ज्योतियों को वर्णित किया जा रहा है। इस यज्ञ को करते हुए देवों अर्थात् दिव्यगुण सम्पन्न लोगों ने पुरुष अर्थात् परमात्मा को बांध लिया, ऐसा कहा गया है। बाँधे गये उस परमात्मा का विशेषण पशु कहा गया है। मन्त्र में काव्यसौन्दर्य दर्शनीय है। पशु शब्द का अर्थ देखने वाला तथा जिसमें दृष्टि हो, ऐसा होता है। पशु का अर्थ बन्धन करने वाला अथवा जिसका बन्धन किया जाये, ऐसा भी हो सकता है। परमात्मा सबकुछ देखने वाला है तथा उपासकों की दृष्टि तो सदा उसमें रहती ही है। श्लेष अलंकार से देखें तो बाँधना क्रिया के साथ पशु शब्द का प्रयोग कर संकेत देने का प्रयास किया गया है कि ऊपर मन्त्रों में यज्ञ का जो सत्य स्वरूप बताया गया है, उस प्रकार यज्ञ करने वाले उपासक तो परमात्मा को मानो पशुओं की तरह बाँध लेते हैं, अर्थात् अपने वश में कर लेते हैं। इस प्रकरण में विद्वानों ने विशेष रूप से यज्ञ का भावार्थ मानस-ज्ञान यज्ञ ही किया है॥ **15** ॥

पदार्थ - सप्त सात (संख्या) **अस्य** इसकी (सर्वनाम) **परिधयः** परिधियाँ (परि - सब ओर, धि - धारण करना) **आसन्** थीं (अस् - होना), **त्रिः सप्त** तीन और सात (त्रि - तीन, सप्त - सात (संख्या)। सप्त - समूह बनाना, मिलना, एकत्र होना) **समिधः** समिधा, दीप्ति, प्रकाश (सम् - सम्यक्, इध्-इधि-इन्ध् - दीप्त होना, प्रकाशित होना), **कृताः** किये (कृ - करना)। **देवा** देवगण (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना) **यत्** जो (सर्वनाम) **यज्ञम्** यज्ञ को (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) **तन्वाना** विस्तृत करते हुए (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना), **अबध्नन्** बांधा (बध् - बाँधना, निश्चय करना)। **पुरुषम्** पुरुष को (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)।

पशुम् पशु को (पश् - देखना, जानना)॥ **15**॥

40. यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त देवाः,
तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्।
ते ह नाकम् महिमानः सचन्त,
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ 16॥

काव्यानुवाद

देवों ने यजन किया यज से, वे प्रथम धर्म थे, सदा रहे।
वे पूर्व साध्य महिमान देव, सब स्वर्ग आदि अधिवास करें॥ 16॥

संहितापाठ

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥16॥

(ऋषि - नारायण, देवता - पुरुष, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - देवाः देवों ने **यज्ञेन** यज्ञ द्वारा **यज्ञम्** यज्ञ को **अयजन्त** यजन किया। **तानि** वे **प्रथमानि** प्रथम **धर्माणि** धर्म **आसन्** थे। **ते** वे **ह** ही **महिमानः** महत्व से युक्त **नाकम्** नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल को **सचन्त** सन्तुष्ट करते हैं समझते हैं, अभिसिंचन करते हैं। **यत्र** जहाँ **पूर्वे** पूर्व में **साध्याः** साध्यगण, **देवाः** देवगण, दिव्यजन **सन्ति** हैं॥ **16**॥

भावार्थ - देवगण यज्ञ द्वारा यज्ञ का यजन कर रहे हैं। यज्ञ ही साधन है, यज्ञ ही साध्य है, यज्ञ ही कर्म है। सब कुछ यज्ञ ही है। जीवन, विचार, चिन्तन पूर्णतः यज्ञमय है। यही यजन है। यज्ञ कोई कर्मकाण्ड नहीं है कि कुछ विशेष रूढ़िगत क्रियायें कर लीं और यजन हो गया। यजन की मूल भावना देवपूजा, संगतिकरण तथा दान को जीवन में पूर्णतः आत्मसात् कर लेना यज्ञ है। ऐसे लोग अपनी महिमा द्वारा, महत्ता द्वारा नाक अर्थात् अविचल तथा अकुटिल होकर अपने जीवन तथा समाज का अभिसिंचन

सद्भावों से करते हैं॥ 16॥

पदार्थ - यज्ञेन यज्ञ द्वारा (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) **यज्ञम्** यज्ञ का (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) **अयजन्त** यजन करते हैं (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना), **देवाः** देवगण (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। **तानि** वे (सर्वनाम) **धर्माणि** धर्म (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना) **प्रथमानि** प्रथम, पहले या मुख्य (प्रथ् - प्रसिद्ध होना, फैलना, फैलाना) **आसन्** थे (अस् - होना)। **ते** वे (सर्वनाम) **ह** ही (अव्यय) **नाकम्** नाक अर्थात् अक हीन, अविचल तथा अकुटिल (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना) **महिमानः** महत्व से युक्त (मह - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना) **सचन्त** सन्तुष्ट करते हैं (सच् - सेवा करना, सन्तुष्ट करना, सींचना, पूर्णतया समझना, सम्बन्धी होना), **यत्र** जहाँ (सर्वनाम) **पूर्वे** पूर्व में, पहले (अव्यय) **साध्याः** साध्य (साध् - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, साधना करना, यशस्वी होना) **सन्ति** हैं (अस् - होना)। **देवाः** देवगण (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)॥ **16**॥

हिरण्यगर्भ सूक्त

(ऋग्वेद, मण्डल 10, अनुवाक 83, सूक्त 121)

41. हिरण्यगर्भः सम् अवर्त्तत अग्रे,
भूतस्य जातः पतिः एकः आसीत्।

स दाधार पृथिवीम् द्याम् उत इमाम्,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

हिरण्यगर्भ ही पूर्व सम्यक् सदा था,
समुत्पन्न सबका वही एक स्वामी।
सुधारण किया भूमि को और द्यौ को,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम ॥ 01 ॥

संहितापाठ

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 01 ॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - अग्रे = अग्र, अग्रणी, आगे, पहले **हिरण्यगर्भः** = प्रकाश, शब्द को गर्भ में रखने वाला **सम्** = सम्यक्, भलीभाँति **अवर्तत** = वर्तमान था। **भूतस्य** = भूत का, उत्पन्न हुए का, **जातः** = उत्पन्न करने वाला **एकः** = एक **पतिः** = ऐश्वर्यवान् स्वामी **आसीत्** = था। **स** = उसने **इमाम्** = इस **पृथिवीम्** = पृथिवी को **उत** = वैसे ही **द्याम्** = द्यु को, **दाधार** = धारण किया, स्थापित किया। **कस्मै** = किस **देवाय** = देव के लिए **हविषा** = हविष द्वारा **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें ॥ 01 ॥

भावार्थ - सम्पूर्ण सृष्टि का मूल परमात्मा ही है। वही सृजन, धारण एवम् पालन करने वाला भी है। अतः हम उस परमात्मा के लिए सर्वस्व समर्पण, आदान-प्रदान, आह्वान, प्रार्थना, उपासना करते हैं, किसी अन्य के लिए नहीं। वह हिरण्यगर्भ कहा गया है। हिरण्यगर्भ का अर्थ है प्रकाश, शब्द को गर्भ में रखने वाला। परमात्मा दिव्य स्वरूप में चेतनसत्ता है जो ऊर्जा

का मूल सूक्ष्म स्वरूप है। प्रकाश तथा ध्वनि या शब्द ही ऊर्जा के सहज, सरल स्वरूप हैं जिनका उपयोग हम सभी सहजता से करते हैं। यही ऊर्जा घनीभूत होकर नानारूपमयी सृष्टि का रूप धारण करती है। हिरण्यगर्भ सूक्त को सृष्टि-प्रक्रिया का सूक्त कहा जाता है ॥ 01 ॥

पदार्थ - हिरण्यगर्भः = प्रकाश, शब्द को गर्भ में रखने वाला (हिरण - प्रकाश करना, शब्द करना, गृह - गृभ् - ग्रहण करना, भीतर रखना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **अवर्तत** = वर्तमान हुआ (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृत् = वर्तना, वर्तमान होना)। **अग्रे** = अग्र, आगे, पहले (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **भूतस्य** = भूत का, उत्पन्न हुए का (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **जातः** = उत्पन्न हुआ, उत्पन्नकर्ता (जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **पतिः** = ऐश्वर्यवान् स्वामी (पत् = जाना, उड़ना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **एकः** = एक (संख्या)। **आसीत्** = था (अस् - होना)। **स** = वह, उसने। **दाधार** = धारण किया, स्थापित किया (धृ - धारण करना)। **पृथिवीम्** = पृथिवी को (पृथ्, प्रथ् = विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **द्याम्** = द्यु को, सबसे बढ़कर, विशिष्ट, प्रकाशमय (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, द्यै = तिरस्कार करना)। **उत** = ही, वैसे ही (अव्यय, निपात)। **इमाम्** = इसको (सर्वनाम)। **कस्मै** = किसलिए, किसके लिए (सर्वनाम)। **देवाय** = देव के लिए (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हविषा** = हविष द्वारा, दान व आदान-प्रदान द्वारा (हू = दान करना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। **विधेम** = विधान करें, विशेष धारण करें (वि - विशेष (उपसर्ग), धा - धारण

करना)॥ 01 ॥

42. यः आत्मदा बलदा यस्य विश्वे,
उपासते प्रशिषम् यस्य देवाः।
यस्य छाया अमृतम् यस्य मृत्युः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

जो आत्मदाता, वही बल प्रदाता,
जिसके प्रशिष को सभी देव मानें।
जिसकी अमृत, मृत्यु जिसकी प्रछाया,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम॥ 02 ॥

संहितापाठ

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 02 ॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - य = जो **आत्मदा** = आत्मदाता, **बलदा** = बल देने वाला (है), **यस्य** = जिसके **प्रशिषम्** = प्रशिष को, प्रयोजन को, अनुशासन को **विश्वे** = सभी **देवाः** = देवगण **यस्य** = जिसकी **उपासते** = उपासना करते है। **यस्य** = जिसका **अमृतम्** = अमृत, अमर, **यस्य** = जिसकी **मृत्युः** = मृत्यु **छाया** = छाया (है), **कस्मै** = किस **देवाय** = देव के लिए **हविषा** = हविष द्वारा **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें॥ 02 ॥

भावार्थ - परमात्मा सृष्टि का मूल तथा उत्पन्न करने वाला होने के साथ ही स्वत्व प्रदान करने वाला (आत्मदा) एवम् बल-शक्ति प्रदान करने

वाला भी है। वही ऋत के रूप में सृष्टि में अनुशासन-व्यवस्था बनाने वाला है जिसके अनुसार सृष्टि का सञ्चालन हो रहा है। सृष्टि तथा प्रलय का कारण भी वही है। विद्वान् भी इस तथ्य को समझकर उसकी व्यवस्था ऋत का पालन कर लाभ उठाते हैं। वैज्ञानिक ऋत के अनुसार नये आविष्कार कर जीवन को सुविधाजनक बनाते हैं॥ 02 ॥

पदार्थ - य = जो (सर्वनाम)। **आत्मदा** = आत्मदाता (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना, दा - देना)। **बलदा** = बल देने वाला (बल् - बल होना, जाना, स्पष्ट करना, प्राण होना, चेतन होना, जीना, जीते रहना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना, द्रव्य को रोकना, दा - देना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **विश्व** = सभी। **उपासते** = उपासना करते है (उप - समीप, निकट, अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। **प्रशिषम्** = प्रशिष को, प्रयोजन को, अनुशासन को (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, शिष् - प्रयोजन करना, शेष रखना, अनुशासन करना, आशीर्वाद देना, हिंसा करना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **देवाः** = देवगण (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **छाया** = छाया (छा-छो - छाया करना, काटना, छद् - आच्छादित करना, ढकना, हटाना, छिपाना, बचाना, बलवान् होना, बलवान् करना)। **अमृतम्** = न मरने वाला, अमर (अ - नहीं। मृ - मरना, देहत्याग करना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **मृत्युः** = मृत्यु (मृ - मरना, देहत्याग करना)। **कस्मै** = किसलिए, किसके लिए (सर्वनाम)। **देवाय** = देव के लिए (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हविषा** = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा (हू - दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना)। **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना)॥ 02 ॥

43. यः प्राणतो निमिषतो महित्वा,
एक इत् राजा जगतो बभूव।
यः ईशे अस्य द्विपदः चतुष्पदः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 03॥

काव्यानुवाद

जो प्राण से, जो निमिष से, महत् से,
जो एक राजा जगत् का हुआ था।
जो ईश सबका द्विपद या चतुष्पद,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम॥ 03॥

संहितापाठ

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 03॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - यः = जो **प्राणतो** = प्राण से **निमिषतो** = निमिष से, सिञ्चन, प्रोक्षण से **महित्वा** = महत्ता द्वारा, महत् से **एक** = एक **इत्** = ही **राजा** = राजा, प्रकाशक **जगतो** = जगत् का, संसार का **बभूव** = हो गया, **यः** = जो **अस्य** = इस **द्विपदः** = द्विपद का, **चतुष्पदः** = चतुष्पद का **ईशे** = शासन करता है, **कस्मै** = किस **देवाय** = देव के लिए **हविषा** = हविष द्वारा **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें॥ 03॥

भावार्थ - सम्पूर्ण सृष्टि का एकमात्र स्वामी परमात्मा ही है तथा वह स्वयम् अपनी महिमा से ही सृष्टि का ईश्वर, स्वामी, नियन्ता बना हुआ है। उसे किसी अन्य की आवश्यकता नहीं है। अतः एकमात्र वह परमात्मा ही उपास्य है, अन्य कोई नहीं॥ 03॥

पदार्थ - यः = जो (सर्वनाम)। **प्राणतो** = प्राण से (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन्- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। **निमिषतो** = निमिष से, सिञ्चन, प्रोक्षण से (नि - निश्चित, नितराम्, निरन्तर, मिष् - सिञ्चन करना, प्रोक्षण करना, घर्षण करना, स्पर्धा करना, विवाद करना, कलह करना, नि-मिष् - पलक झपकाना, आँख बन्द करना)। **महित्वा** = महत्ता द्वारा, महत् होकर (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। **एक** = एक (संख्या)। **इत्** = ही (अव्यय)। **राजा** = राजा, प्रकाशक (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। **जगतो** = जगत् का, संसार का, गतिशील का (जग् - गति करना, लेना, घर्षण करना)। **बभूव** = हो गया (भू - होना, प्राप्त होना)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **ईशे** = शासन करता है (ईश - शासन करना, अधिकार होना)। **अस्य** = इसका (सर्वनाम)। **द्विपदः** = द्विपद वाले (द्वि - दो, संख्या, पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना)। **चतुष्पदः** = चार पैर वाले (चतुः - चार, संख्या, पद - चलना, स्थानान्तर करना)। **कस्मै** = किसलिए, किसके लिए (सर्वनाम)। **देवाय** = देव के लिए (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हविषा** = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा (हू - दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना)॥ 03॥

44. यस्य इमे हिमवन्तो महित्वा,
यस्य समुद्रम् रसया सहाहुः।
यस्य इमाः प्रदिशो यस्य बाहू,
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 04॥

काव्यानुवाद

हिमवान् जिसकी महिमा सुनाते,
सागर सरस नित्य गुणगान गाते।
जिसकी रची ये दिशायें सुनायें,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
ओम देव के हेतु धारें हविष् हम॥ 04॥

संहितापाठ

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 04॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - यस्य = जिसका **इमे** = ये **हिमवन्तो** = हिमवान्, गतिवान्, गति-वृद्धि युक्त, शीतल, **महित्वा** = महिमा द्वारा, **यस्य** = जिसका **समुद्रम्** = समुद्र **रसया** = रस द्वारा, रस के साथ, सरस **सह** = साथ, सहित **आहुः** = कहा, कहते हैं, **यस्य** = जिसकी **इमाः** = ये **प्रदिशो** = प्रदिशाएं **यस्य** = जिसके **बाहू** = प्रयास (हैं), **कस्मै** = किस **देवाय** = देव के लिए **हविषा** = हविष द्वारा **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें॥ 04॥

भावार्थ - सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा की विभूतियों तथा अनुदानों से आनन्दित होकर उसी के गुणगान में निमग्न है। यहाँ इसका सुन्दर काव्यात्मक वर्णन किया गया है॥ 04॥

पदार्थ - यस्य = जिसका (सर्वनाम)। **इमे** = यह, ये (सर्वनाम)। **हिमवन्तो** = हिमवान्, गतिवान्, गति-वृद्धि युक्त, शीतल (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना, शीत होना)। **महित्वा** = महित्व द्वारा, महत् होकर (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना,

बढ़ना, बोलना, कहना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **समुद्रम्** = समुद्र (सम् - सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, उन्द - आर्द्र होना, गीला होना, द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। **रसया** = रस द्वारा (रस - स्वाद लेना, चखना, प्रीति करना, प्यार करना)। **सह** = साथ, सहित (सर्वनाम)। **आहुः** = कहा, कहते हैं, आदान-प्रदान किया हुआ, आहुत, आह्वान किये, बुलाये हुए, व्याप्त (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना, बुलाना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **इमाः** = ये (सर्वनाम)। **प्रदिशो** = दिशाएं (प्र - प्रकृष्ट, दिश् - दिखाना, दिखाना, समझाना, कहना, देना)। **यस्य** = जिसका (सर्वनाम)। **बाहू** = प्रयास (बाह् - प्रयास करना, बह् - बहना, गति करना, बाहर होना, परे हो जाना, हिंसा करना)। **कस्मै** = किसलिए, किसके लिए (सर्वनाम)। **देवाय** = देव के लिए (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हविषा** = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा (हू - दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना)॥ 04॥

45. येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा,
येन स्वः स्तभितम् येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 05॥

काव्यानुवाद

जिन्होंने किया उग्र द्यौ, भूमि को दृढ़,
जिन्होंने प्रतिष्ठित किया नाक, स्वः को।

जिन्होंने रजस् भी रचा अन्तरिक्षे,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम ।। 05 ।।

संहितापाठ

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 05 ।।

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - निचृत् त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - येन जिसके द्वारा **द्यौः** प्रकाशयुक्त **उग्रा** उग्र, तीव्र, तीक्ष्ण, तेजयुक्त **च** और **पृथिवी** पृथ्वी **दृढा** दृढ़ (है), **येन** जिसके द्वारा **स्वः** ऐश्वर्य, उत्पत्ति,सृजन, **येन** जिसके द्वारा **नाकः** नाक, अक हीन, अकुटिल, अविचल, **स्तभितम्** स्थित (हैं), **यो** जो **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में **रजसो** रजस् का (लोक समूह का) **विमानः** विशेष मान करने वाला, निर्माण करने वाला (है), **कस्मै** किस **देवाय** देव के लिये **हविषा** हविष द्वारा **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण करें ।। 05 ।।

भावार्थ - परमात्मा ही द्यौ, पृथ्वी, स्वः, नाक आदि की रचना तथा संचालन करने वाला है। सभी लोक-लोकान्तर उसके द्वारा ही व्यवस्थित हैं। अन्तरिक्ष में फैले हुए रजकणों को वह रचता है, विशेष मानयुक्त करता है। मान का अर्थ आदर-सम्मान के साथ ही विशेष रूप से मापनयोग्य अर्थात् विशाल आकार प्रदान करना तथा नि, वि उपसर्ग के साथ निर्माण करना, रचना, बनाना भी है ।। 05 ।।

पदार्थ - येन जिसके द्वारा (सर्वनाम) **द्यौः** प्रकाशयुक्त (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - चमकना, प्रकाशित होना) **उग्रा** उग्र (उग्र - उग्र होना, तेज होना, तीव्र होना, तीक्ष्ण होना) **च** और (अव्यय) **पृथिवी** पृथ्वी (पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना) **दृढा** दृढ़ (दृढ-दृद - धारण करना, सहन करना, दृढ

होना), **येन** जिससे (सर्वनाम) **स्वः** ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाले (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होना), **येन** जिससे (सर्वनाम) **नाकः** नाक, अक-हीन, अकुटिल, अविचल (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क - नाश होना), **स्तभितम्** स्थित (स्तभ्-स्तभि-स्तम्भ - स्थापित करना, स्थित करना)। **यो** जो (सर्वनाम) **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में (अन्तः - बीच में, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना) **रजसो** रजस् का (रज् - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना) **विमानः** विशेष मान, निर्माण (वि - विशेष, मा - मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना), **कस्मै** किसके लिए (सर्वनाम), **देवाय** देव के लिये (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) **हविषा** हविष से (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना) **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना) ।। 05 ।।

46. यम् क्रन्दसी अवसा तस्तभाने,
अभि ऐक्षेताम् मनसा रेजमाने।
यत्र अधि सूर उदितो विभाति,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 06 ।।

काव्यानुवाद

जिसे क्रन्दनी रक्षणों से सम्भाले,
सु-मन से प्रकाशित उसे देखते हैं।
समधिसूर्य होता उदित व विभासित,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम ।। 06 ।।

संहितापाठ

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।

यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 06॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - यम् जिसे **क्रन्दसी** क्रन्दनयुक्त, शब्दायमान, **अवसा** रक्षण के साथ **तस्तभाने** स्तम्भित, प्रकाशित, **मनसा** मन द्वारा (मनन द्वारा, ज्ञान द्वारा) **रेजमाने** प्रकाशमान **अभि ऐक्षेताम्** अभिमुख देखते हैं, **यत्र** जहाँ **अधि सूर** महासूर्य **उदितो** उदय हुआ **विभाति** विशेष प्रकाशित होता है, **कस्मै** किस **देवाय** देव के लिये **हविषा** हविष से **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण करें॥ 06॥

भावार्थ - रेजमाने पद का भावार्थ विद्वानों ने विविध प्रकार से किया है। रेज धातु का अर्थ प्रकाश करना होता है। अतः रेजमाने पद का अर्थ प्रकाशमान लेना उचित है। अधिसूर का भाव है सूर्य का भी कारण रूप महासूर्य, जो सूर्यों का भी जन्मदाता है॥ 06॥

पदार्थ- यम् जिसको (सर्वनाम) **क्रन्दसी** क्रन्दनयुक्त (क्रन्द् - रोना, पुकारना, दुःख होना)। **अवसा** रक्षण से (अव् - रक्षा करना) **तस्तभाने** स्तभित अथवा प्रकाशित करने वाले (स्तभ्-स्तभि-स्तम्भ - स्थापित करना, स्थित करना)। **अभि** अभिमुख (उपसर्ग) **ऐक्षेताम्** देखें (ईक्ष् - देखना) **मनसा** मन द्वारा (मन् - मनन करना, जानना) **रेजमाने** प्रकाशमान (रेज् - चमकना, प्रकाशित होना)। **यत्र** जहाँ (सर्वनाम) **अधि** अधिक (उपसर्ग) **सूर** सूर्य, ऐश्वर्यवान्, सृजनकर्ता (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होनाा) **उदितो** उदय हुआ (उत्-अय, उत् - ऊपर, उत्कृष्ट, इ - जाना, जानना, पाना) **विभाति** विशेष प्रकाशित होता है (वि - विशेष, भा - चमकना, प्रकाशित होना), **कस्मै** किसके लिए (सर्वनाम) **देवाय** देव के लिये (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना,

खेलना) **हविषा** हविष से (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना) **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना)॥ 06॥

47. आपः ह यत् बृहतीः विश्वम् आयन्,
गर्भम् दधानाः जनयन्तीः अग्निम्।
ततो देवानाम् सम् अवर्तत असुः एकः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 07॥

काव्यानुवाद

वृहद् विश्व में व्याप्त जो एक स्वामी,
करे गर्भ धारण, जना अग्नि को भी।
वही है महाज्योति सब देवगण का,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम॥ 07॥

संहितापाठ

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 07॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यत् = जो **आपः** = आप, व्याप्त, व्यापक **बृहतीः** = बड़ा, बृहत् **ह** = निश्चय ही **विश्वम्** = सबको, विश्व को **आयन्** = शासन करते हुए, शब्द करते हुए **गर्भम्** = गर्भ **दधानाः** = धारण करता है, **अग्निम्** = अग्नि को, अग्रणी को **जनयन्तीः** = उत्पन्न करने वाला (है), **ततो** = उससे **देवानाम्** = देवों का **एकः** = एक (एकमात्र) **असुः** = प्रकाश **सम्** = भलीभाँति **अवर्तत** = वर्तमान हुआ। **कस्मै** = किस **देवाय** = देव के लिए **हविषा** = हविष से **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें॥ 07॥

भावार्थ :- जो विराट गतिशील विश्व को अपने गर्भ में धारण किये हुए है, अग्नि अर्थात् गतिस्वरूप ऊर्जा शक्ति को उत्पन्न करने वाला है, अतः देवों अर्थात् समस्त प्रकृति तथा प्राणियों के लिए एकमात्र प्रकाश है, उस परमात्मा के लिए हम आदान-प्रदान तथा आह्वान करते हैं। विराट सृष्टि का आश्रय परमात्मा ही है। वह प्रकाश आदि ऊर्जा तथा पदार्थ को उत्पन्न करने वाला तथा जीवों के प्राण तथा चेतना का कारण है **।। 07 ।।**

विशेष :- ऋत के अनुसार जब परमात्मा की प्राणशक्ति या चेतन आवेषण को धारण करने में सक्षम शरीर की रचना हो जाती है तो जीवन उत्पन्न हो जाता है। जीव का हृदय-मन-मस्तिष्क परमात्मा से ही चेतन शक्ति प्राप्त करता है तथा उस चेतना का उपयोग कर शरीर की सहायता से कार्य करता है। अतः सभी कर्मों के लिए जीव का मन-मस्तिष्क ही उत्तरदायी होता है। जीव में निहित परमात्मा की चेतन शक्ति ही आत्मा है, अतः वह किसी कर्म के लिए उत्तरदायी नहीं है। जीव में कर्म लिप्त नहीं होता है तथा आत्मा उसके फल का भोक्ता नहीं है। न कर्म लिप्यते नरे (नर में कर्म लिप्त नहीं होता है) **।। 07 ।।**

पदार्थ- आपः = आप, व्याप्त, व्यापक, पालक-रक्षक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। **ह** = ही, निश्चय (अव्यय)। **यत्** = जिसे, जो (सर्वनाम)। **बृहतीः** = बड़ा, विराट, बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **विश्वम्** = सबको, विश्व को। **आयन्** = आते हुए, शासन करने वाले, शब्दकर्ता (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय्-ई - जाना, आय - शब्द करना, शासन करना)। **गर्भम्** = गर्भ को (गृह्-गृभ्-गर्भ् - ग्रहण करना, लेना, अन्तःवास करना, गृ - सींचना, गीला करना, घर्षण करना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना, गल्भ् - जाना, जानना, पाना, ज्ञान होना, चतुर होना, साहस

होना, धैर्य रखना)। **दधानाः** = धारण करने वाले (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **जनयन्तीः** = उत्पन्न करने वाले (जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **अग्निम्** = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी को (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **ततः** = उससे (सर्वनाम)। **देवानाम्** = देवों का (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **अवर्तत** = वर्तमान हुए (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना)। **असुः** = प्रकाश (अस् - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। **एकः** = एक (संख्या)। **कस्मै** = किसलिए, किसके लिए (सर्वनाम)। **देवाय** = देव के लिए (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हविषा** = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा (हू - दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना)। **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना) **।। 07 ।।**

48. यः चित् आपः महिना पर्यपश्यत्,
दक्षम् दधानाः जनयन्तीः यज्ञम्।
यो देवेषु अधि देवः एकः आसीत्,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 08 ।।

काव्यानुवाद

जो व्याप्त हो देखता है महत् से,
जो धारता दक्ष जन यज्ञकर्ता।
जो देवगण में महादेव स्वामी,

किस देव के हेतु धारें हविष् हम?

ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम॥ 08॥

संहितापाठ

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।

यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 08॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यः = जो **चित्** = चेतन **आपः** = आप, व्याप्त, व्यापक **दक्षम्** = दक्ष को **दधानाः** = धारण करने वाले, **यज्ञम्** = यजन को **जनयन्तीः** = उत्पन्न करने वाले, **महिना** = महिमा द्वारा **पर्यपश्यत्** = परितः देखते हैं। **यः** = जो **देवेषु** = देवों में **एकः** = एक **अधि** = अधिगत, अधिक, उच्च **देव** = देव, तेजस्वी, दिव्य **आसीत्** = था। **कस्मै** = किस **देवाय** = देव के लिए **हविषा** = हविष से **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें॥ 08॥

भावार्थ : जो व्यापक चेतन महिमा से सर्वत्र देखता है, दक्षता को धारण किये हुए, यज्ञ को उत्पन्न करने वाला है, जो देवों में एकमात्र सर्वप्रमुख देव है, उस परमात्मा के लिए हम सर्वस्व समर्पण, आदान-प्रदान तथा आह्वान करते हैं। परमात्मा सर्वव्यापी है तो उसकी सर्वत्र दृष्टि भी है। वह सृष्टि के रूप में यजन करने वाला है। वह सभी देवों में एकमात्र अधिदेव महादेव है। अतः उसकी ही उपासना करनी चाहिये॥ 08॥

पदार्थ- यः = जो (सर्वनाम)। **चित्** = भी, ही (अव्यय)। **आपः** = आप, व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। **महिना** = महि द्वारा, महिमा द्वारा (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। **पर्यपश्यत्** = परितः, सभी ओर देखता है (परि - सभी ओर (उपसर्ग), पश्-दृश् -

देखना)। **दक्षम्** = दक्ष को (दक्ष् - चतुर होना, दक्ष होना, बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। **दधानाः** = धारण करने वाले (दध्-घा - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **जनयन्तीः** = उत्पन्न करने वाले (जन-उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **यज्ञम्** = यजन को (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **देवेषु** = देवों में (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **अधि** = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, पूर्णतः (उपसर्ग)। **देव** = देव, तेजस्वी, दिव्य (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **एकः** = एक (संख्या)। **आसीत्** = था (अस् - होना)। **कस्मै** = किसलिए, किसके लिए (सर्वनाम)। **देवाय** = देव के लिए (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हविषा** = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा (हू - दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना)॥ 08॥

49. मा नो हिंसीत् जनिता यः पृथिव्या,
यो वा दिवम् सत्यधर्मा जजान।
यः च अपः चन्द्राः बृहती जजान,
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 09॥

काव्यानुवाद

हिंसा करे न हि, जनक जो धरा का,
जो सत्यधर्मा सु-दिवलोक-कर्ता।

जिसने अपः चन्द्र बृहती रचे हैं,

किस देव के हेतु धारें हविष् हम?

ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम ॥ 09 ॥

संहितापाठ

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।

यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 09 ॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ- यः = जो **पृथिव्या** = पृथ्वी, पृथिवी का **जनिता** = उत्पन्न करने वाला (है), **नो** = हमारी **मा** = नहीं **हिंसीत्** = हिंसा करे। **वा** = अथवा **यो** = जिसने **सत्यधर्मा** = सत्यधर्मा ने, सत्य धर्म युक्त ने **दिवम्** = दिव को, तेजस्वी को **जजान** = उत्पन्न किया, **च** = और **यः** = जिसने **अपः** = पालक, रक्षक, **चन्द्राः** = चन्द्रमा, आनन्द, प्रकाश दायक, **बृहती** = बृहत् को **जजान** = उत्पन्न किया। **कस्मै** = किस **देवाय** = देव के लिए **हविषा** = हविष से **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें **॥ 09 ॥**

भावार्थ - परमात्मा सबको उत्पन्न करने वाला है, हिंसा करने वाला नहीं है। हम भी हिंसा न करें, किसी को क्षति न पहुँचायें, तभी तो परमात्मा की उपासना सार्थक हो सकती है। **॥ 09 ॥**

पदार्थ - मा = नहीं (सर्वनाम)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो (सर्वनाम)। **हिंसीत्** = हिंसा करे (हिंस् - हिंसा करना, मारना)। **जनिता** = उत्पन्न करने वाला (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **पृथिव्या** = पृथ्वी योग्य, पृथिवी (पृथ्, प्रथ् - विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **यो** = जो (सर्वनाम)। **वा** = अथवा (अव्यय)। **दिवम्** = दिव को, तेजस्वी को (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा

करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। **सत्यधर्मा** = सत्य धर्म युक्त (सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना। धृ - धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना)। **जजान** = उत्पन्न किया (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **च** = और (अव्यय)। **अपः** = पालक, रक्षक् (अप् - पालन करना)। **चन्द्राः** = चन्द्रमा, आनन्द, प्रकाश दायक (चन्द् - चमकना, आनन्द होना, प्रकाश होना, सन्तोष होना)। **बृहती** = बड़ा, बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **जजान** = उत्पन्न किया (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **कस्मै** = किसलिए, किसके लिए (सर्वनाम)। **देवाय** = देव के लिए (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हविषा** = हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा (हू - दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, ह्वे - शब्द करना, आह्वान करना)। **विधेम** = विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना) **॥ 09 ॥**

50. प्रजापते न त्वत् एतानि अन्यो,

विश्वा जातानि परि ता बभूव।

यत् कामाः ते जुहुमः तत् नो,

अस्तु वयम् स्याम, पतयो रयीणाम् ॥ 10 ॥

काव्यानुवाद

प्रजापति! नहीं अन्य तुमसे कहीं है,

सभी रूप जो हैं, तुम्हारे रचे हैं।

सभी कामनाएं समर्पित तुम्हें हैं,

बने हम प्रगति, ज्ञान के ईश स्वामी ॥ 10 ॥

संहितापाठ

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ 10 ॥

(ऋषि - हिरण्यगर्भ, प्राजापत्य, देवता - क, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- प्रजापते - हे प्रजापति, **एतानि** - ये, **विश्वा** - सभी **जातानि** - उत्पन्न, **त्वत्** - तुमसे, **अन्यो** - अन्य **ता** - वे, **न** - नहीं **परि** - परितः **बभूव** - हुआ। **यत्** - जो, **नो** - हमारी, **कामाः** - कामनाएं, **ते** - तुम्हें, **जुहुमः** - समर्पित करते हैं, **तत्** - वह, **अस्तु** - हो। **वयम्** - हम **रयीणाम्** - प्रगतियों के **पतयो** - पति, स्वामी **स्याम** - हों ॥ **10** ॥

भावार्थ :- प्रजा का अर्थ है विशेष रूप से उत्पन्न हुआ और प्रजापति उस उत्पन्न हुए का पति, ईश्वर, स्वामी है। जो कुछ भी सृष्टि में उत्पन्न हुआ है, उस प्रजापति परमात्मा से परे, उससे पृथक् अन्य कुछ भी नहीं है, सब कुछ परमात्मा ही है। सृष्टि में प्रकट सभी विविध रूप उसी के हैं। हम जो भी कामना करते हैं, वे सभी परमात्मा को समर्पित कर देते हैं तो हमारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। हम रयि अर्थात् प्रगति, विद्या, दिव्य वाणी वेद के स्वामी, अधिकारी तथा रक्षक हो, यहीं प्रार्थना है। जुहुमः का अर्थ है हम दान करते हैं, समर्पित करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं। हम परमात्मा के साथ आदान प्रदान करते हैं तो उसके हो जाते हैं। हमें स्वतः सब कुछ प्राप्त हो जाता है, क्योंकि सब कुछ परमात्मा ही है, उससे पृथक कुछ है ही नहीं ॥ **10** ॥

पदार्थ :- प्रजापते - हे प्रजापति (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। **न** = नहीं (अव्यय)। **त्वत्** = तुमसे (सर्वनाम)। **एतानि** = ये (सर्वनाम)। **अन्यो** = अन्य (सर्वनाम)। **विश्वा** =

सभी (सर्वनाम)। **जातानि** = उत्पन्न (जन् - उत्पन्न करना)। **परि** = सभी ओर (उपसर्ग)। **ता** = वे (सर्वनाम)। **बभूव** = हुआ (भू - होना)। **यत्** = जो (सर्वनाम), **कामाः** = कामनाएँ (कम् - कामना करना, इच्छा करना, चाहना)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए तुम्हारी (सर्वनाम)। **जुहुमः** = देते हैं, समर्पित करते हैं (हु-जुहु = दान करना, आदान-प्रदान करना, ग्रहण करना, तृप्त करना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **नो (नः)** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **अस्तु** = हो (अस् - होना)। **वयम्** = हम सब (सर्वनाम)। **स्याम** = हों (अस् - होना)। **पतयः** = पति, ऐश्वर्यवान्, स्वामी (पत् - ऐश्वर्य होना)। **रयीणाम्** = प्रगतिशीलताओं का, विद्याओं का (रय् - जाना, जानना, पाना) ॥ **10** ॥

सङ्गठन सूक्त

(ऋग्वेद, मण्डल 10, अनुवाक 85, सूक्त 191)

51. सम् सम् इत् युवसे वृषन्, अग्ने विश्वानि अर्यः आ।
इडस्पदे सम् इध्यसे, स नो वसूनि आ भर ॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

हे अग्नि! मिलाते तुम सबको, सब कुछ बरसाते तुम स्वामी।

सर्वत्र प्रकाशित इडस्पदे, हम सबको वसुओं से भर दे ॥ 01 ॥

संहितापाठ

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।

इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ 01 ॥

(ऋषि - संवनन, देवता - अग्नि, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- वृषन् = हे शक्तिशाली, पराक्रमी, वर्षा करने वाले! **अग्ने** = हे अग्नि! **सम्** = सम्यक्, **सम्** = सम्यक् **इत्** = ही **विश्वानि** = सभी

अर्यः = प्रगतिशील, व्यापक को **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण **युवसे** = युक्त करते हो। **इडस्पदे** = स्तुतियों के पद में **सम्** = सम्यक्, भलीभाँति **इध्यसे** = गति, ज्ञान, प्रकाश करते हो। **स** = वह **नो** = हमारे लिए **वसूनि** = वसुओं को **आ** = समन्तात्, सम्पूर्ण **भर** = भरण करो, पूर्ण करो **॥ 01 ॥**

भावार्थ - हे शक्तिशाली, पराक्रमी अग्निस्वरूप परमात्मा, सम्यक् रूप से सभी प्रगतिशीलताओं को सम्यक्, सम्पूर्ण रूप से युक्त करते हो। स्तुतियों के पद में भलीभाँति गति, ज्ञान, प्रकाश करते हो। हमारे लिए वसुओं को समन्तात् भरण करो, पूर्ण करो। सम्पूर्ण सृष्टि गतिशील है। सम्पूर्ण गति-प्रगति को उत्पन्न करने वाला परमात्मा ही है। वह परमात्मा स्तुतियों के पदों में प्रकाशित है। वेद मन्त्रों को ऋचा, स्तुति भी कहते हैं। वह परमात्मा वेद मन्त्रों में प्रकाशित है अर्थात् वेद मन्त्रों से हम परमात्मा को जान सकते हैं तथा उसका प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं। उससे प्रार्थना है कि हमें प्रगतिशीलता से संयुक्त करे। हमारे जीवन में प्रगति हो। हमें वसु अर्थात् वास-स्थान, वसन-वासन आदि संसाधन प्राप्त हों **॥ 01 ॥**

पदार्थ - सम्-सम् = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **इत्** = ही (अव्यय)। **युवसे** = युक्त करते हो (यु - संयोग-वियोग करना, मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना)। **वृषन्** = शक्तिशाली, पराक्रमी, वर्षक (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **विश्वानि** = सभी (सर्वनाम)। **अर्यः** = अर्य को, प्रगतिशील को (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण (उपसर्ग)। **इडः** = स्तुति का (इड् - धारण करना, घर्षण करना, छेदन करना, ईड् - स्तुति करना)। **पदे** = पद में, चलने में, विद्या में (पद् - चलना, जाना, जानना,

पाना, भूषित होना, भूषित करना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **इध्यसे** = गति, ज्ञान, प्रकाश करते हो (इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। **स** = वह, उसने (सर्वनाम)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **वसूनि** = वसुओं को (वस् - वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण (उपसर्ग)। **भर** = भरण करो, पूर्ण करो (भृ - भरण करना, पूर्ण करना) **॥ 01 ॥**

52. सम् गच्छध्वम् सम् वदध्वम्, सम् वो मनांसि जानताम्।
देवा भागम् यथा पूर्वे, सम् जानाना उपासते ॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

सम्यक् गति हो, सम्यक् वाणी, मन सम्यक् जानें तुम सबके।
देवों ने जाना भाग यथा, सम्यक् उपासना कर-कर के ॥ 02 ॥

संहितापाठ

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥ 02 ॥

(ऋषि - संवनन, देवता - संज्ञानम्, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- सम् = सम्यक्, भलीभाँति **गच्छध्वम्** = चलें। **सम्** = सम्यक्, भलीभाँति **वदध्वम्** = बोलें। **वो** = तुम्हारे **मनांसि** = मन **सम्** = सम्यक्, भलीभाँति **जानताम्** = जानें। **यथा** = जैसे **पूर्वे** = पूर्व, पहले **देवा** = देवगण **सम्** = सम्यक्, भलीभाँति **जानाना** = जानते हुए **भागम्** = भाग, सेवाभाव की **उपासते** = उपासना करते हैं **॥ 02 ॥**

भावार्थ :- जो कुछ भी करें, भलीभांति करें, सम्यक् रूपेण, पूर्णता के साथ करें। कोई भी कार्य जैसे-तैसे आधा-अधूरा न करें। चलने और

बोलने में भी शिष्टता-सभ्यता का पूरा ध्यान रखें। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि हमारे मन भलीभांति जानें। जानकारी तभी उपयोगी और लाभप्रद है जब वह सम्यक् हो, पूर्ण हो। अधूरा ज्ञान होना पर्याप्त नहीं है। इससे तो भ्रम हो सकता है। अतः जो देव पुरुष हैं, तेजस्वी विद्वान् हैं, वे पहले सम्यक् रूपेण जान लेते हैं, पूरा ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसके बाद जो भी सेवा योग्य है, सेवनीय है, उसकी उपासना करते हैं। उपासना (उप-निकट, आस्-बैठना) का अर्थ है निकट बैठना। सेवनीय परमात्मा, वेद या श्रेष्ठ पुरुषों के निकट तभी बैठ सकते हैं जब समुचित ज्ञान हो। ज्ञान के विना उपासना सम्भव नहीं है, लाभ तो दूर की बात है॥ 02 ॥

पदार्थ :- सम् = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **गच्छध्वम्** = जायें (गम्-गच्छ् - जाना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **वदध्वम्** = बोलें (वद् - कहना, समझाना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **वो** = तुम लोग, तुम्हारा, तुमको, तुम सबका, तुम सबको, तुम सबके लिए (सर्वनाम)। **मनांसि** = मन (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **जानताम्** = जानो (ज्ञा-जा - जानना, समझना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **देवा** = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **भागम्** = सेवा, दान, भोजन, भाग को (भज् = सेवा करना, दान करना, भोजन पकाना, अंश या भाग होना)। **यथा** = जैसे, जिस प्रकार (अव्यय)। **पूर्वे** = पूर्व, पहले, पूर्ण करने के लिए (पूर्व = पूर्व, पहले, (सर्वनाम), पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **जानाना** = जानते हुए (ज्ञा-जा - जानना, समझना)। **उपासते** = उपासना करते है (उप - समीप, निकट, अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित

रहना, होना)॥ 02 ॥

53. समानो मन्त्रः समितिः समानी,
समानम् मनः सह चित्तम् एषाम्।
समानम् मन्त्रम् अभि मन्त्रये वः,
समानेन वो हविषा जुहोमि॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

हों मन्त्र समान, समिति सम हो, सह चित्त सभी का, मन सम हो।
सम मन्त्रों से अभिमन्त्रित सब, हवि का प्रतिदान तुम्हें सम हो।॥03 ॥

संहितापाठ

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ 03 ॥

(ऋषि - संवनन, देवता - संज्ञानम्, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- एषाम् = इनके **मन्त्रः** = मन्त्र **समानो** = समान (हों), **समितिः** = समिति **समानी** = समान (हों), **मनः** = मन के **सह** = साथ **चित्तम्** = चित्त **समानम्** = समान (हो)। **समानम्** = समान **मन्त्रम्** = मन्त्र **वः** = तुमको **अभि-मन्त्रये** = अभिमन्त्रित करते हैं। **वो** = तुमको **समानेन** = समान **हविषा** = हविष, दान, आदान-प्रदान द्वारा **जुहोमि** = दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं॥ 03 ॥

भावार्थ :- मन्त्र, समिति, मन और चित्त समान होने चाहिए, तभी समाज व्यवस्थित तथा उन्नत हो सकता है। यदि लोग अलग-अलग मन्त्र बना लेंगे, अपनी-अपनी समितियाँ बना लेंगे, मन और चित्त अलग-अलग हो जायेंगे तो समाज बिखर जायेगा। अतः पूरे समाज को समान मन्त्रों से अभिमन्त्रित करना चाहिए। समाज में आदान-प्रदान चलता रहना चाहिए तथा उसमें ध्यान रखना चाहिए कि समानता बनी रहे, भेदभाव न हो। जिन

वस्तुओं तथा विचारों का आदान-प्रदान किया जाये, वे इस योग्य हों, समाज के लिए उपयोगी हों, लाभप्रद भी हों॥ 03 ॥

पदार्थ :- समानो = समान (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **मन्त्रः =** मन्त्र, मन्त्रणा (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना, मन्त्र = मन्त्रणा करना, विचार करना, गुप्त भाषण करना)। **समितिः =** समिति, समत्व, समता (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **समानी =** समान (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **समानम् =** समान (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **मनः =** मन (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **सह =** साथ, सहित (सर्वनाम)। **चित्तम् =** चित्त या चेतना, ज्ञान (चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, सम्यक् ज्ञान होना, स्मरण करना, शंका करना, सन्देह करना)। **एषाम् =** इनका (सर्वनाम)। **समानम् =** समान (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **मन्त्रम् =** मन्त्र को (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना, मन्त्र = मन्त्रणा करना, विचार करना, गुप्त भाषण करना)। **अभि =** अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा (उपसर्ग)। **मन्त्रये =** मन्त्रित करते हैं (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना, मन्त्र = मन्त्रणा करना, विचार करना, गुप्त भाषण करना)। **वः =** तुम सबको, तुम सबके लिए, तुम सबका, तुम्हारा, तुमको, तुम लोग (सर्वनाम)। **समानेन =** समान द्वारा (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **वो =** तुम सबको, तुम सबके लिए, तुम सबका, तुम्हारा, तुमको, तुम लोग (सर्वनाम)। **हविषा =** हविष से, दान व आदान-प्रदान द्वारा (हू = दान

करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना)। **जुहोमि =** दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं (हु-जुहु = दान करना, आदान-प्रदान करना, ग्रहण करना, तृप्त करना)॥ 03 ॥

54. समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः। समानम् अस्तु वो मनो, यथा वः सु सह असति॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

हो समान वाणी तथा, सबके हृदय समान।
मन समान हों आपके, साथ करें कल्याण॥ 04 ॥

संहितापाठ

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ 04 ॥

(ऋषि - संवनन, देवता - संज्ञानम्, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- वः = तुम्हारी **आकूतिः =** वाणी, भाषा **समानी =** समान (हो)। **वः =** तुम्हारे **हृदयानि =** हृदय **समानम् =** समान **अस्तु =** हो। **वो =** तुम्हारे **मनो =** मन **समाना =** समान (हो), **यथा =** जिससे **वः =** तुम्हारा **सह =** साथ **सु =** उत्तम **असति =** प्रकाशित होता है, चमकता है॥ 04 ॥

भावार्थ :- भाषा, वाणी, हृदय तथा मन ही उन्नति के साधन हैं। यदि हमारे हृदय, भाषा, मन तथा वाणी समान हों तो समाज में उन्नति की चमक बनी रहेगी, समाज प्रगति करता रहेगा॥ 04 ॥

पदार्थ :- समानी = समान (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **वः =** तुम लोग, तुम्हारा, तुमको, तुम सबका, तुम सबको, तुम सबके लिए (सर्वनाम)। **आकूतिः =** आ-कूति, वाणी को, शब्द (आ = समन्तात्, सम्पूर्ण, कू - शब्द करना)। **समाना =** समान (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **वः =** तुम लोग, तुम्हारा, तुमको, तुम सबका, तुम सबको,

तुम सबके लिए। **हृदयानि** = हृदय (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **वः** = तुम लोग, तुम्हारा, तुमको, तुम सबका, तुम सबको, तुम सबके लिए (सर्वनाम)। **समानम्** = समान (सम् = न घबराना, एक समान रहना)। **वः** = तुम लोग, तुम्हारा, तुमको, तुम सबका, तुम सबको, तुम सबके लिए। **अस्तु** = हो (अस - होना, रहना)। **वो** = तुम सबको, तुम सबके लिए, तुम सबका, तुम्हारा, तुमको, तुम लोग (सर्वनाम)। **मनो** = मन (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **यथा** = जिससे, जैसे, जिस प्रकार (अव्यय)। **वः** = तुम सबको, तुम सबके लिए, तुम सबका, तुम्हारा, तुमको, तुम लोग (सर्वनाम)। **सु** = उत्तम, सुष्ठु, अच्छा, सुन्दर (उपसर्ग)। **सह** = साथ, सहित (सर्वनाम) **असति** = प्रकाशित होता है, चमकता है (अस् - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना) **॥ 04 ॥**

अग्नि सूक्त

(सामवेद, अध्याय 01, सूक्त 01)

55. अग्ने आ-याहि वीतये, गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

हे अग्नि! आइये वीति हेतु, प्रवचनकर्ता हवि-दाता हित।
बैठो, होता अभिवर्धन में ॥ 01 ॥

संहितापाठ

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ 01 ॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि! गतिस्वरूप परमात्मन्! **वीतये** = व्याप्त होने के लिए, प्रकाश के लिए **हव्यदातये** = हव्यदाता के लिए **गृणानो** = वाणी, बोध, अभिसिंचन करते हुए **आ-याहि** = आयें, आइए। **होता** = हे आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले! **बर्हिषि** = वृद्धि में **नि** = निश्चित, निरन्तर **सत्सि** = बैठते हो, जाते हो **॥ 01 ॥**

भावार्थ - हम गति स्वरूप अग्रणी अग्नि परमात्मा से आने की प्रार्थना करते हैं। परमात्मा सर्वव्यापी है उसके आवागमन का अर्थ व्याप्त होने की अनुभूति ही है, अतः कहा गया है कि व्याप्त होने के लिए आइए। वह तो सर्वव्यापक है, उसे कहीं आना-जाना है ही नहीं। वी धातु का अर्थ व्याप्त होना, प्रकाश होना तथा गर्भ धारण भी है। ईश्वरीय दिव्य प्रकाश हमारे भीतर स्थिर हो जाये। गृणानो का अर्थ है वाणी, बोध, अभिसिंचन करने वाले। वह शब्दकर्ता है, सम्पूर्ण शब्द अर्थात् ध्वनि का स्रोत है। परमात्मा सबका मूल स्रोत है, तो ध्वनि या शब्द का भी है, अतः यहाँ शब्द का अर्थ शब्द ब्रह्म वेद है। हमें वेद का ज्ञान परमात्मा से प्राप्त होता है तथा हम वेद मन्त्रों से उसकी स्तुति करते हैं, गृणानो पद के ये दोनों अर्थ प्रमुख हैं। जो उच्चारण करने योग्य शब्द हैं, वे वेदमन्त्र के रूप में देने के लिए ही तो हम परमात्मा का आह्वान करते हैं, शेष सब कुछ तो वेद के ज्ञान से हम स्वतः प्राप्त करते हैं। वह निश्चित रूप से होता अर्थात् दानी तथा आदान-प्रदान करने वाला है। बर्हिषि अर्थात् वृद्धि में, जहाँ पर वेद मन्त्रों का उच्चारण तथा वेद विद्या की वृद्धि की जाती है, वहाँ पर परमात्मा निश्चित रूप से अनुदान प्रदान करने के लिए उपस्थित रहता है। वेद मन्त्रों के सामूहिक पाठ तथा व्याख्यान अनिवार्य तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण यज्ञ कर्म हैं, अतः विद्वानों ने बर्हिषि का अर्थ यज्ञ भी किया है **॥ 01 ॥**

पदार्थ - अग्ने = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी

होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **आ-याहि** = आयें, आइए (**आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण (उपसर्ग)। **या** = जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। **वीतये** = व्याप्त होने के लिए, प्रकाश के लिए (वी = जाना, व्याप्त होना, कान्ति होना, प्रकाश होना, चमकना)। **गृणानो** = वाणी, बोध, अभिसिंचन करने वाले (गृ-गृण् = शब्द करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना)। **हव्यदातये** = हव्यदाता के लिए (हू - दान करना, देना, आदान-प्रदान करना, तृप्त करना, दा - दान करना, देना)। **नि** = निश्चित, निरन्तर (उपसर्ग)। **होता** = आदान-प्रदान, ग्रहण, दान करने वाले (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना)। **सत्सि** = बैठते हो, जाते हो (सद् - बैठना, जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, सूखना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। **बर्हिषि** = वृद्धि में, प्रयास में (बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना। बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)॥ **01** ॥

56. त्वम् अग्ने यज्ञानाम् होता, विश्वेषाम् हितः।
देवेभिः मानुषे जने॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

हे अग्नि! यजन में होता हो, सबका हित करने वाले हो।
देवों द्वारा मानव जन में॥ 02 ॥

संहितापाठ

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने॥ 02 ॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि! **त्वम्** = तुम **यज्ञानाम्** = यजनों के

होता = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले, **देवेभिः** = देवों द्वारा **मानुषे** = मानुष **जने** = जन में **विश्वेषाम्** = सभी क़ा, विश्व का **हितः** = हित, गति, वृद्धि करने वाले (हो)॥ **02** ॥

भावार्थ- परमात्मा यज्ञ अर्थात् देवपूजा, सङ्गतिकरण तथा दान के कायों में होता अर्थात् आदान-प्रदान करने वाला है। देव अर्थात् दिव्य गुणों तथा विद्या से युक्त। ऐसे देवों अर्थात् विद्वान् लोगों तथा प्राकृतिक शक्तियों के माध्यम् से परमात्मा ही सभी मनुष्यों का हित करने वाला है।

जब हम यज्ञ अर्थात् विद्वानों की सेवा-सहायता तथा प्राकृतिक शक्तियों भूमि, जल, वायु आदि का संरक्षण पोषण करते हैं तथा सामूहिक प्रयास करते हुए इनके लिए कुछ दान करते हैं तो इस यज्ञ में हमें भी अनेक लाभ स्वास्थ्य, सद्गुण आदि प्राप्त होते हैं। यह भावना रखनी चाहिए कि इस प्रकार आदान-प्रदान करने वाला परमात्मा ही है तथा उसकी ऋत व्यवस्था के अनुकूल ही हमें लाभ प्राप्त होता है। परमात्मा ही दिव्यजनों के माध्यम से मनुष्य समुदाय को प्रेरणा देता है।॥ **02** ॥

पदार्थ - त्वम् = तुम (सर्वनाम)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **यज्ञानाम्** = यजनों का (यज् - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। **होता** = आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। **विश्वेषाम्** = सभी क़ा, विश्व का (सर्वनाम)। **हितः** = हित, गति, वृद्धि (हि - जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। **देवेभिः** = देवों द्वारा (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **मानुषे** = मानुषों में (मन् - मनन करना, समझना, जानना, मान - पूजा करना, सम्मान करना, श्रेष्ठ होना, शोध करना)। **जने**

= जन में (जन - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)॥ 02 ॥

57. अग्निम् दूतम् वृणीमहे, होतारम् विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

हम दूत, अग्नि का वरण करें, होता है, विश्व-वेद स्वामी।
इस सुक्रतु यजन का परमात्मन्॥ 03 ॥

संहितापाठ

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥ 03 ॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - दूतम् = प्रगतिशील, विद्वान्, परिश्रमी, दुःखी, पीड़ित **अग्निम्** = अग्नि, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, **विश्ववेदसम्** = सर्वज्ञ, सभी वेद **होतारम्** = होता, दानी, **अस्य** = इस **यज्ञस्य** = यजन के **सुक्रतुम्** = उत्तम कर्म कर्ता को **वृणीमहे** = वरण करते हैं, स्वीकार करते हैं॥ 03 ॥

भावार्थ- दु तथा दू धातुओं का अर्थ गति करना तथा दुःखी होना, दुःखी करना है। अतः दूत का अर्थ है प्रगतिशील तथा दुःखी। हम परमात्मा का वरण करते हैं। उसका स्वरूप इस मन्त्र में दूत वर्णित किया गया है अर्थात् प्रगतिशील तथा दुःखी, पीड़ित लोगों का वरण करें, उनको अपनायें अपना बनायें। परमात्मा का वरण तभी सम्भव है। परमात्मा विश्ववेदस् अर्थात् सर्वज्ञ है। होतारम् शब्द हु धातु से बना है, जिसका अर्थ है, दान करना, आदान-प्रदान-तृप्त करना। वह आदान-प्रदान तथा तृप्त करने वाला है। परमात्मा विश्ववेद का आदान-प्रदान करता है तथा उसके द्वारा तृप्त भी करता है। हमें परमात्मा से विश्ववेद प्राप्त होता है। हम वेद का पाठ तथा स्वाध्याय करते हैं तथा उसका प्रचार-प्रसार करते हैं। इस प्रकार आदान-प्रदान होता है तथा इससे विश्व तृप्त होता है। विश्ववेद का अर्थ है सम्पूर्ण

वेद अर्थात् सभी वेद मन्त्र। परमात्मा तथा विश्ववेद जीवन यज्ञ को सुन्दर, श्रेष्ठ बनाने वाले हैं। यज्ञ अर्थात् देवपूजा, सङ्गतिकरण तथा दान अर्थात् सामूहिक रूप से विश्वहित का प्रयास॥ 03 ॥

पदार्थ - अग्निम् = अग्नि को, ऊर्ध्वगामी, तेजस्वी, विद्वान् को (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **दूतम्** = प्रगतिशील, विद्वान्, परिश्रमी, दुःखी, पीड़ित (दू = जाना, जानना, पाना, सुगन्ध लेना, श्रम करना, जलना, तप्त होना, दुःख होना, दुःख देना)। **वृणीमहे** = वरण करते हैं, स्वीकार करते हैं (वृ = वरण करना, स्वीकार करना, आनन्द करना, उत्साह करना)। **होतारम्** = होता को, दान तथा आदान-प्रदान करने वाले को (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना)। **विश्ववेदसम्** = सर्वज्ञ, सभी वेद (विश्व - सब (सर्वनाम)। विद् = जानना)। **अस्य** = इसका (सर्वनाम)। **यज्ञस्य** = यजन का (यज्ञ = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **सुक्रतुम्** = अच्छा करने वाले को, सत्कर्म कर्ता को (कृ - करना)॥ 03 ॥

58. अग्निः वृत्राणि जङ्घनत्, द्रविणस्युः विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

वृत्रों का हनन अग्नि करता, सुस्तुतियों द्वारा प्रगतिमान,
वह शुक्र, प्रदीप्त, समाहुत है॥ 04 ॥

संहितापाठ

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः॥ 04 ॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - समिद्धः सम्यक प्रकाशवान् **शुक्र** पवित्र **आहुतः** आह्वान किये, बुलाये हुए **द्रविणस्युः** प्रवाहकामी, प्रगतिशील **अग्निः** अग्नि ने **वृत्राणि** वृत्रों को, हिंसकों को **विपन्यया** विशेष स्तुति से **जङ्घनत्** हनन किया, मार दिया **॥ 04 ॥**

भावार्थ - परमात्मा अग्नि प्रगति, प्रवाहकामी, उद्यमशील, प्रकाशवान् एवम् पवित्र है। वह सुस्तुतियों द्वारा वृत्रों अर्थात् हिंसकों का हनन करता है। जो हिंसक हैं, उनका हनन करना उचित ही है। हिंसकों का हनन, हिंसा का विनाश तो उत्तम स्तुतियों द्वारा ही हो सकता है। हिंसा को अध्यात्म चेतना से समाप्त करने का उत्तम सन्देश है **॥ 04 ॥**

पदार्थ - अग्निः अग्नि (अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना), **वृत्राणि** वृत्रों को, हिंसकों को (वृत् - हिंसा करना, वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना), **जङ्घनत्** हनन किया, मार दिया (हन्-वध् - वध करना, मारना, चलना, गति करना, हिंसा करना) **द्रविणस्युः** प्रवाहकामी (द्रु - जाना, अनुसरण करना), **विपन्यया** विशेष स्तुति द्वारा (वि - विशेष, पन - प्रशंसा करना, स्तुति करना), **समिद्धः** सम्यक प्रकाशवान् (इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना), **शुक्र** पवित्र (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना,जाना), **आहुतः** समन्तात् प्रदत्त, आह्वान किये, बुलाये हुए (आ = समन्तात्, सम्पूर्ण, हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु - ह्वे - आह्वान करना, दान करना, आदान-प्रदान करना) **॥ 04 ॥**

59. प्रेष्ठम् वो अतिथिम् स्तुषे, मित्रम् इव प्रियम्।
अग्ने रथम् न वेद्यम् ॥ 05 ॥

काव्यानुवाद

अतिप्रिय तुम अतिथि, करें स्तुति हम, तुम प्रिय हो मित्र समान हमें।

रथ के समान तुमको जानें, हे अग्नि! अवेद्य तुम्हारा रथ ॥ 05 ॥

संहितापाठ

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्। अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ 05 ॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि! **मित्रम्** = मित्र **इव** = के समान **प्रियम्** = प्रिय, **प्रेष्ठम्** = अत्यन्त प्रिय, **रथम्** = रथ **न** = के समान **वेद्यम्** = जानने योग्य **अतिथिम्** = सतत गतिशील, अतिथि **वो** = तुम्हारी **स्तुषे** = स्तुति करते हैं **॥ 05 ॥**

भावार्थ - गतिस्वरूप अग्रणी तेजस्वी परमात्मा अग्नि हमारे लिए मित्र के समान प्रिय हितैषी तो है ही, वह सर्वाधिक प्रिय अतिथि भी है। उसकी कोई तिथि नहीं है, न आदि की तिथि है और न कहीं आने-जाने की तिथि है, क्योंकि वह अनादि, अजन्मा तथा सर्वव्यापक है, सदा सर्वत्र उपस्थित है। वह निकट है कि रमणीय रथ के समान हम उसको जान सकते हैं। परन्तु उसके रथ को, रमणीयता को जान पाना सामान्य मनुष्यों के लिए सरल नहीं है, वह अवेद्य है अर्थात् जानने योग्य नहीं है। **रथम् न वेद्यम्** का अर्थ रथ के समान जानने योग्य तथा न जानने योग्य रथ दोनो है तथा इस मन्त्र में श्लेष के रूप में दोनो अर्थ स्वीकार्य हैं, यही इसका महत्व तथा काव्य सौन्दर्य है **॥ 05 ॥**

पदार्थ - प्रेष्ठम् = अत्यन्त प्रिय (प्री - प्रीति करना, प्रेम करना, प्रिय होना)। **वो** = तुम लोग, तुमको, तुम सबको, तुम सबके लिए, तुम सबका, तुम्हारा (सर्वनाम)। **अतिथिम्** = सतत गतिशील, अतिथि (अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, जाना)। **स्तुषे** = स्तुति करते हैं (स्तु - प्रशंसा करना, स्तुति करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा करना, भजन करना)। **मित्रम्** = मित्र को (मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, मृदुल होना)। **इव** = की भाँति, के समान

(अव्यय)। **प्रियम्** = प्रिय (प्री - स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **रथम्** = रथ को (रम् - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। **न** = नहीं, के समान, उपमार्थक (अव्यय)। **वेद्यम्** = जानने योग्य (विद् - जानना, समझना, विद्यमान होना)॥ **05** ॥

60. त्वम् नो अग्ने महोभिः, पाहि विश्वस्या अरातेः।
उत द्विषो मर्त्यस्य॥ 06॥

काव्यानुवाद

हे अग्नि! महत् से हम सबकी, सारी अराति से रक्षा कर।
उत मरणशील के द्वेषी से॥ 06॥

संहितापाठ

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः। उत द्विषो मर्त्यस्य।06॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि **त्वम्** = तुम **उत** = ही **महोभिः** = महत्ता द्वारा **विश्वस्या** = सभी **अरातेः** = अदानी, **मर्त्यस्य** = मरणशीलों के **द्विषो** = द्वेषी से **नो** = हमारी **पाहि** = रक्षा करो॥ **06** ॥

भावार्थ - परमात्मा को गुणवाचक अग्नि सम्बोधन देते हुए प्राणिमात्र से द्वेष करने वाले तथा सबको दुःख देने वाले लोगों से रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है। जिनका स्वभाव दुःख देने तथा द्वेष करने का है, वे सबके लिए दुःखदायी हैं तथा सभी से द्वेष करने वाले हैं। ऐसे लोग कभी-कभी स्वयम् को किसी का हितैषी बताते हैं, परन्तु वे किसी के भी हितैषी नहीं हो सकते हैं। मर्त्य का अर्थ है मरणशील। सम्पूर्ण सृष्टि मरणशील है, विशेष रूप से प्राणी। जीवों का जीवनकाल अत्यल्प होता है तथा मनुष्य भी

उनमें एक है। व्यापक अर्थ में मर्त्य का अर्थ सम्पूर्ण सृष्टि तथा सामान्यतः समस्त प्राणी होता है, विशेष रूप से मनुष्य के लिए मर्त्य शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ मर्त्य अर्थात् मरणशील शब्द का प्रयोग द्वेषी लोगों के लिए निन्दार्थक भी है। जो द्वेष भाव के कारण मर्त्य अर्थात् समाप्त होने योग्य हैं, उन्हें न जीवन का अधिकार है और न उनका नाम ही जीवित रहना चाहिए अर्थात् उनका स्मरण भी नहीं किया जाना चाहिए। द्विषो मर्त्यस्य का अर्थ मरणशील का द्वेषी का तथा मरणशील द्वेषी का, दोनो हो सकता है॥ **06** ॥

पदार्थ - त्वम् = तुम (सर्वनाम)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा, (सर्वनाम)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, लेना, ग्रहण करना)। **महोभिः** = महत्ता द्वारा (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। **पाहि** = पालन करो, रक्षा करो (पा - पालन, रक्षण करना)। **विश्वस्या** = विश्व का, सभी का (सर्वनाम)। **अरातेः** = अदानी का (रा = देना)। **उत** = ही (अव्यय)। **द्विषो** = द्वेषी का (द्विष् - द्वेष करना, विरोध करना, शत्रुता करना)। **मर्त्यस्य** = मरणशील का (मृ - मरना, मृत्यु होना)॥ **06** ॥

61. एहि ऊ षु ब्रवाणि ते, अग्ने इत्था इतरा गिरः।
एभिः वर्धासि इन्दुभिः॥ 07॥

काव्यानुवाद

हे अग्नि! आइये, हम कहते, यह सुन्दर इतर वचन स्वामी।
तुम बढ़ो इन्दुओं से स्वामी॥ 07॥

संहितापाठ

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वधासि इन्दुभिः॥ 07॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- अग्ने = हे अग्नि **एहि** = आओ, **ते** = तुम्हारा **ऊ** =

ही **इत्था** = इस प्रकार **सु** = उत्तम **इतराः** = इतर, अन्य **गिरः** = वाणियाँ, **ब्रवाणि** = बोलें। **एभिः** = इनके द्वारा **इन्दुभिः** = इन्दुओं द्वारा, परम ऐश्वर्य द्वारा **वर्धासि** = बढ़ते हो, बढ़ाते हो **॥ 07 ॥**

भावार्थ :- वह अग्नि स्वरूप परमात्मा सर्वतः अग्रणी तथा सभी विद्याओं एवम् शक्तियों का स्रोत है। हम उसको बुलाते हैं तथा प्रार्थना करते हैं कि जो वेदवाणी आपने हमें प्रदान की है, हम उसका समुचित उच्चारण शुद्ध और भलीभाँति कर सकें। वेदों द्वारा ही परमात्मा हमें उन्नति का मार्ग दिखाकर जीवन में आगे बढ़ाता है, सफलता प्रदान करता है **॥ 07 ॥**

पदार्थ :- एहि = आओ, जानो (**आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण। इ = जाना, जानना, पाना)। **ऊ** = ही (अव्यय)। **सु** = उत्तम, अच्छा (उपसर्ग)। **ब्रवाणि** = बोलें (ब्रू - कहना, बोलना)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **इत्था** = इत्था इस प्रकार (अव्यय)। **इतराः** = अन्य (अव्यय)। **गिरः** = वाणियाँ, बोध, सिञ्चन (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना)। **एभिः** = इनके द्वारा (सर्वनाम)। **वर्धासि** = बढ़ते हो, बढ़ाते हो, बढ़ो, बढ़ाओ (वृध् = बढ़ना, चमकना, बोलना)। **इन्दुभिः** = इन्दुओं द्वारा, परम ऐश्वर्य द्वारा (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) **॥ 07 ॥**

62. आ ते वत्सो मनो यमत्, परमात् चित् सधस्थात्।
अग्ने त्वाम् कामये गिरा ॥ 08 ॥

काव्यानुवाद

हे अग्नि, तुम्हारा शब्द मनन, नियमन करता है परम धाम।
तुमको वाणी से हम चाहें ॥ 08 ॥

संहितापाठ

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्तात्।

अग्ने त्वाङ् कामये गिरा ॥ 08 ॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि! **ते** = तुम्हारा **वत्सो** = वत्स, वाणी, **मनो** = मन **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण **यमत्** = नियमन करता है। **त्वाम्** = तुम्हें **परमात्** = परम से **सधस्थात्** = सहस्थान, साथ से **चित्** = ही **गिरा** = स्तुतियों, वाणियों द्वारा **कामये** = कामना करते हैं **॥ 08 ॥**

भावार्थ :- परमात्मा की वेदवाणी का सम्यक् उच्चारण या पाठ तथा स्वाध्याय करने वाले का मन सशक्त होता है। मन ही सभी कार्यों तथा विचारों का वाहक-सञ्चालक है, अतः व्यक्ति का मन सशक्त होने से विचार शक्ति, कार्यशक्ति तथा मनोबल, आत्मबल बढ़ता है। अतः हम इस वेदवाणी के माध्यम से अर्थात् वेदमन्त्रों से परमात्मा की कामना करते हैं, उपासना करते हैं, प्राप्त करते हैं **॥ 08 ॥**

पदार्थ - आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण (उपसर्ग)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **वत्सो** = वत्स, वाणी (वद् - कहना, बोलना)। **मनो** = मन (मन् - जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **यमत्** = यमन करता है (यम् - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। **परमात्** = परम, अत्यन्त, उच्चतम, प्रमुखतम (सर्वनाम)। **चित्** = ही (अव्यय)। **चित्** = चेतन (चित् - चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। **सधस्थात्** = सहस्थान, सहगामी, साथ (सध - सह, साथ। स्था - स्थित होना, ठहरना)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, ग्रहण करना)। **त्वाम्** = तुमको (सर्वनाम)। **कामये** = कामना करते हैं, चाहते हैं (कम - चाहना, इच्छा करना)। **गिरा** = स्तुतियां, वाणियाँ (गृ

- सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गॄ - शब्द करना) **॥ 08 ॥**

63. त्वाम् अग्ने पुष्करात् अधि, अथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ 09 ॥

काव्यानुवाद

हे अग्नि, अथर्वा, अविचल ने, पुष्कर से मन्थन किया तुम्हें।
वह मूर्ध्न विश्व का वाघों से ॥ 09 ॥

संहितापाठ

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ 09 ॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - अग्ने = हे अग्नि! **त्वाम्** = तुमको **विश्वस्य** = सभी के **वाघतः** = उत्थान से **मूर्ध्नो** = उच्च **अथर्वा** = अविचलित-अहिंसक **ने अधि** = अधिगत, उच्च **पुष्करात्** = पुष्कर से, पुष्टिकर से **निः** = निरन्तर, निश्चित **अमन्थत** = मथा, मन्थन किया **॥ 09 ॥**

भावार्थ - परमात्मा की वेदवाणी किसी देश या समुदाय के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए है। विश्व के पोषण की भावना से कुटिलता, हिंसा तथा विचलित होने जैसे दुर्गुणों तथा दुर्बलताओं से मुक्त होकर वेद का स्वाध्याय करना चाहिए।

पदार्थ - त्वाम् = तुमको (सर्वनाम)। **अग्ने** = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **पुष्करात्** = पुष्कर से, पुष्टिकर से (पुष् - पालन-पोषण करना, धारण करना, रक्षण करना, वृद्धि करना, विभाग करना, कृ - करना)। **अधि** = अधिगत, अधिक, उच्च, पूर्णतः (उपसर्ग)। **अथर्वा** = अविचलित-अहिंसक (अ - नहीं, थर्व - अस्थिर होना, हिंसा करना)। **निः** = निरन्तर, निश्चित (अव्यय)। **अमन्थत** = मथा, मन्थन किया (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, मथ् - मथना, मन्थन करना)। **मूर्ध्नो** = उच्च (मूर्ध-मूर्द्ध - उच्च होना)। **विश्वस्य** = विश्व का, सभी का (सर्वनाम)। **वाघतः** = उत्थान से (वघ् - रुकना, उठना, उत्थान करना) **॥ 09 ॥**

64. अग्ने विवस्वत् आ भर, अस्मभ्यम् ऊतये महे।
देवो हि असि नो दृशे ॥ 10 ॥

काव्यानुवाद

हे अग्नि, विवस्वत्, भरण करो, रक्षा हित महत् हमारे प्रभु।
तुम देव हमारे दृष्टि रहो ॥ 10 ॥

संहितापाठ

अग्ने विवस्वदाभरास्मभ्यमूतये महे। देवोह्यसि नो दृशे ॥ 10 ॥

(ऋषि - भरद्वाज, देवता - अग्नि, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - विवस्वत् = हे विशेष वासयुक्त, विशेष वास देने वाले **महे** = महान् **अग्ने** = हे अग्नि! **अस्मभ्यम्** = हमारे **ऊतये** = रक्षा के लिए **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण **भर** = पोषण करो, भरो, पूर्ण करो। **देवो** = देव **हि** = ही **नो** = हमारे **दृशे** = दृष्टि में **असि** = हो **॥ 10 ॥**

भावार्थ - इसमें प्रार्थना की गयी है कि हे परमात्मन्! हम वेदवाणी का समुचित उच्चारण तथा संरक्षण करना चाहते हैं। इसके लिए विशेष वासस्थान तथा आच्छादन प्रदान करो, जिससे वेद ग्रन्थ तथा हमारी सुरक्षा हो सके। हमारे लिए वेद ज्ञान का प्रकाश देने वाले आप ही देव हैं, कोई अन्य नहीं। आप ही एक मात्र देव हैं, आप हमारी दृष्टि में रहें, हम आप से विमुख न हों, यही प्रार्थना हैं।

पदार्थ - अग्ने = हे अग्नि (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)। **विवस्वत्** = विशेष वासयुक्त, विशेष वास देने वाले (वि - विशेष, वस - निवास करना)।

आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण (उपसर्ग)। **भर** = पोषण करो, भरो, पूर्ण करो (भृ - धारण-पोषण करना, पूर्ण करना)। **अस्मभ्यम्** = हमारे लिए (सर्वनाम)। **ऊतये** = रक्षा के लिए (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, ऊ- अव् - रक्षा करना)। **महे** = हे महान्, पूज्य, महिमावान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, कहना)। **देवो** = देव (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **हि** = ही, निश्चय (अव्यय)। **असि** = हो (अस् - होना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा, हम दो (सर्वनाम)। **दृशे** = देखने के लिए, दृष्टि में (दृश्-पश्य - देखना)॥ 10 ॥

स्वस्ति सूक्त

(सामवेद, अध्याय 28, सूक्त 09)

65. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः,
परावतः आ जगन्था परस्याः।
सृकम् संशाय पविम् इन्द्र तिग्मम्,
वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

मृग के समान जो भीम कुचर, दूसरे जगत् के जो गिरिष्ठ।
हे इन्द्र! तीक्ष्ण पवि वेगवान्, दण्डित कर रण में शत्रु दुष्ट॥ 01 ॥

संहितापाठ

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढ़ि वि मृधो नुदस्व॥ 01 ॥

(ऋषि - अप्रतिरथ ऐन्द्रावायव, देवता - इन्द्र, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - मृगो = अन्वेषी, आखेटक, मृत्युगामी, मृत्यु की ओर ले

जाने वाला **न** = के समान **भीमः** = भयङ्कर **कुचरो** = कुचर, कुटिल, **गिरिष्ठाः** = वाणी में स्थित, अत्यन्त गिरि, बहुभाषी, बड़बोले **परस्याः** = पराये, अन्य **परावतः** = दूर से **आ-जगन्था** = आये हैं। **इन्द्र** = हे परम ऐश्वर्यशाली! **सृकम्** = गतिशील **पविम्** = पवित्र, पालक, रक्षक **तिग्मम्** = गति, ज्ञान, प्राप्ति को, कौटिल्य को, कूटचाल को **संशाय** = सम्यक् तीक्ष्ण कर **शत्रून्** = शत्रुओं को **वि** = विशेष **ताढि** = ताड़ना दो, प्रकाश दो, कहो, बोलो। **मृधो** = हिंसक को **वि** = विशेष, **नुदस्व** = प्रेरित करों॥ 01 ॥

भावार्थ - अपसंस्कृतियों के हिंसक लोग सज्जनों के लिए आखेटक के समान भयङ्कर बन जाते हैं। समाज का नेतृत्व करने वाले आध्यात्मिक ऐश्वर्य से सम्पन्न वैदिक विद्वान् प्रगतिशील लोगों को उत्साहित तथा अनुशासित कर ऐसे लोगों को नियन्त्रित कर सकते हैं। अन्ततः उनको भी प्रेरणा देकर सन्मार्ग की ओर ले जाना चाहिए। नुद् धातु का अर्थ भेजना, प्रेरणा करना, जाना है। किसी कार्य के लिए प्रेरित करने में भेजना, दूर फेकना अर्थ भी माना जाता है। सम्पूर्ण समाज दिव्य वैदिक संस्कृति के आध्यात्मिक ऐश्वर्य से ओतप्रोत हो तो शान्ति-सद्भाव बना रहेगा तथा समाज विकास कर सकेगा॥ 01 ॥

पदार्थ - मृगो = मृग, अन्वेषी, आखेटक, मृत्युगामी, मृत्यु की ओर ले जाने वाला (मृग् - अन्वेषण करना, खोजना, आखेट करना, मृ - मरना, गम् - जाना)। **न** = नहीं, के समान, उपमार्थक (अव्यय)। **भीमः** = भयङ्कर (भी - डरना)। **कुचरो** = कुचर, दुष्ट आचरण वाले (कु - अनुचित, बुरा, चर - चलना, आचरण करना, कुच् - आकुञ्चन होना, लपेटना, स्वच्छ करना, लिखना, चुराना)। **गिरिष्ठाः** = गिरि पर स्थित, अत्यन्त गिरि, वाणियों में स्थित (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना, गृ - शब्द करना, स्थ - स्थित होना)। **परावतः** = दूर से (परा - परम, परे, दूर, पीछे, विपरीत (अव्यय)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण (उपसर्ग)। **जगन्था** = गतिशील (जग् - गति करना, लेना, घर्षण करना)।

परस्याः = पर का, अन्य का (सर्वनाम)। **सृकम्** = सृक को, प्रगतिशील को (सृ - जाना, सरकना)। **संशाय** = सम्यक् तीक्ष्ण करके (सम् - सम्यक्, भलीभांति, शि - तीक्ष्ण करना, पैना करना)। **पविम्** = पवित्र, पालन, रक्षा करने वाले को (पु - पालन करना, रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **इन्द्र** = परम ऐश्वर्यशाली (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **तिग्मम्** = गति, ज्ञान, प्राप्ति, कौटिल्य को, कुटिलता को, कूटचाल को (तिग् - जाना, जानना, पाना, कूटचाल चलना)। **वि** = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। **शत्रून्** = शत्रुओं को (शी-शद्-शत् - जीर्ण होना, गिरना, गिराना)। **ताढि** = ताड़ना दो, प्रकाश दो, कहो, बोलो (तड् - मारना, ताड़न करना, तड - चमकना, चमकाना, बोलना)। **वि** = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। **मृधो** = हिंसक, आद्र (मृध् - दबाना, हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, आद्र करना, गीला करना, गीला होना)। **नुदस्व** = प्रेरणा करें, भेजें (नुद् - भेजना, प्रेरणा करना, जाना)॥ 01 ॥

66. भद्रम् कर्णेभिः शृणुयाम देवा,
भद्रम् पश्येम अक्षभिः यजत्राः।
स्थिरैः अङ्गैः तुष्टुवांसः तनूभिः,
व्यशेमहि देवहितम् यद् आयुः॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

सब देव कर्ण से भद्र सुनें, देखें यजत्र के नेत्र भद्र।
हो तुष्ट, प्रीति, तन, अंग सुदृढ़, आयु व्यतीत हो देवकार्य॥ 02 ॥

संहितापाठ

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ 02 ॥

(ऋषि - अप्रतिरथ, देवता - विश्वेदेवा, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - देवा = तेजस्वी, देवगण, **कर्णेभिः** = कर्णों द्वारा **भद्रम्** = कल्याणकारी **शृणुयाम** = सुनें। **यजत्राः** = यजनपालक, **अक्षभिः** = नेत्रों द्वारा, दृष्टि द्वारा **भद्रम्** = कल्याणकारी **पश्येम** = देखें। **तुष्टुवांसः** = तृप्त करने वाले, सन्तुष्ट करने वाले **स्थिरैः** = स्थिर **अङ्गैः** = अंगों द्वारा **तनूभिः** = तनुओं द्वारा, विस्तार द्वारा, वाणी द्वारा **यत्** = जो **आयुः** = आयु **देवहितम्** = देवहित में, **व्यशेमहि** = व्याप्त होते हैं, व्यतीत करते हैं॥ 02 ॥

भावार्थ - याजक अथवा यजत्र का अर्थ यज्ञकर्ता है। यज् धातु से ही याजक, यजत्र, यजन, यज्ञ (यज्ञ) शब्द बनते हैं। इसका स्वाभाविक अर्थ देवपूजा, सङ्गतिकरण तथा दान करना है। याजक की कामना है कि अच्छा देखें, अच्छा सुनें, तनु अर्थात् विस्तार, शरीर के अङ्ग स्थिर हों अर्थात् रोग आदि से पीड़ित न हों। इस प्रकार जो भी आयु हमें प्राप्त हुई, वह वैदिक विद्वान् देवजनों के हित में कार्य करते हुए व्यतीत हो, जीवन का यही सर्वोत्तम उपयोग है॥ 02 ॥

पदार्थ - भद्रम् = कल्याणकारी (भदि-भन्द् - सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। **कर्णेभिः** = कर्णों द्वारा (कर्ण - सुनना, दूर ले जाना, त्याग करना, भेदना, छेदन करना)। **शृणुयाम** = सुनें (श्रु-शृण् = सुनना)। **देवा** = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **भद्रम्** = कल्याणकारी (भदि-भन्द् - सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। **पश्येम** = देखें (पश्-दृश् - देखना)। **अक्षभिः** = अक्षों द्वारा, दृष्टि द्वारा, व्यापक, व्याप्त, अविनाशी, खेल, क्रीड़ा, एकत्रीकरण, समूह, व्यापक होने वाले द्वारा (अक्ष - खेलना, देखना, एकत्र होना, व्याप्त होना, इच्छितार्थ होना, पैठना)। **यजत्राः** = यजनपालक, यजन करने वाले (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **स्थिरैः** = स्थिरों द्वारा (स्था - ठहरना, स्थिर होना)। **अङ्गैः** = अंगों द्वारा, विद्वान्, गतिशील, पाने वालों द्वारा (अंग् =

अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। **तुष्टुवांसः** = तृप्त करने वाले, सन्तुष्ट करने वाले (तुष् = सन्तुष्ट होना, तृप्त होना, तृप्त करना, प्रीति करना)। **तनूभिः** = तनुओं द्वारा, विस्तार द्वारा, वाणी द्वारा (तन् - विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। **वि** = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। **अशेमहि** = व्याप्त होते हैं, भोजन करते हैं (अश् - भोजन करना, तीव्रता से पहुँचना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना)। **देवहितम्** = देवहित को (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना, हि - गति करना, चलना, जाना, जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना)। **यत्** = जो (सर्वनाम)। **आयुः** = आयु (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय - जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु - मिलना, अलग करना) **॥ 02 ॥**

67. स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः,
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नः तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः,
स्वस्ति नो बृहस्पतिः दधातु॥

काव्यानुवाद

हो वृद्धश्रवा, वह इन्द्र स्वस्ति, वह विश्ववेद पूषा सु स्वस्ति।
जो गम्य, व्याप्त को प्राप्त हुए, वह देव बृहस्पति करे स्वस्ति॥ 03 ॥

संहितापाठ

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ 03 ॥

(ऋषि - अप्रतिरथ, देवता - विश्वेदेवा, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - वृद्धश्रवाः = वृद्धश्रव, बड़े विद्वान्, सुनकर अभिवृद्ध हुए **इन्द्रो** = परम ऐश्वर्यवान् **नः** = हमारा **स्वस्ति** = कल्याण करें। **विश्ववेदाः** = विश्ववेद, सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाले **पूषा** = पोषण करने वाले, पोषणकर्ता **नः** = हमारा **स्वस्ति** = कल्याण करें। **तार्क्ष्यो** = गमनीय, गम्य, प्राप्य, पाने योग्य, विद्वान् **अरिष्टनेमिः** = अत्यन्त हिंसक, अहिंसक, प्रगतिशील, व्यापक को जानने, प्राप्त करने वाले **नो** = हमारा **स्वस्ति** = कल्याण करें। **बृहस्पतिः** = बृहत् का स्वामी, बृहस्पति **नो** = हमारा **स्वस्ति** = कल्याण **दधातु** = धारण करे, प्रदान करे **॥ 03 ॥**

भावार्थ - सामवेद का समापन विश्व कल्याण की कामना के साथ सुन्दर स्वस्तिवाचन मन्त्रों से हुआ। वैदिक सन्ध्या-उपासना तथा यज्ञ सत्सङ्ग के आयोजनों में सामवेद के गायन की परम्परा रही है। इन सुन्दर स्वस्तिवाचन मन्त्रों के साथ यज्ञ-सत्सङ्ग में सबकी मङ्गलकामना करना सर्वथा शुभ ही है **॥ 03 ॥**

पदार्थ - स्वस्ति = कल्याण (अव्यय)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **इन्द्रो** = परम ऐश्वर्यवान् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **वृद्धश्रवाः** = वृद्धश्रव, बड़े विद्वान्, सुनकर अभिवृद्ध हुए, बड़े हुए (वृध् - बढ़ना, अधिक होना, काटना, चीरना, भरना, पूर्ण करना, चमकना, बोलना, श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **स्वस्ति** = कल्याण (अव्यय)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **पूषा** = पोषण करने वाला, पोषणकर्ता (पुष् - पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। **विश्ववेदाः** = विश्ववेद, सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाले (विश्व - सभी, विद् - जानना, समझना, विद्यमान होना)। **स्वस्ति** = कल्याण (अव्यय)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **तार्क्ष्यो** = गमनीय, गम्य, प्राप्य, पाने योग्य, विद्वान् (तृक्ष् - चलना, जाना, जानना, पाना)। **अरिष्टनेमिः** = अत्यन्त हिंसक, अहिंसक, गतिशील, व्यापक को जानने,

प्राप्त करने वाले (अ - नहीं, ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रिष- हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना, नी - जाना, जानना, पाना, प्राप्त करना, पहुँचना)। **स्वस्ति** = कल्याण (अव्यय)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **बृहस्पतिः** = विराट, महान्, बृहस्पति (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **दधातु** = धारण करे, प्रदान करे, पालन करे, रक्षा करे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)॥ 19 ॥

मेधाजनन सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 01, सूक्त 01)

68. शम् नो देवीः अभिष्टये, आपः भवन्तु पीतये।
शम् योः अभि स्रवन्तु नः॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

देवी अभीष्ट के लिए सुखद, व्यापक हों पान हेतु हमको।
सब ओर सदा सुख ही बरसें॥ 01 ॥

संहितापाठ

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ 01 ॥

(ऋषि - सिन्धुद्वीप, अथर्वा, कृति, देवता - आपो, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- आपः आप, व्याप्त, व्यापक **देवीः** देवी, दिव्यता **नो** हमारे **अभिष्टये** अभीष्ट के लिए, **पीतये** पीने के लिए **शम्** सुख, कल्याण **भवन्तु** हों। **नः** हमारे लिए **शम्** सुख, कल्याण **योः** मिलाने वाला **अभि स्रवन्तु** अभिसिञ्चन करें॥ 01 ॥

भावार्थ :- इस मन्त्र में हमारे लिए प्रकृति के सुखद, कल्याणकारी

होने की भावना है। सर्वथा इष्ट करने वाले, दिव्य गुणों से युक्त कल्याणकारी व्यापक प्रकृति तथा परमात्मा हमारे लिए सुखद, कल्याणकारी हों, शमनकारी हों, शान्तिमय हों। हमारे लिए सभी ओर सुख का अभिसिञ्चन करें॥ 01 ॥

पदार्थ :- शम् = कल्याणकारी (शम् - सुख होना, कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **देवीः** = दिव्यगुणयुक्त (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **अभिष्टये** = अभीष्ट के लिए (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, इष् - इच्छा करना, चाहना, जाना)। **आपो** - व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **भवन्तु** = हों, हो जायें (भू - होना)। **पीतये** = पान के लिए (पी-पिब् - पीना, पान करना, प्राशन करना, संरक्षण करना)। **शम्** = कल्याणकारी (शम् - सुख होना, कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **योः** = मिलने वाला (यु - मिलना, मिलाना, अलग करना)। **अभि** = सभी ओर (उपसर्ग)। **स्रवन्तु** = अभिसिञ्चन करें (स्रु - जाना, जानना, पाना, सृ - जाना, सरकना, बहना, टपकना)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)॥ 01 ॥

69. ये त्रिषप्ताः परियन्ति, विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिः बला तेषाम्, तन्वो अद्य दधातु मे॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

जो सब त्रिसप्त परिगमन करें, जो विश्वरूप विभ्रत स्वामी।
वाचस्पति बल दें उन सबका, मुझमें वह आज करें धारण॥ 02 ॥

संहितापाठ

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ 02॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - वाचस्पति, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- ये = जो **त्रिषप्ताः** = त्रि-सप्त **विश्वा** = विश्व, सभी, **रूपाणि** = रूप, रचना, आकार, **बिभ्रतः** = भरण, धारण करते हुए **परियन्ति** = परियमन करते हैं, सभी ओर उद्धार, प्रेरणा, नियन्त्रण, नियमन, आवरण करते हैं। **वाचस्पतिः** = वाणी का रक्षक, पालक **तेषाम्** = उनका **बला** = बल **तन्वो** = विस्तार, वृद्धि **अद्य** = आज **मे** = मेरे लिए **दधातु** = धारण करे, प्रदान करे॥ 02॥

भावार्थ :- 'त्रिसप्ताः' पद त्रिसप्त का बहुवचन है। इसका अर्थ हुआ अनेक त्रिसप्त। अर्थात् जितने 'त्रिसप्त' होते हैं, सभी। इससे तीन और सात के संयोग से व्यक्त होने वाले सभी अर्थ इसमें समाहित हैं। तीन और सात से किन बातों को ग्रहण किया जाये, यह तो मन्त्र का रचनाकार ही जानता है। वेद में तीन और सात बातों का स्पष्ट उल्लेख मिले तो वही मान्य होगा। सप् धातु का अर्थ है पूर्ण होना, पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, समूह होना, मिलाप होना। इस प्रकार त्रिसप्त का अर्थ तीन समूह भी स्वीकार्य है॥ 02॥

पदार्थ :- ये = जो (सर्वनाम)। **त्रिषप्ताः** = त्रि-सप्त (त्रि - तीन (संख्या), सप्त - सात (संख्या), सप् - पूर्ण होना, पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, समूह होना, मिलाप होना)। **परियन्ति** = परियमन करते हैं, सभी ओर उद्धार, प्रेरणा, नियन्त्रण, नियमन, आवरण करते हैं (परि = सभी ओर (उपसर्ग), यम् - प्रेरणा, नियन्त्रण, नियमन, आवरण करना। यन - उद्धार करना)। **विश्वा** = विश्व, सभी, सब (सर्वनाम)। **रूपाणि** = रचना, आकार, रूप (रूप - आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। **बिभ्रतः** = भरण, धारण करते हुए (भृ - भरना, भरण करना, धारण करना)। **वाचस्पतिः** = वाणी

का रक्षक, पालक (वच् - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना, पत् - जाना, नीचे जाना,उड़ना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **बला** = बल (बल् - बल होना, जाना, स्पष्ट करना, प्राण होना, चेतन होना, जीना, जीते रहना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना, द्रव्य को रोकना)। **तेषाम्** = उनका (सर्वनाम)। **तन्वो** = विस्तार, वृद्धि (तन् - विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, विश्वास करना, आश्रय देना)। **अद्य** = आज (अव्यय)। **दधातु** = धारण करे, प्रदान करे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **मे** = मेरा, मेरे लिए (सर्वनाम)॥ 02॥

70. पुनः एहि वाचः पते, देवेन मनसा सह।
वसोः पते नि रमय मयि, एव अस्तु मयि श्रुतम्॥ 03॥

काव्यानुवाद

हे वाचस्पति, तुम आ जाओ, देवों के मन के साथ पुनः।
हे वसोष्पते, तुम रमण करो, मुझमें ही हो श्रुत, मुझमें ही॥ 03॥

संहितापाठ

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्॥ 03॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - वाचस्पति, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- वाचः पते = हे वाणी के पति **देवेन** = देवों द्वारा, देवों के साथ **मनसा** = मन **सह** = के साथ **पुनः** = फिर **एहि** = आओ। **वसोः पते** = हे वसु के पति, वासस्थान, वास करने वाले, वासदाता के पति, स्वामी, रक्षक **मयि** = मुझमें **नि** = निश्चित, निरन्तर **रमय** = रमण करो। **श्रुतम्** = श्रुत, वेद **एव** = ही **मयि** = मुझमें **अस्तु** = हो॥ 03॥

भावार्थ :- वाचस्पति शब्द से सामान्य वाणी के साथ मुख्यतः

वेदवाणी के रक्षक स्वामी का भाव लेना चाहिए। श्रुत शब्द से वेद का स्पष्ट संकेत इसी मन्त्र में किया ही गया है। वेद को समझने, उपयोग करने के लिए दिव्य मन की आवश्यकता है। परमात्मा को वाचस्पति के साथ ही यहाँ वसोष्पति भी कहा गया है, क्योंकि वेद के अध्ययन-उपयोग के लिए वास, वसन, वासन भी चाहिए। साधक की व्याकुलता देखिए, वह कहता है कि वेद प्रदान करें और मुझमें वेद ही हो।॥ 03 ॥

पदार्थ :- पुनः = फिर (अव्यय)। **एहि** = आओ, प्राप्त करो (ई - जाना। आ-ई - आना)। **वाचः** = वाणी के (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **पते** = पति, स्वामी (पत् - जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **देवेन** = देवों द्वारा, देवों के साथ, तेजस्वी, विद्वान् के साथ (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **मनसा** = मन के साथ, मन द्वारा (मन् - जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **सह** = साथ, सहित (सर्वनाम)। **वसोः** = वसु का, वासस्थान का, वास करने वालों का (वस् - वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। **पते** = पति (पत् - जाना, नीचे जाना, उड़ना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **नि** = निश्चित, निरन्तर (अव्यय)। **रमय** = रमण करो (रम - रमना, क्रीडा करना, खेलना)। **मयि** = मुझमें (सर्वनाम)। **एव** = ही (अव्यय)। **अस्तु** = हो (अस - होना)। **मयि** = मुझमें (सर्वनाम)। **श्रुतम्** = श्रुत को, सुने हुए को (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)॥ 03 ॥

71. इह एव अभि वि तनु, उभे आर्त्नी इव ज्यया।
वाचः पतिः नि यच्छतु मयि, एव अस्तु मयि श्रुतम्॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

हम सब पायें विस्तार यहीं, ऋत के समान, जय के समान।
वाचस्पति, निश्चित दे हमको, मुझमें ही हो श्रुत, मुझमें ही॥ 04 ॥

संहितापाठ

इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम्॥ 04 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - वाचस्पति, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- इह = यहाँ **एव** = ही **उभे** = दोनों **ज्यया** = वृद्ध, जयी द्वारा **आर्त्नी** = सम्यक् वचन, वाणी, गति, प्राप्ति **इव** = के समान **अभि** = सभी ओर, सर्वथा **वि** = विशेष **तनु** = विस्तार करो। **वाचः** = वाणी के **पतिः** = पति **मयि** = मुझमें। **नि** = निश्चित, निरन्तर **यच्छतु** = दो, प्रदान करो **श्रुतम्** = श्रुत, वेद **एव** = ही **मयि** = मुझमें **अस्तु** = हो॥ 04 ॥

भावार्थ :- अनुभवी विद्वान् वृद्ध जनों के मार्गदर्शन से हमारा विकास-विस्तार उस तरह होता है जैसे स्वयम् सम्यक् गति का विस्तार होता है। गतिशीलता जैसी गति प्राप्त होती है। इसके लिए वेद का ज्ञान चाहिए। साधक की व्याकुलता देखिए, वह कहता है कि वेद प्रदान करें और मुझमें वेद ही हो॥ 04 ॥

पदार्थ :- इह = इसमें, यहाँ (सर्वनाम)। **एव** = ही (अव्यय)। **अभि** = अभिमुख, विशेष, सभी ओर, सर्वथा (उपसर्ग)। **वि** = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। **तनु** = विस्तार करो (तन् - विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। **उभे** = दोनों, पूर्णता (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। **आर्त्नी** = सम्यक् वचन, वाणी, गति, प्राप्ति (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अर् - ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति करना, फैलाना, शब्द करना, ध्वनि करना, महत्व प्रदर्शन करना, हिंसा करना)। **इव** = की भाँति, के समान (अव्यय)। **ज्यया**

= ज्या, वृद्ध, जयी द्वारा (ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जय होना, जीतना)। **वाचः** = वाणी के (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **पतिः** = पति (पत् - जाना, नीचे जाना, उड़ना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **नि** = निश्चित, निरन्तर (अव्यय)। **यच्छतु** = दो, प्रदान करो (यच्छ - देना)। **मयि** = मुझमें (सर्वनाम)। **एव** = ही (अव्यय)। **अस्तु** = हो (अस - होना)। **मयि** = मुझमें (सर्वनाम)। **श्रुतम्** = श्रुत को, सुने हुए को (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)॥ 04॥

72. उपहूतो वाचः पतिः उप अस्मान्, वाचः पतिः ह्वयताम्।
सम् श्रुतेन गमेमहि, मा श्रुतेन वि राधिषि॥ 05॥

काव्यानुवाद

वाचस्पति निकट बुलाये हैं, हमको भी निकट बुलायें वे।
हम सब श्रुत के अनुसार चलें, श्रुत से विपरीत न सिद्धि करें॥ 05॥

संहितापाठ

उपहुतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि॥ 04॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - वाचस्पति, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- वाचः = वाणी के **पतिः** = पति **उपहूतो** = समीप बुलाया गया, आह्वान किया गया। **वाचः** = वाणी के **पतिः** = पति **अस्मान्** = हमें, हमको **उप** = समीप **ह्वयताम्** = पुकारें, आह्वान करें, आदान-प्रदान करें। **श्रुतेन** = श्रुत द्वारा **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति **गमेमहि** = जाते हैं। **श्रुतेन** = श्रुत द्वारा **मा** = मत **वि** = विलोम, विपरीत **राधिषि** = राधन करें, निर्णय, वृद्धि, सिद्ध करें॥ 05॥

भावार्थ :- वेदवाणी के स्वामी तथा रक्षक विद्वानों को समीप बुलायें एवम् प्रार्थना करें कि हमको भी वे समीप बुलायें। इस प्रकार वेद के विद्वानों

के साथ आदान-प्रदान का क्रम चलता रहे। हमारा जीवन वेद के अनुकूल चले। वेद के अनुसार ही जीवन का मापन-मूल्याङ्कन करें। कभी वेद के विपरीत आराधन नहीं करें, वेद-विरोधी निर्णय नहीं करें, सभी कार्यों को वेद द्वारा वेद के अनुकूल विशेष रूप से सिद्ध करें॥ 05॥

पदार्थ :- उपहूतो = समीप बुलाया गया, आह्वान किया गया (उप - समीप, हु - देना, दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - बुलाना, आह्वान करना)। **वाचः** = वाणी के (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **पतिः** = पति (पत् - जाना, नीचे जाना, उड़ना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **उप** = समीप (उपसर्ग)। **अस्मान्** = हमें, हमको (सर्वनाम)। **वाचः** = वाणी के (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **पतिः** = पति (पत् - जाना, नीचे जाना, उड़ना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **ह्वयताम्** = पुकारें, आह्वान करें, आदान-प्रदान करें (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे - शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **श्रुतेन** = श्रुत द्वारा (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **गमेमहि** = जाते हैं (गम् - जाना, जानना, पाना)। **मा** = नहीं, मत (अव्यय)। **श्रुतेन** = श्रुत द्वारा, श्रुत से (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **वि** = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। **राधिषि** = शुद्ध, निर्दोष निर्णय, वृद्धि, सिद्ध करें (रध - शुद्ध होना, निर्दोष होना, पूर्ण करना, समाप्त करना, परिपक्व होना, अपकार करना, हिंसा करना, राध - बढ़ना, निर्णय करना, सिद्ध होना)॥ 05॥

अध्यात्म सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 15, अनुवाक 87, सूक्त 03)

73. सः सम्वत्सरम्, ऊर्ध्वो अतिष्ठत्।

तम् देवाः अब्रुवन्, व्रात्य, किम् नु तिष्ठसि इति ॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

वह सम्वत्सर तक ऊर्ध्व रहा, देवों ने उससे कहा तभी।
हे व्रात्य, किसलिए सुस्थित हो ॥ 01 ॥

संहितापाठ

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥ 01 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - सः = वह **सम्वत्सरम्** = सम्वत्सर तक **ऊर्ध्वो** = ऊर्ध्व **अतिष्ठत्** = स्थित रहा, ठहरा। **तम्** = उससे **देवाः** = देवगण **अब्रुवन्** = बोले, **व्रात्य** = हे व्रात्य **किम्** = क्यों, किसलिए **नु** = ही **तिष्ठसि** = स्थित हो, खड़े हो (साधनारत हो) **इति** = ऐसा ॥ 01 ॥

भावार्थ - साधना का व्रत या सङ्कल्प लेने पर पहला कार्य है एक वर्ष तक धैर्यपूर्वक तथा नियमित रूप से साधना में स्थिर रहना। आकस्मिक अपरिहार्य कारणों से व्यवधान आ जाये तो कोई बात नहीं, परन्तु सामान्य स्थिति में साधक को नियमित साधना से विचलित नहीं होना चाहिए। नियमित तथा समर्पित भाव से साधनारत रहने से आस-पास ऐसा वातावरण बनता है कि समाज के देवपुरुष अर्थात् सज्जन तथा विद्वान् लोग साधक की ओर ध्यान देते हैं तथा सहायता के लिए आगे आने लगते हैं। एक वर्ष तक नियमित रूप से प्रातः तथा सायम् वेद-पाठ तथा स्वाध्याय अनवरत् अवश्य करना चाहिए। इससे घर-परिवार तथा पास-पड़ोस का वातावरण अभिमन्त्रित होकर अनुकूल बनने लगेगा ॥ 01 ॥

पदार्थ - सः = वह, उसने (सर्वनाम)। **सम्वत्सरम्** = सम्वत्सर (सम् - एक समान रहना, न घबराना, सृ - चलना, सरकना)। **ऊर्ध्वो** = उच्च, ऊपर, ऊर्ध्व (सर्वनाम)। **अतिष्ठत्** = ठहरा, स्थित रहा (अ -

भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, तिष्ठ् - ठहरना, स्थित होना, खड़ा होना)। **तम्** = उसको, उसे (सर्वनाम)। **देवाः** = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **अब्रुवन्** = बोले (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, ब्रू - कहना, बोलना)। **व्रात्य** = हे व्रात्य (वृत् - रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ - नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना, नियमित करना)। **किम्** = क्या, क्यों, किसलिए (सर्वनाम)। **नु** = ही, भी (निपात, अव्यय)। **तिष्ठसि** = स्थित हो, ठहरे हो, खड़े हो (तिष्ठ् - ठहरना, स्थित होना, खड़ा होना)। **इति** = ऐसा, यह, इस प्रकार (अव्यय) ॥ 01 ॥

74. सो अब्रवीत् आसन्दीम्, मे सम् भरन्तु इति ॥ 2 ॥

काव्यानुवाद

वह बोला, मेरे लिए देव, आसन्दी सम्यक् भरण करो ॥ 2 ॥

संहितापाठ

सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ 02 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- सो = वह **अब्रवीत्** = बोला, **मे** = मेरे लिए **आसन्दीम्** = आसन्दी, आसन, बैठने का साधन, स्थान **सम्** = सम्यक्, भलीभाँति **भरन्तु** = भरण करो, आपूर्ति करो, प्रदान करो, **इति** = ऐसा ॥ 02 ॥

भावार्थ :- एक वर्ष तक निरन्तर साधना के बाद सज्जन देवगण सहायता के लिए आगे आये और साधक ने सहयोग प्रदान करने का आह्वान किया। समाज के गणमान्य देव पुरुषों के पूछने पर साधक ने कहा कि मैं एक वर्ष से वेद भगवान् की साधना में रत हूँ। मुझे वेद भगवान् का प्रकाश मिला है और मैं समाज को लाभान्वित करना चाहता हूँ। अतः आप लोग मेरे लिए आसन्दी अर्थात्, आसन, बैठने का साधन, स्थान उपलब्ध

करायें। अर्थात् समाज में वेद प्रचार के लिए उचित स्थान तथा संसाधन उपलब्ध करायें ॥ 02 ॥

पदार्थ :- सो = वह, उसने (सर्वनाम)। **अब्रवीत्** = बोला (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, ब्रू - कहना, बोलना)। **आसन्दीम्** = आसन, बैठने का साधन, स्थान को (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। **मे** = मेरा, मेरे लिए (सर्वनाम)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भली भाँति (उपसर्ग)। **भरन्तु** = भरण करो (भृ - पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। **इति** = ऐसा, यह, इसी प्रकार (अव्यय) ॥ 02 ॥

75. तस्मै व्रात्याय आसन्दीम्, सम् अभरन् ॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

उस व्रात्य हेतु आसन्दी भी, देवों ने सम्यक् भरण किया ॥ 03 ॥

संहितापाठ

तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ 03 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- तस्मै = उस **व्रात्याय** = व्रात्य के लिए **आसन्दीम्** = आसन, बैठने का साधन, स्थान **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति **अभरन्** = भरा, भरण किया, आपूर्ति किया, प्रदान किया, उपलब्ध कराया ॥ 03 ॥

भावार्थ :- निरन्तर साधना के बाद सज्जन देवगण सहायता के लिए आगे आये और साधक के आह्वान पर समाज के सद्भावी देवजनों ने उसे समुचित साधन उपलब्ध कराये ॥ 03 ॥

पदार्थ :- तस्मै = उसके लिए (सर्वनाम)। **व्रात्याय** = व्रात्य के लिए (वृत् - रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ - नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना, नियमित करना)। **आसन्दीम्** = आसन, बैठने का

साधन, स्थान को (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **अभरन्** = भरा, भरण किया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भृ - भरण करना, भरना) ॥ 03 ॥

76. तस्या ग्रीष्म च वसन्तः, च द्वौ पादौ आस्ताम्, शरत् च वर्षाः च द्वौ ॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

उसके दो पाद वसन्त, ग्रीष्म, दो पाद शरद्, वर्षा उसके ॥ 04 ॥

संहितापाठ

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च दौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ 04 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- तस्या = उसके **द्वौ** = दो **पादौ** = पाद, पाये **ग्रीष्म** = ग्रीष्म **च** = और **वसन्तः** = वसन्त **च** = और **द्वौ** = दो **च** = और **शरत्** = शरद् **च** = और **वर्षाः** = वर्षा **आस्ताम्** = थे ॥ 04 ॥

भावार्थ :- इस सूक्त में साधक को प्राप्त सहयोग को आसन्दी के रूपक के आधार पर बताया गया है। उसे जो आसन्दी दी गयी, उसके पाद या पाये ग्रीष्म, वसन्त, वर्षा और शरद् थे। अर्थात् सभी ऋतुओं में कार्य करने के अनुकूल व्यवस्थाएँ उपलब्ध करायी गयीं, जिससे वर्ष भर कार्य करने में कोई बाधा न पड़े ॥ 04 ॥

पदार्थ :- तस्या = उसका (सर्वनाम)। **ग्रीष्म** = ग्रीष्मकाल, ग्रसने वाला (ग्रस - ग्रसना, घेरना, लेना, ग्रहण करना, खाना, भक्षण करना, ग्रीष् - तपना, ऊष्म होना)। **च** = और (अव्यय)। **वसन्तः** = वसन्त, वसते हुए, वास करते हुए, वास करने वाले (वस् - वसना, रहना, निवास करना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना,

आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। **च** = और (अव्यय)। **द्वौ** = दो (संख्या)। **पादौ** = पैर (पद् - चलना, भूषित होना)। **आस्ताम्** = थे (अस् - होना)। **शरत्** = शरत्, शरद् (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना, शृ - मार डालना, दुःख देना, पीड़ा करना, फटना, हिंसा करना, मारना, श्रि - सेवा करना, आश्रय करना)। **च** = और (अव्यय)। **वर्षाः** = वर्षा (वर्ष् - बरसना, सींचना, अति पराक्रम करना, हिंसा करना, क्लेश देना, उत्पीड़न करना)। **च** = और (अव्यय)। **दौ** = दो (संख्या) **॥ 04 ॥**

77. बृहत् च रथन्तरम् च अनूच्ये आस्ताम्।
यज्ञायज्ञियम् च वामदेव्यम् च तिरश्चये ॥ 05 ॥

काव्यानुवाद

थे बृहत्, रथन्तर दो पाटी, दो यजनमयी, थे वामदेव्य ॥ 05 ॥

संहितापाठ

बृहच्च रथंतरं चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ 05 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - उष्णिक्, स्वर - ऋषभ)

मन्त्रार्थ :- अनूच्ये = अनूच्य (दो पाटियाँ) **बृहत्** = बृहत्, बड़ा, **च** = और **रथन्तरम्** = रथन्तर, रमणीय तरने वाले, पार करने वाले **च** = और **तिरश्चये** = तिरश्चय, तिर्यक्, तिरछे (दो पाटियाँ) **च** = और **यज्ञायज्ञियम्** = यजन ही यजन **च** = और **वामदेव्यम्** = वामदेव्य, सुगन्ध, विद्या, दिव्यता **आस्ताम्** = थे **॥ 05 ॥**

भावार्थ :- साधक के लिए जैसे सभी ऋतुओं के अनुकूल व्यवस्था उपलब्ध करायी गयी, उसी तरह विद्वानों ने उसे आवश्यक गुणों तथा वेद विद्या का ज्ञान भी दिया। वेदार्थ को समझने के लिए पुस्तकें तथा विद्वानों का मार्ग दर्शन भी आवश्यक है। साधना की आसन्दी की पाटियाँ विशालता, रमणीयता, यज्ञमय जीवन तथा वेद विद्या हैं **॥ 05 ॥**

पदार्थ :- बृहत् = बृहत्, बड़ा (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **च** = और (अव्यय)। **रथन्तरम्** = रथन्तर को, रमणीय को तरने वाले, पार करने वाले (रम् - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना, तृ - पार जाना, पर तीर को जाना, जल पर तैरना, जीतना, जल के पार जाना)। **च** = और (अव्यय)। **अनूच्ये** = अनूच्य, अनुसम्बन्धित, अनुसंगठन, अनुवाची (अनु - पीछे, उच - सम्बन्ध होना, एकत्र होना, वद्-वच्-ऊच् - कहना, बोलना)। **आस्ताम्** = थे (अस् - होना)। **यज्ञायज्ञियम्** = यजन ही यजन को (यज = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **च** = और (अव्यय)। **वामदेव्यम्** = वामदेव्य को, सुगन्ध, विद्या को, गति-ज्ञान, प्राप्ति की दिव्यता को (वा = गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध होना, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **च** = और (अव्यय)। **तिरश्चये** = तिरछा, तिर्यक् (अव्यय) **॥ 05 ॥**

78. ऋचः प्राञ्चः तन्तवो, यजूंसि तिर्यञ्चः ॥ 06 ॥

काव्यानुवाद

थे तन्तु ऋचायें तथा यजुः, वे प्राञ्च तथा तिर्यञ्च हुए ॥ 06 ॥

संहितापाठ

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ 06 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- ऋचः = ऋचायें, ऋग्वेद के मन्त्र **प्राञ्चः** = प्राञ्च, लम्बे, लम्बाई वाले **तन्तवो** = तन्तु, विस्तार, **यजूंसि** = यजुष, यजुर्वेद के मन्त्र **तिर्यञ्चः** = तिर्यक् (तन्तु थे) **॥ 06 ॥**

भावार्थ :- अब साधक के लिए आसन्दी तैयार हो गयी है, उसके बैठने का साधन उपलब्ध हो गया है। ऋतुएँ उसके पाये हैं, सद्गुण और वेद विद्या उसकी पाटियाँ हैं तथा उसे ऋचाओं और यजुषों के तन्तुओं (ताने-बाने) से बुना गया है। इस आसन्दी पर बैठा जा सकता है **।। 06 ।।**

पदार्थ :- ऋचः = ऋचायें (ऋच् - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **प्राञ्चः** = प्राञ्च, लम्बे, लम्बाई वाले (सर्वनाम)। **तन्तवो** = तन्तु, विस्तार (तन् - विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, विश्वास करना, आश्रय देना, पालन करना)। **यजूंसि** = यजुष् (यज - देव-पूजा, संगतिकरण, दान करना)। **तिर्यञ्चः** = तिरछा, तिर्यक् (अव्यय) **।। 06 ।।**

79. वेद आस्तरणम्, ब्रह्म उपबर्हणम् ।। 07 ।।

काव्यानुवाद

आस्तरण वेद बन गया तथा, उपबर्हण ब्रह्म हुआ उसका ।। 07 ।।

संहितापाठ

वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ।। 07 ।।

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- वेद = वेद, ज्ञान **आस्तरणम्** = आस्तरण, बिछौना, **ब्रह्म** = ब्रह्म **उपबर्हणम्** = उपबर्हण, ओढ़ने का साधन (है) **।। 07 ।।**

भावार्थ :- साधक के आसन अथवा आसन्दी के लिए वेद को बिछौना तथा ब्रह्म को ओढ़ने का साधन कहा गया है। वेद तथा उपबर्हण का भावार्थ विद्वानों ने धन तथा अन्न भी किया है। वास्तव में साधक को धन तथा अन्न की आवश्यकता तो है ही। उसके बिना कार्य करना सम्भव नहीं हो सकेगा। परन्तु इस मन्त्र का भाव स्पष्ट है कि वेद को बिछौना तथा ब्रह्म को ओढ़ने का साधन बना कर साधना करना उचित है। इसका अर्थ

है कि वेद ही आधार है। साधक उसी पर स्थित होता है। ब्रह्म या परमात्मा हमारा ओढ़ने का साधन है, आवरण है, सुरक्षा कवच है **।। 07 ।।**

पदार्थ :- वेद = वेद, ज्ञान, जानो, जानता है (विद् = जानना, समझना, विद्यमान होना)। **आस्तरणम्** = आस्तरण, बिछौना (आ - समन्तात, सम्यक्, सम्पूर्ण। स्तृ - विस्तर होना, विस्तार होना, फैलना)। **ब्रह्म** = ब्रह्म, बड़ा, बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **उपबर्हणम्** = उपबर्हण, ब्रह्म के निकट (उप - समीप, बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, रण करना) **।। 07 ।।**

80. साम आसादः, उद्गीथो अपश्रयः ।। 08 ।।

काव्यानुवाद

आसाद बन गया साम तथा, उद्गीथ बना उपश्रय उसका ।। 08 ।।

संहितापाठ

सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ।। 08 ।।

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- साम = साम **आसादः** = आसाद (गद्दा), **उद्गीथो** = उदगीथ, उत्कृष्ट गायन **अपश्रयः** = अपश्रय, (तकिया) हुआ **।। 08 ।।**

भावार्थ :- ऋग्वेद तथा यजुर्वेद तो साधक की आसन्दी के ताने-बाने थे, सामवेद तथा मन्त्रगान उस पर गद्दा और तकिया के रूप हैं। ऋग्वेद की ऋचाएँ प्रकृति के गुणों का ज्ञान देती हैं तथा यजुर्वेद उन गुणों को व्यावहारिक सामाजिक जीवन में उतारने की विद्या है। यह ताना-बाना है, इसके विना तो आसन्दी अपूर्ण है, उस पर बैठा ही नहीं जा सकता है।

अब आसन्दी पर गद्दा-तकिया भी हो तो वह सुविधाजनक हो

जाये। सामवेद में ऋग्वेद के ही मन्त्र हैं जो सङ्गीतमय गान के लिए विशेष रूप में सङ्कलित हैं। यदि मन्त्रों को नीरस विद्या के रूप में सिखाया जाये तो अधिक समय तक सीखना कठिन है। यदि उसे सङ्गीत के साथ रोचक बना दिया जाये तो लोग उसका अधिक आनन्द ले सकेंगे। लयात्मक मन्त्र पाठ में मन्त्रशक्ति का प्रबल प्रभाव निहित है। उद्गीथ शब्द यहाँ अथर्व वेद के मन्त्रों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अथर्व वेद में स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि दैनिक जीवन का व्यावहारिक विज्ञान भी निहित है। अतः उसको तकिया के समान सहारा बताया गया है **।। 08 ।।**

पदार्थ :- साम = साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। **आसादः** = सम्यक् स्थापित (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, साद् - स्थापित करना)। **उद्गीथो** = उदगीथ, उत्कृष्ट गायन (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, गा-गै = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना)। **अपश्रयः** = अपश्रय (अप - दूर, नीचे (उपसर्ग), श्री - सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना) **।। 08 ।।**

81. ताम् आसन्दीम्, व्रात्य आ अरोहत् ।। 09 ।।

काव्यानुवाद

उस आसन्दी पर आरोहण, तब किया व्रात्य ने, महाव्रती ।। 09 ।।

संहितापाठ

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ।। 09 ।।

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- ताम् = उस **आसन्दीम्** = आसन्दी पर, आसन पर, बैठने का साधन, स्थान पर, **व्रात्य** = व्रात्य ने **आरोहत्** = आरोहण किया, बैठ गया **।। 09 ।।**

भावार्थ :- जब गद्दा-तकिया सहित पूर्ण सुविधाजनक आसन्दी उपलब्ध हो गयी तो साधक उस पर बैठ गया। इसका भाव यह है कि उस साधक ने साधन-सुविधाएँ उपलब्ध हो जाने पर निश्चिन्त होकर समाज में वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया **।। 09 ।।**

पदार्थ :- ताम् = उसको (सर्वनाम)। **आसन्दीम्** = आसन्दी, आसन, बैठने का साधन, स्थान (अस् - होना, आस् - बैठना, उपस्थित होना, विद्यमान होना, जीवित रहना, होना)। **व्रात्य** = व्रात्य (वृत् - रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, वृ - नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना, नियमित करना)। **आरोहत्** = आरोहण किया, चढ़े, बढ़ें (**आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना) **।। 09 ।।**

82. तस्य देवजनाः परिष्कन्दा, आसन् सङ्कल्पाः, प्रहाय्याः विश्वानि, भूतानि उपसदः ।। 10 ।।

काव्यानुवाद

हो गये देवजन संरक्षक, संकल्पवान् उसके स्वामी।
सब प्राणी उपसद रहे सदा ।। 10 ।।

संहितापाठ

तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः।
प्रहाय्या विश्वानि भूतान्युपसदः ।। 10 ।।

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- तस्य = उसके **सङ्कल्पाः** = सङ्कल्प **परिष्कन्दा** = परिष्कन्द, परिचलन, आनन्द, **प्रहाय्याः** = प्रकृष्ट गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणा **देवजनाः** = देवजन, **विश्वानि** = सभी **भूतानि** = भूत, प्राणी, सृष्टि

उपसदः = उपसद, निकट प्रतिष्ठित **आसन्** = थे **॥ 10 ॥**

भावार्थ :- व्रती साधक ने पहले साधना की, फिर समाज ने उसके लिए साधन उपलब्ध कराये। इसके पश्चात् वह व्यवस्थित ढंग से साधना तथा सेवा कार्य करने लगा तो सामाजिक सहयोग और बढ़ा। अब समाज के देवजन अर्थात् प्रतिष्ठित, प्रभावशाली लोग उसके संरक्षक बन गये तथा जन-सामान्य भी उसके निकटवर्ती सहचर, सहयोगी हो गये। **॥ 10 ॥**

पदार्थ :- तस्य = उसका (सर्वनाम)। **देवजनाः** = देवजन (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना, जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **परिष्कन्दा** = परिष्कन्द, परिचलन, आनन्द (परि - सब ओर, स्कन्द - चलना, सूखना, कन्द् - आनन्द होना, सन्तोष होना, रोना)। **आसन्** = थे (अस् - होना)। **सङ्कल्पाः** = सङ्कल्प (सम् - सम्यक्, कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। **प्रहाय्याः** = प्रकृष्ट गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि, प्रेरणा (प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग), हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना, जाना, जानना, पाना)। **विश्वानि** = सभी (सर्वनाम)। **भूतानि** = भूत, उत्पन्न, हुए (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **उपसदः** = उपसद, सत्य, नित्य, विद्वान्, प्रतिष्ठित, गतिशील, गन्तव्य (उप - समीप, सत् - होना, सतत होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, सद् - बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना) **॥ 10 ॥**

83. विश्वानि एव अस्य भूतानि,
उप सदो भवन्ति यः एवम् वेद ॥ 11 ॥

काव्यानुवाद

सम्पूर्ण सृष्टि उपसद् होती, जो इस प्रकार जाने स्वामी ॥ 11 ॥

संहितापाठ

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥ 11 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - व्रात्य, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- विश्वानि = सभी **भूतानि** = भूत, सृष्टि **अस्य** = इसके **उप** = समीप **एव** = ही **सदो** = स्थित **भवन्ति** = होते हैं, **यः** = जो **एवम्** = इस प्रकार **वेद** = जानता है **॥ 11 ॥**

भावार्थ :- इस प्रकार धैर्यपूर्वक व्यवस्थित वेद-साधना करने वाले व्रती साधक के लिए सभी अपने बन जाते हैं, निकटवर्ती मित्र परिजन सहयोगी हो जाते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि वेदव्रती होकर साधना प्रारम्भ करें तथा कम से कम एक वर्ष तक नियमित साधना करते रहें। धीरे-धीरे समाज के सात्विक प्रबुद्ध वर्ग का सहयोग मिलने लगेगा तथा एक समय पूरा समाज ही सहयोगी बन जायेगा।

इस व्रात्य सूक्त का अर्थ परमात्मपरक भी किया गया है। परन्तु व्रात्य शब्द का अर्थ व्रत धारण करने वाला अर्थात् वेद व्रती साधक पूर्णतः स्पष्ट है। यही सहज स्वाभाविक अर्थ है। व्रात्य को वेदव्रती साधक मानकर अर्थ करने से जिस प्रकार साधना, सहयोग तथा सफलता का क्रम स्पष्ट हुआ है, वह भाव बहुत उत्तम तथा साधकों के लिए प्रेरणादायक है। वेदमन्त्रों के त्रिविध अर्थ आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक किये जाते हैं, अतः शब्दार्थ समान रहते हुए अन्य भावार्थ प्रस्तुत करने को भी उचित प्रयास ही मानते हैं **॥ 11 ॥**

पदार्थ :- विश्वानि = सभी (सर्वनाम)। **एव** = ही (अव्यय)। **अस्य** = इसका (सर्वनाम)। **भूतानि** = भूतों को, उत्पन्न हुओं को (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **उप** = समीप (उपसर्ग)। **सदो** = स्थित, विद्वान्, प्रतिष्ठित, गतिशील, गन्तव्य (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना,

पाना, पहुँचना)। **भवन्ति** = होते हैं (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **एवम्** = इस प्रकार (अव्यय)। **वेद** = ज्ञान, जानो, जानता है (विद् = जानना, समझना, विद्यमान होना)॥ 11 ॥

जीवन सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 67)

84. पश्येम शरदः शतम्॥ 01 ॥
85. जीवेम शरदः शतम्॥ 02 ॥
86. बुध्येम शरदः शतम्॥ 03 ॥
87. रोहेम शरदः शतम्॥ 04 ॥
88. पूषेम शरदः शतम्॥ 05 ॥
89. भवेम शरदः शतम्॥ 06 ॥
90. भूयेम शरदः शतम्॥ 07 ॥
91. भूयसीः शरदः शतात्॥ 08 ॥

काव्यानुवाद

हम देखें सौ वर्ष तक॥ 01 ॥
हम जीवें सौ वर्ष॥ 02 ॥
सौ वर्षों तक बोध हो॥ 03 ॥
बढ़े-चढ़ें सौ वर्ष॥ 04 ॥
पोषण हो सौ वर्ष तक॥ 05 ॥
हम होवें सौ वर्ष॥ 06 ॥
हम हों ही सौ वर्ष॥ 07 ॥

बने रहें सौ वर्ष॥ 08 ॥

संहितापाठ

पश्येम शरदः शतम्॥ 01 ॥
जीवेम शरदः शतम्॥ 02 ॥
बुध्येम शरदः शतम्॥ 03 ॥
रोहेम शरदः शतम्॥ 04 ॥
पूषेम शरदः शतम्॥ 05 ॥
भवेम शरदः शतम्॥ 06 ॥
भूयेम शरदः शतम्॥ 07 ॥
भूयसीः शरदः शतात्॥ 08 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - प्रजापति, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- शतम् = सौ **शरदः** = शरद् **पश्येम** = देखें॥ 01 ॥

मन्त्रार्थ :- शतम् = सौ **शरदः** = शरद् **जीवेम** = जीवन हो, जीवित रहें॥ 02 ॥

मन्त्रार्थ :- शतम् = सौ **शरदः** = शरद् **बुध्येम** = बोध हो॥ 03 ॥

मन्त्रार्थ :- शतम् = सौ **शरदः** = शरद् **रोहेम** = चढ़ते रहें, बढ़ते रहें॥ 04 ॥

मन्त्रार्थ :- शतम् = सौ **शरदः** = शरद् **पूषेम** = पोषण हो, पोषण करें॥ 05 ॥

मन्त्रार्थ :- शतम् = सौ **शरदः** = शरद् **भवेम** = प्रगतिशील, संघर्षशील रहें, बने रहें॥ 06 ॥

मन्त्रार्थ :- शतम् = सौ **शरदः** = शरद् **भूयेम** = होते रहें॥ 07 ॥

मन्त्रार्थ :- शतात् = सौ **शरदः** = शरद् से **भूयसीः** = अधिक, पुनः-पुनः (हों)॥ 08 ॥

भावार्थ :- सौ वर्षों तक तथा उससे भी अधिक सक्रिय तथा गुणवान् आयु प्राप्त हो, यही कामना है। सौ वर्षों तक देखते रहें। सौ वर्षों तक जीवित रहें। सौ वर्ष तक बोध होता रहे। सौ वर्षों तक बढ़ें चढ़ें। सौ वर्षों तक पोषण हो। सौ वर्षों तक होते रहें। सौ वर्षों तक हों। सौ वर्षों से भी अधिक हों।

विशेष :- यहाँ शरद् शब्द का भावार्थ एक वर्ष है। एक बार सभी ऋतुओं का चक्र पूर्ण हो जाने की अवधि सम्वत्सर है। इस अवधि में पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा पूर्ण करती है। लोक व्यवहार में इस अवधि को ऋतु से व्यक्त किया जाता है जैसे वर्ष (वर्षा ऋतु), शरद (शरद ऋतु), वसन्त आदि। साहित्य में आयु इतने वसन्त देखी जैसे उल्लेख सामान्यतः मिलते ही हैं॥ 08॥

पदार्थ :- पश्येम = देखें (पश् - देखना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)॥ 01॥

पदार्थ :- जीवेम = जीवित रहें (जीव् - प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)॥ 02॥

पदार्थ :- बुध्येम = बोध हो (बुध् - बोध होना, बोध करना, जानना, समझना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)॥ 03॥

पदार्थ :- रोहेम = चढ़ते रहें, बढ़ते रहें (रुह - बढ़ना, ऊपर जाना, चढ़ना, बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)॥ 04॥

पदार्थ :- पूषेम = पोषण हो, पोषण करें (पुष् - पालन-पोषण करना, धारण करना, पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)॥ 05॥

पदार्थ :- भवेम = प्रगतिशील रहें, संघर्षशील रहें, बने रहें (भु -

जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)॥ 06॥

पदार्थ :- भूयेम = होते रहें (भु - जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)॥ 07॥

पदार्थ :- भूयसीः = अधिक, पुनः-पुनः (अव्यय)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतात्** = सौ से (संख्या)॥ 08॥

कर्म सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 68)

92. अव्यसः च व्यचसः च, बिलम् वि ष्यामि मायया।
ताभ्याम् उद्-धृत्य वेदम्, अथ कर्माणि कृण्महे॥ 01॥

काव्यानुवाद

अव्यस और व्यचस में, अन्तर माया जन्य।
उद्धृत कर हम वेद को, कर्म करें अनुमन्य॥ 01॥

संहितापाठ

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे॥ 01॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- अव्यसः = अव्यापक, बन्धन **च** = और **व्यचसः** = व्यापक के **च** = और **बिलम्** = भेद, आच्छादन, आवरण को **मायया** = माया द्वारा, मान, मापन, तुलना द्वारा **वि ष्यामि** = विशेष अन्त करता हूँ।

अथ = अब **ताभ्याम्** = उन दोनो के लिए **वेदम्** = वेद को **उद्-धृत्य** = उद्-धृत कर **कर्माणि** = कर्मों को **कृण्महे** = करते हैं॥ 01 ॥

भावार्थ :- अव्यस और व्यचस का अर्थ सामान्यतः अव्यापक तथा व्यापक किया गया है। दोनों में प्रबल भेद प्रतीत होता है। यदि हम रूढ़ियों, परम्पराओं, थोपी गयी मान्यताओं से बचकर विवेकपूर्ण दृष्टि अपनाकर, माया अर्थात् मान, मापन, तुलना द्वारा तटस्थ निष्पक्ष निर्णय करने का प्रयास करें तो इस भेद का भी अन्त हो जाता है। परमात्मा की सर्वव्यापकता का अनुभव होने पर बोध होता है कि उसके अतिरिक्त तो कुछ है ही नहीं, परम सत्य के रूप में सर्वत्र तथा सर्वस्व परमात्मा ही है। इसके पश्चात् किसी भेद के लिए स्थान शेष नहीं रह जाता है। हम अनेक बन्धनों से बँधे रहते हैं। अनेक संकीर्णताएं, परम्पराएँ, अन्धविश्वास, मान्यताएँ हमको जकड़ लेती हैं और हम बन्धन में पड़ जाते हैं। परमात्मा की व्यापकता का अनुभव करें, अपना दृष्टिकोण बनायें तो इन काल्पनिक, अवास्तविक बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं। बन्धन की सीमाओं तथा व्यापकता के मध्य जो आवरण है, उससे हम विवेकपूर्ण दृष्टि अपनाकर, बच सकते हैं। वेद को उद्-धृत कर अर्थात् सर्वोच्च प्रमाण मानकर हमें कर्म करने चाहिए। इससे किसी प्रकार के भ्रम की सम्भावना नहीं रह जाती है॥ 01 ॥

पदार्थ :- अव्यसः = अव्यापक, बन्धन, पालन, रक्षा करने वाला (अ - नहीं, वी - व्याप्त होना, व्यापना। अव्य - बाँधना, पालन-रक्षण करना)। **च** = और (अव्यय)। **व्यचसः** = व्यापक, आदर करने वाला, याचना करने वाला (व्यच् - व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, ठगना, वि - विशेष, अच् - जाना, मरना, आदर करना, याचना करना)। **च** = और (अव्यय)। **बिलम्** = भेद, आच्छादन, आवरण (बिल् - आच्छादन करना, जाना, छेद करना, भेदना, भेदन करना, भाग करना)। **वि** = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। **ष्यामि** = अन्त करता हूँ, नष्ट करता हूँ (सो-स्य - अन्त करना, नष्ट

करना)। **मायया** = माया द्वारा, मान, मापन, तुलना द्वारा (मय् - जाना, क्लिष्ट कार्य करना, मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। **ताभ्याम्** = उन दोनो के लिए (सर्वनाम)। **उद्-धृत्य** = उद्-धृत कर (उत् - ऊपर, धृ - रहना, स्थिर रहना, धारण करना, पास रखना, युक्त होना)। **वेदम्** = वेद को, ज्ञान को (विद् - जानना, समझना, विद्यमान होना)। **अथ** = अब, इसके अनन्तर (अव्यय)। **कर्माणि** = कर्मों को, कर्म (कृ - करना)। **कृण्महे** = करते हैं (कृ - करना)॥ 01 ॥

जीवन सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 69)

93. जीवा स्थ जीव्यासम्,
सर्वम् आयुः जीव्यासम्॥ 01 ॥

94. उपजीवा स्थ उप जीव्यासम्,
सर्वम् आयुः जीव्यासम्॥ 02 ॥

95. सम् जीवा स्थ सम् जीव्यासम्,
सर्वम् आयुः जीव्यासम्॥ 03 ॥

96. जीवला स्थ जीव्यासम्,
सर्वम् आयुः जीव्यासम्॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

हैं जीव सदा जीवन्त रहें,
सारी आयु जीवन्त रहें॥ 01 ॥
उपजीव रहें, उप जीवन हो,

सारी आयु जीवन्त रहें॥ 02॥

सम् जीव रहें, सम् जीवन हो,

सारी आयु जीवन्त रहें॥ 03॥

जीवला रहें, जीवन्त रहें,

सारी आयु जीवन्त रहें॥ 04॥

संहितापाठ

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ 01॥

उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ 02॥

सं जीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ 03॥

जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ 04॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - विद्वांसो, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- जीवा = जीव **स्थ** = हों, **जीव्यासम्** = जीवन हो, जीवित रहें, जीवन्त रहें। **सर्वम्** = सम्पूर्ण **आयुः** = आयु **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें॥ **01**॥

मन्त्रार्थ :- उपजीवा = उपजीव **स्थ** = हों, **उप** = समीप **जीव्यासम्** = जीवन हो, जीवित रहें, जीवन्त रहें **सर्वम्** = सम्पूर्ण **आयुः** = आयु **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें॥ **02**॥

मन्त्रार्थ :- सम् = सम्यक् रूप से **जीवा** = जीव **स्थ** = हों, **सम्** = सम्यक् रूप से **जीव्यासम्** = जीवन हो, जीवित रहें, जीवन्त रहें **सर्वम्** = सम्पूर्ण **आयुः** = आयु **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें॥ **03**॥

मन्त्रार्थ :- जीवला = जीवला **स्थ** = हों **जीव्यासम्** = जीवन हो, जीवित रहें, जीवन्त रहें **सर्वम्** = सम्पूर्ण **आयुः** = आयु **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें॥ **04**॥

भावार्थ :- हम सदा जीवन्त होकर रहें, सम्पूर्ण आयु जीवन्तता

बनायें रहें। जीव के समीप रहें, जीवन के समीप रहें, सम्पूर्ण आयु जीवन्त रूप से रहें। सम्यक् रूप से जीव रहें, सम्यक् रूप से जीवन जियें, सम्पूर्ण आयु जीवन्त रूप से रहें। जीवित रहें, जीवन्त रहें, सम्पूर्ण आयु जीवन्त रूप से रहें॥ **01 - 04**॥

पदार्थ :- जीवा = जीव (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **स्थ** = हों, स्थित (अस् - होना, स्था - स्थित होना, ठहरना)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **सर्वम्** = सब कुछ (सर्वनाम)। **आयुः** = आयु (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय - जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु - मिलना, अलग करना)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)॥ **01**॥

पदार्थ :- उपजीवा = उपजीव (उप - समीप (उपसर्ग), जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **स्थ** = हों, स्थित (अस् - होना, स्था - स्थित होना, ठहरना)। **उप** = समीप (उपसर्ग)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **सर्वम्** = सब कुछ (सर्वनाम)। **आयुः** = आयु (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय - जाना, जानना, पाना, गति करना, आय् - शब्द करना, शासन करना, यु - मिलना, अलग करना)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)॥ **02**॥

पदार्थ :- सम् = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **जीवा** = जीव (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन

धारण करना)। **स्थ** = हों, स्थित (अस् - होना, स्था - स्थित होना, ठहरना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **सर्वम्** = सब कुछ (सर्वनाम)। **आयुः** = आयु (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय् = जाना, जानना, पाना, गति करना, आय् - शब्द करना, शासन करना, यु - मिलना, अलग करना)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना) **॥ 03 ॥**

पदार्थ :- जीवला = जीवला (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **स्थ** = हों, स्थित (अस् - होना, स्था - स्थित होना, ठहरना)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **सर्वम्** = सब कुछ (सर्वनाम)। **आयुः** = आयु (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय् - जाना, जानना, पाना, गति करना, आय् - शब्द करना, शासन करना, यु - मिलना, अलग करना)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना) **॥ 04 ॥**

जीवन सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 70)

97. इन्द्र जीव सूर्य जीव, देवा जीवा जीव्यासम्।
सर्वम् आयुः जीव्यासम् ॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

इन्द्र जीव है सूर्य जीव,
हैं देव जीव, जीवन्त रहें,

सारी आयु जीवन्त रहें ॥ 01 ॥

संहितापाठ

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्। सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ 01 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - इन्द्र, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- इन्द्र = इन्द्र, परम ऐश्वर्यशाली **जीव** = जीव **सूर्य** = सूर्य, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् **जीव** = जीव **देवा** = तेजस्वी, देवगण, **जीवा** = जीव **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें **सर्वम्** = सम्पूर्ण **आयुः** = आयु **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें **॥ 01 ॥**

भावार्थ :- सभी जीव सदा जीवन्त होकर रहें, सम्पूर्ण आयु जीवन्त रहें। जीव के समीप रहें, जीवन के समीप रहें, सम्पूर्ण आयु जीवन्त रूप से रहें। सम्यक् रूप से जीव रहें, सम्यक् रूप से जीवन जियें, सम्पूर्ण आयु जीवन्त रूप से रहें। जीवित रहें, जीवन्त रहें, सम्पूर्ण आयु जीवन्त रूप से रहें **॥ 01 ॥**

पदार्थ :- इन्द्र = परम ऐश्वर्यशाली (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **जीव** = जीव (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **सूर्य** = सूर्य, उत्पन्न करने वाला (सुर् - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। **जीव** = जीव (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **देवा** = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **जीवा** = जीव (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **सर्वम्** =

सब कुछ (सर्वनाम)। **आयुः** = आयु (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय् - जाना, जानना, पाना, गति करना, आय् - शब्द करना, शासन करना, यु - मिलना, अलग करना)। **जीव्यासम्** = जीवन्त रहें, जीवन पायें, जीवित रहें (जीव् - जीवन होना, प्राणवान् होना, प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)॥ **01** ॥

वेद सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 71)

98. स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्र चोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणम् प्रजाम् पशुम्,
कीर्तिम् द्रविणम् ब्रह्म-वर्चसम्।
मह्यम् दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

स्तुति करें वेदमाता की, वरदायिनी वेदमाता की।
प्रेरित पावन द्विज को करती, आयुष्, प्राण, प्रजा, पशु दाता,
ब्रह्म-तेज दे कीर्ति द्रविण भी, ब्रह्मलोक हमको ले चलती॥ 01 ॥

संहितापाठ

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ 01 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - वेदमाता, छन्द - अतिजगती (विधृति), षड्ज)

मन्त्रार्थ :- मया = मेरे द्वारा **स्तुता** = स्तुत, स्तुति की गयी **वरदा** = वर देने वाली **द्विजानाम्** = द्विजों को, दो जन्म वालों को, **पावमानी** = पवित्र करने वाली **वेदमाता** = वेद माता **प्र** = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक **चोदयन्ताम्** = प्रेरित करे। **आयुः** = आयु, **प्राणम्** = प्राण, **प्रजाम्** = प्रजा, **पशुम्** = पशु, दृष्टि, बन्धु-बान्धव, **कीर्तिम्** = कीर्ति, **द्रविणम्** = द्रविण **ब्रह्म-वर्चसम्** = ब्रह्म-वर्चस्, ब्रह्म तेज को **मह्यम्** = मेरे लिए **दत्वा** = देकर **ब्रह्मलोकम्** = ब्रह्म-लोक को **व्रजत** = ले चले॥ **01** ॥

भावार्थ :- वेद को माता कहा गया है। माता की तरह ही वेद द्वारा हमें पालन-पोषण, संरक्षण प्राप्त होता है। वेद से ही हमारा सांस्कृतिक, वैचारिक, आध्यात्मिक जन्म हुआ है। वेद को आध्यात्मिक माता स्वीकार करने पर वह 'वरदा' है, हमें वर देने वाली है। हमें प्रत्येक परिस्थिति में वेद से प्रेरणा तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता है। उसको माता स्वीकार करने पर हमारा दूसरा जन्म, आध्यात्मिक जन्म होता है और हम द्विज बन जाते हैं। एक बार माता शरीर को जन्म देती है तथा दूसरी बार वेद माता आध्यात्मिक जन्म देती है। वेदमाता के गर्भ में प्रवेश कर वेद विद्या का पोषण प्राप्त कर, वेद का अध्ययन पूर्ण करना ही वेदमाता के गर्भ से जन्म लेना है। इससे व्यक्ति को साधारण जीवन से वैदिक मानव का दिव्य जीवन प्राप्त होता है। वेद के मार्गदर्शन से जीवन में दीर्घ तथा श्रेष्ठ आयु, प्राणवान् तेजस्वी जीवन, अच्छा परिवार तथा समाज, सम्यक् दृष्टि वाले हित चिन्तक गुरुजन, बन्धु-बान्धव, कीर्ति, धन एवम् वैदिक विद्वानों के समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त होता है॥ **01** ॥

पदार्थ :- स्तुता = स्तुति की हुई (स्तु - प्रशंसा करना, स्तुति करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा करना, भजन करना)। **मया** = मेरे द्वारा (सर्वनाम)। **वरदा** = वर देने वाली (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना, दा - देना)। **वेदमाता** = वेद माता (विद् - जानना, समझना, विद्यमान होना, मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द

करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। **प्र** = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग)। **चोदयन्ताम्** = प्रेरित करें (चुद् - प्रेरणा देना)। **पावमानी** = पवमान युक्त, पवित्रता युक्त, पवित्र करने वाले, (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **द्विजानाम्** = द्विजों का, दो जन्म वालों का (द्वि - दो (संख्या), जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)। **आयुः** = आयु (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय् - जाना, जानना, पाना, गति करना, आय् - शब्द करना, शासन करना, यु - मिलना, अलग करना)। **प्राणम्** = प्राण को (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन् - जीवन होना, चेतन होना, प्रा - पूर्ण करना, तृप्त करना)। **प्रजाम्** = प्रजा को (प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग), जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **पशुम्** = पशु को, दृष्टा को, बन्धन को (पश्-दृश् - देखना, पश् - बाँधना, जाना)। **कीर्तिम्** = कीर्ति (कीर्त - नाम लेना)। **द्रविणम्** = द्रविण को, द्रवित होने वाले को, द्रवणशील, प्रवाहमान को (द्रु - पिघलना, बहना, चलना, जाना, जानना, पाना, अनुसरण करना)। **ब्रह्म-वर्चसम्** = ब्रह्म-वर्चस्, ब्रह्म तेज, (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। **मह्यम्** = मेरे लिए (सर्वनाम)। **दत्वा** = देकर (दा - दान करना, देना, त्याग करना, सौंपना, लौटाना, रखना)। **व्रजत** = ले चलो (व्रज - जाना, पूर्ण करना, सिद्ध करना)। **ब्रह्मलोकम्** = ब्रह्म-लोक को, महान् दर्शन को (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, लोक् - देखना, प्रकाशित होना, बोलना)॥ 01 ॥

वेद सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 19, अनुवाक 102, सूक्त 72)

99. यस्मात् कोशात् उदभराम् वेदम्,

तस्मिन् अन्तः अव दध्म एनम्।
कृतम् इष्टम् ब्रह्मणो वीर्येण तेन,
मा देवाः तपसा अवत इह॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

प्राप्त वेद को जिससे करते, उसी कोश में इसको धरते।
उसी ब्रह्म के बल से करते, इष्ट कर्म सम्पादन करते,
सब देव सदा तप से अपने, हम लोगों की रक्षा करते॥ 01 ॥

संहितापाठ

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतीह॥ 01 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - परमात्मा, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ : - **यस्मात्** = जिससे। **कोशात्** = कोश से। **उदभराम्** = भरते हैं, निकालते हैं। **वेदम्** = वेद को, ज्ञान को। **तस्मिन्** = उसमें **अन्तः** = बीच में, भीतर **अव** = नीचे, दूर, प्राप्त **दध्म** = धारण करते हैं, धरते हैं **एनम्** = इसको, इसे **कृतम्** = कृतित्व, किया हुआ **इष्टम्** = इष्ट को, इच्छा, प्रगति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को **ब्रह्मणो** = बड़ा, बृहत् **वीर्येण** = पराक्रम द्वारा, सामर्थ्य द्वारा **तेन** = उसके द्वारा **मा (माम्)** = मुझे, मुझको **देवाः** = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने **तपसा** = तप द्वारा **अवत** = रक्षा करो **इह** = इसमें, यहां, यह (सर्वनाम)॥ 01 ॥

भावार्थ :- वेद विद्या का कोश या मूल भाण्डार तो परमात्मा ही है। हम परमात्मा से ही वेद को प्राप्त करते हैं और अन्ततः उसे ही समर्पित कर देते हैं। वेद को शब्द ब्रह्म कहा गया है, यह परमात्मा का ही स्वरूप है। प्रत्यक्ष मार्गदर्शन तथा शक्ति हमें वेद से ही प्राप्त होती है। परमात्मा से भी परिचय वेद के ही माध्यम से होता है। परमात्मा हमारा पिता है तो वेद को

माता कहा गया है। माता ही तो पिता से परिचय कराती है।

पुस्तक के रूप में वेद को सुरक्षित रखने के लिए कोश या पेटिका तैयार करते हैं। हम वेद ग्रन्थ को सम्मानजनक सुरक्षित तरीके से सुन्दर पेटिका रखते हैं। अध्ययन के लिए हम वेद को पेटिका से निकालते हैं तथा उसके पश्चात् पुनः वहीं सुरक्षित रख देते हैं। हम वेद का इतना सम्मान करते हैं क्योंकि वेद की ही शक्ति से हमने अपने इष्ट कार्य किये हैं, अभीष्ट इच्छित लक्ष्य प्राप्त किये हैं तथा वैदिक विद्वान् इस संसार में प्रतिदिन अनेक समस्याओं से हमारी रक्षा करते हैं।

पदार्थ :- यस्मात् = जिससे (सर्वनाम)। **कोशात्** = कोश से (कुश् - आलिंगन करना, लपेटना, कोश होना, समाधान करना, सहना)। **उदभराम्** = भरते हैं, निकालते हैं (उत् - उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च। अ - भूतकालिक क्रिया प्रत्यय। भृ - पूर्ण करना, भरना, धारण-पोषण करना)। **वेदम्** = वेद को, ज्ञान को (विद् - जानना, समझना, विद्यमान होना)। **तस्मिन्** = उसमें (सर्वनाम)। **अन्तः** = बीच में, भीतर (उपसर्ग)। **अव** = नीचे, दूर, प्राप्त (अव्यय)। **दध्म** = धारण करते हैं, धरते हैं, अर्पण करते हैं (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **एनम्** = इसको, इसे (सर्वनाम)। **कृतम्** = कृतित्व, किया हुआ (कृ - करना)। **इष्टम्** = इष्ट को, इच्छा, प्रगति, ज्ञान, प्राप्ति, दृष्टि को (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। **ब्रह्मणो** = बड़ा, बृहत् के (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **वीर्येण** = पराक्रम द्वारा, सामर्थ्य द्वारा (वीर् - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। **तेन** = उसके द्वारा (सर्वनाम)। **मा (माम्)** = मुझे, मुझको (सर्वनाम)। **देवाः** = विद्वान्, तेजस्वी, देवगण, देवगणों ने (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना,

खेलना)। **तपसा** = तप द्वारा (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तप करना, तप्त होना, तप्त करना, जलना, जलाना, तृषा होना)। **अवत** = रक्षा करो (अव् - रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। **इह** = इसमें, यहां, यह (सर्वनाम)॥ 01 ॥

अश्विना सूक्त

(अथर्ववेद, काण्ड 20, अनुवाक 111, सूक्त 143)

100. तम् वाम् रथम् वयम् अद्य हुवेम,
पृथुज्रयम् अश्विना सङ्गतिम् गोः।
यः सूर्याम् वहति वन्धुरायुः,
गिर्वाहसम् पुरुतमम् वसूयुम्॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

अश्विना, तुम्हारे उस रथ को,
हम लोग आज आह्वान करें।
विस्तृत जय वाणी संगम हो,
जो वहन करे सूर्या स्वामी,
विज्ञान, वास दे अग्रगमन॥ 01 ॥

संहितापाठ

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसुयुम्॥ 01 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - अश्विना, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- अश्विना = हे अश्विन् युगल, तीव्र गति युक्त, व्यापक **वयम्** = हम **वाम्** = तुम दोनों के **पृथुज्रयम्** = विस्तृत गति वाले, जीतने वाले, **सङ्गतिम्** = सङ्गति करने वाले, **तम्** = उस **रथम्** = रथ को **अद्य**

= आज **हुवेम** = आह्वान करते हैं, दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं, तृप्ति करते हैं, ग्रहण करते हैं, **यः** = जो **वन्धुरायुः** = विद्वानों से मिलाने वाला, **गोः** = शब्दकर्ता, मननशील, **गिर्वाहसम्** = वाणी को वहन करने वाला, **पुरुतमम्** = अत्यन्त अग्रगामी, **वसूयुम्** = वसुयुक्त, वासयुक्त, **सूर्याम्** = सूर्या को, ऐश्वर्य को, सृजन को **वहति** = वहन करता है **॥ 01 ॥**

भावार्थ :- इस सूक्त का देवता अश्विना है। अश्विना शब्द द्विवचन है, अतः इसका अर्थ हुआ दो अश्वी। अर्थात् व्यापक तथा समष्टि गुणों से युक्त युगल। अश्विना शब्द से परमात्मा तथा उसकी सृष्टि, इस सृष्टि में जड़ तथा चेतन, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, पति-पत्नी आदि युगलों का भाव ग्रहण किया जा सकता है तथा उनके अनुसार इस सूक्त का भावार्थ तथा व्याख्या कर सकते हैं। इस सूक्त को किसी एक भावार्थ में सीमित करना उचित नहीं है। विभिन्न युगलों को ध्यान में रखकर सूक्त की व्याख्या करेंगे तो वेदार्थ की व्यापकता का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। मन्त्र का भाव है कि वेदवाणी की सङ्गति प्राप्त हो, जय की प्रेरणा हो। यदि हमारा जीवन रूपी रथ ऐसा हो तो वह तेज और ऐश्वर्य का वाहक होगा। विज्ञान भी आवश्यक है तथा सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापक तथा समष्टि दृष्टि तो चाहिए ही। वन्धुरायुः पद के पदपाठ में वन्धुर तथा युः शब्दों में समास माना गया है। वन्धुर शब्द में वन् धातु तथा युः में यु धातु पूर्णतः स्पष्ट है **॥ 01 ॥**

पदार्थ :- तम् = उसको, उसे (सर्वनाम)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)। **रथम्** = रथ को (रम् - रमना, प्रिय होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। **वयम्** = हम, हम सब, हम लोग (सर्वनाम)। **अद्य** = आज (अव्यय)। **हुवेम** = आह्वान करते हैं, दान करते हैं, आदान-प्रदान करते हैं, तृप्ति करते हैं (हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे - शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। **पृथुज्रयम्** = विस्तृत गति वाले,

जीतने वाले (पृथ्, प्रथ् - विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना, ज्रि - जीतना, जय पाना, न्यून होना, वृद्ध होना, जीर्ण होना)। **अश्विना** = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक (अश् - व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **संगतिम्** = सङ्गति, सङ्गति करने वाले (सम् - सम्यक्, गम् - जाना)। **गोः** = शब्द करने वाला, मननशील (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **सूर्याम्** = सूर्या को, ऐश्वर्य को, सृजन को (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना, सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। **वहति** = वहन करता है (वह् - वहन करना, ले जाना, बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। **वन्धुरायुः** = विद्वानों से मिलाने वाले (वन्धुरा-युः। वन्धुर-आयुः। वन्धुर-आ-युः। वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, वन् - स्मरण करना, वन् - बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, यु - मिलना, अलग करना, मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना। आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय् - जाना, जानना, पाना, गति करना, आय् - शब्द करना, शासन करना)। **गिर्वाहसम्** = वाणी का वहन करने वाले (गृ - सींचना, गीला करना, समझना, जानना। गृ - शब्द करना। वह् - वहन करना ले जाना, बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। **पुरुतमम्** = अत्यन्त अग्रगामी (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। **वसूयुम्** = वसुयुक्त, वसु से मिलाने वाले (वस् - वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना, यु - मिलाना, अलग करना) **॥ 01 ॥**

101. युवम् श्रियम् अश्विना देवता,
ताम् दिवो नपाता वनथः शचीभिः।
युवोः वपुः अभि पृक्षः सचन्ते,
वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम्॥02॥

काव्यानुवाद

अश्विना देवता आश्रय हो, वचनों से दिव रक्षा करते।
करते हो वपन-कर्म सिंचन, तुमको द्रुत रथ में करें वहन॥02॥

संहितापाठ

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम्॥02॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - अश्विना, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- अश्विना = हे अश्विन् युगल, तीव्र गति युक्त, व्यापक **देवता** = देवत्व, दिव्यता **युवम्** = तुम **ताम्** = उस **श्रियम्** = श्रेय को, आश्रय को, **शचीभिः** = उत्तम वाणियों द्वारा **दिवो** = दिव्य **नपाता** = न गिराने वाले, **वनथः** = सेवा, सहायता, शब्द करते हो। **युवोः** = तुम दोनों के **वपुः** = उत्पन्न करने, बुनने वाले, **पृक्षः** = मिलने वाले **अभि** = अभिमुख, सर्वथा **सचन्ते** = अभिसिञ्चन करते हैं। **यत्** = जो **ककुहासो** = गर्व को छोड़ने वाले, वाणी, विद्या का हास, प्रसन्नता युक्त **वाम्** = तुम दोनों को **रथे** = रथ में **वहन्ति** = वहन करते हैं॥02॥

भावार्थ :- गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, राजा-प्रजा आदि कोई भी युगल हो, उसमें देवत्व होना चाहिए, उसे विद्वानों, अतिथियों, सज्जनों का आश्रय भी बनना चाहिए। वेद का निरन्तर स्वाध्याय करना चाहिए, जिससे दिव्यता सदैव बनी रहे। सहायता की भावना रहे तथा सृजन-उत्पादन, उपयोग करने का उद्यम भी करते रहें। ज्ञान की प्यास रहे तो सात्विक गर्व-

स्वाभिमान का भाव तथा आत्म विश्वास भी बना ही रहेगा॥02॥

पदार्थ :- युवम् = तुमको (सर्वनाम)। **श्रियम्** = श्रिय को, श्रेय को, आश्रय को (श्री - सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना)। **अश्विना** = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक (अश् - व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **देवता** = देवत्व, दिव्यता (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। **ताम्** = उसको (सर्वनाम)। **दिवो** = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। **नपाता** = न गिराने वाला (न - नहीं, पत् - गिरना)। **वनथः** = सेवा, सहायता, शब्द करते हो (वन् - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपदाग्रस्त होना, मिश्रित होना, वर्षा होना, स्मरण करना, अंकुरित होना, याचना करना, उद्योग-व्यापार करना)। **शचीभिः** = उत्तम वाणियों द्वारा (शच - स्पष्ट बोलना)। **युवोः** = तुम दोनों का (सर्वनाम)। **वपुः** = उत्पन्न करने, बुनने वाले (वप - बीज बोना, उत्पन्न करना, बुनना, अन्नादि काटना, बाल काटना)। **अभि** = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा (उपसर्ग)। **पृक्षः** = मिलने वाले (पृक् - मिलना, संसर्ग होना, सम्बन्धित होना)। **सचन्ते** = अभिसिञ्चन करते हैं (सच् - सेवा करना, सन्तुष्ट करना, सींचना, पूर्णतया समझना, सम्बन्धी होना)। **वहन्ति** = वहन करते हैं (वह् - वहन करना, ले जाना, बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। **यत्** = जिसे, जो (सर्वनाम)। **ककुहासो** = गर्व को छोड़ने वाले, विद्वान्, वाणी, विद्या का हास, प्रसन्नता (कक - गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना, कुह - उगना, आश्चर्य या चमत्कार दिखाना, मोहित करना, कु - शब्द करना,

कविता करना, हा - छोड़ना, परित्याग करना, जाना, चलना, हस - हंसना, ठट्ठा करना)। **रथे** = रथ में (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)॥ 02 ॥

102. को वाम् अद्य करते रातहव्यः,
ऊतये वा सुतपेयाय वा अर्कैः।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय,
नमो येमानो अश्विना आ ववर्तत्॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

करते हैं तुमको रातहव्य, रक्षा के हेतु कौन स्वामी।
ऐश्वर्य-पान-हित तप द्वारा, ऋत, शब्द, वास के लिए नमन।
गतिमान अश्विना वर्तमान॥ 03 ॥

संहितापाठ

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत्॥ 03 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - अश्विना, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- अद्य = आज **को** = कौन **रातहव्यः** = प्रदत्त दान **अर्कैः** = अर्कों द्वारा, स्तुतियों द्वारा **वाम्** = तुम दोनों के लिए **ऊतये** = रक्षा के लिए, शब्द के लिए **वा वा** = अथवा **सुतपेयाय** = उत्पन्न-पालन योग्य के लिए, आसुत पेय के लिए **करते** = कर्म करता है। **वा** = अथवा **ऋतस्य** = ऋत के **पूर्व्याय** = पहले, पूर्व **वनुषे** = वाणी, सेवा, सहायता के लिए **नमो** = नमन **येमानो** = प्राप्त करते हुए **अश्विना** = अश्विन् युगल, तीव्र गति युक्त, व्यापक **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम **ववर्तत्** = वर्तमान रहता है, व्यवहार करता है॥ 03 ॥

भावार्थ :- रक्षा तथा पालन के लिए स्तुतियों तथा तप की आवश्यकता है। स्तुति का अर्थ है गुण वर्णन तथा प्रशंसा। गुणों की जानकारी हो, उनका वर्णन करें तथा प्रशंसा भी करें। जानकारी तथा कृतज्ञता की भावना हो तो किसी व्यक्ति, वस्तु, विचार से लाभ उठाया जा सकता है। ऐसी उपयोगिता जिसमें हो, वह आदान-प्रदान योग्य भी है, उसका समाज में वितरण भी करते रहना चाहिए। जो व्यापक दृष्टि वाले युगल ऋत का ज्ञान तथा आवास आदि सुविधाएँ प्रदान करें, ऐसे लोकहितैषी प्रगतिशील युगल को नमन तो सभी सज्जन करेंगे ही॥ 03 ॥

पदार्थ :- को = कौन (सर्वनाम)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)। **अद्य** = आज (अव्यय)। **करते** = करता है (कृ - करना)। **रातहव्यः** = प्रदत्त दान (रा - देना, मिल जाना, हु - देना, आदान-प्रदान करना)। **ऊतये** = रक्षा के लिए, शब्द के लिए (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, ऊ-अव् - रक्षा करना)। **वा** = अथवा (अव्यय)। **सुतपेयाय** = उत्पन्न हुए की रक्षा के लिए, पान के लिए (सु - उत्तम, अच्छा (उपसर्ग), सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, पा - रक्षा करना, पालन करना, पा-पिब् - पीना, पान करना, प्राशन करना, संरक्षण करना)। **वा** = अथवा (अव्यय)। **अर्कैः** = अर्कों द्वारा, स्तुतियों द्वारा (अर्क - प्रशंसा करना, स्तुति करना, ग्रहण करना)। **ऋतस्य** = ऋत का (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)। **वा** = अथवा (अव्यय)। **वनुषे** = वाणी, सेवा, सहायता के लिए (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना, वनु - याचना करना, मांगना)। **पूर्व्याय** = पहले, पूर्व के लिए (पूर्व - पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना)।

नमो = नमन (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **येमानो** = जाते हुए (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। **अश्विना** = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक (अश् - व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। **ववर्तत्** = वर्तमान रहता है, व्यवहार करता है (वृत् - रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ - नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)॥ 03 ॥

103. हिरण्ययेन पुरुभू रथेन,
इमम् यज्ञम् नासत्या उप यातम्।
पिबाथः इत् मधुनः सोम्यस्य,
दधथो रत्नम् विधते जनाय॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

इस ज्योतिमान रथ से पुरभू, नासत्या यजन-समीप गये।
वे सोम्य-मधुरता-पान करें, जन-हेतु रत्न-धारण करते॥ 04 ॥

संहितापाठ

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम्।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय॥ 04 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - अश्विना, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- पुरुभू = हे अग्रणी, अग्रगामी **नासत्या** = असत्य-हीन युगल, शब्द योग्य, शब्दकर्ता **हिरण्ययेन** = प्रकाशमान **रथेन** = रथ द्वारा **इमम्** = इस **यज्ञम्** = यजन को **उप** = समीप **यातम्** = गया, प्राप्त किया। **सोम्यस्य** = सौम्य का, **मधुनः** = मधु का **इत्** = ही **पिबाथः** = पान करो।

जनाय = जन के लिए **विधते** = विशेष धारण के लिए **रत्नम्** = रत्न को **दधथो** = धारण करो, प्रदान करो॥ 04 ॥

भावार्थ :- पुरभू अर्थात् अग्रगामी, नासत्या अर्थात् असत्य-हीन, असत्य से मुक्त युगल ज्योतिमान रथ द्वारा यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान जैसे लोकहितकारी कार्यों के समीप जाते हैं। वे सोम्यता की मधुरता का पान करते हैं तथा जन-हित के लिए ही रत्नों को धारण करते हैं। जीवन रूपी रथ को प्रकाशमान तथा अग्रगामी बनाना है। अज्ञान का अन्धकार न रहे, ज्ञान तथा विवेक का प्रकाश सदैव बना रहे। ऐसा जीवन रथ हो तो असत्य-हीन, असत्य से मुक्त होकर वेद तथा यजन के समीप रहकर सद्गुणों के रत्नों को प्राप्त कर सकते हैं॥ 04 ॥

पदार्थ :- हिरण्ययेन = हिरण्य से, प्रकाशमान, गतिशील द्वारा (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना)। **पुरुभू** = अग्रणी, अग्रभावी, आगे होने वाला (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, भु - जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **रथेन** = रथ द्वारा (रम् - रमना, प्रिय होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। **इमम्** = इसको (सर्वनाम)। **यज्ञम्** = यजन को (यज्ञ - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **नासत्या** = असत्य-हीन युगल, नासत्य युगल, श्वास-प्रश्वास, शब्द योग्य (न - नहीं, अ - नहीं, सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, नास - शब्द करना, ध्वनि करना, श्वास लेना, श्वास-ध्वनि करना)। **उप** = समीप (उपसर्ग)। **यातम्** = प्राप्त, गत, गया हुआ (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। **पिबाथः** = पियो, पान करो (पा-पिब् - पीना, पान करना, प्राशन करना, संरक्षण करना)। **इत्** = ही (अव्यय)। **मधुनः** = मधु का (मद-मध् = मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना, आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। **सोम्यस्य** = सौम्य का (सु - उत्पन्न होना, उत्पन्न

करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना, सू - प्रेरणा देना, सो–स्य, सय - विध्वंस करना, नष्ट करना, नष्ट होना, भग्न होना)। **दधथो** = धारण करो (धा-दध् - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **रत्नम्** = मूल्यवान् को, रत्न को (रम् - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना)। **विधते** = विशेष धारण के लिए (वि - विशेष, धा - धारण, पोषण, रक्षण, दान करना)। **जनाय** = जन के लिए (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना)॥ 04 ॥

104. आ नो यातम् दिवो अच्छा पृथिव्या,
हिरण्ययेन सुवृता रथेन।
मा वाम् अन्ये नि यमन् देवयन्तः,
सम् यत् ददे नाभिः पूर्व्या वाम्॥ 05 ॥

काव्यानुवाद

आये पृथ्वी पर दिव्य स्वच्छ, सुवृत हिरण्य रथ से स्वामी।
कोई तुमको नियमन न करे, देवों ने नाभि दिया पहले॥ 05 ॥

संहितापाठ

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम्॥ 05 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - अश्विना, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- नो = हमारे लिए **हिरण्ययेन** = हिरण्य, प्रकाशमान, **रथेन** = रथ द्वारा **अच्छा** = अच्छा, श्रेष्ठ, स्वच्छ **सुवृता** = सुव्रती, उत्तम व्रत वाले **पृथिव्या** = पृथ्वी योग्य, पृथिव्य **दिवो** = दिव्य **आ यातम्** = आये। **वाम्** = तुम दोनों को **अन्ये** = अन्य **मा** = नहीं **नि यमन्** = नियमन करे।

यत् = क्योंकि **देवयन्तः** = देवत्व-गामियों ने **वाम्** = तुम दोनों को **पूर्व्या** = पहले **सम्** = सम्यक्, भलीभाँति **नाभिः** = नाभि, केन्द्र-स्थान **ददे** = दिया है॥ 05 ॥

भावार्थ :- हम चाहते हैं कि पृथ्वी का श्रेष्ठ देवत्व हमें प्राप्त हो, पूरी तरह प्राप्त हो। सुन्दर भावना है, उत्तम लक्ष्य है। इसके लिए साधन है, प्रकाशयुक्त आचरण। यदि हमारा आचरण दुर्गुणों-दुर्व्यसनों के अन्धकार से पूर्ण होगा तो यह सम्भव नहीं है। व्यापक दृष्टि वाले युगल का नियमन-नियन्त्रण कोई कर नहीं सकता है। उन्हें सद्गुणों के कारण पहले ही नाभि स्थान अर्थात् केन्द्रीय स्थान दिया जा चुका है। एक बार समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेने पर फिर उस व्यक्ति या युगल के सत्प्रयासों को रोकना सम्भव नहीं होता है। इससे पूर्व कोई व्यक्ति यदि श्रेष्ठ कार्य करना चाहता है तो उसे उपेक्षा, विरोध तथा बाधाओं का सामना करना पड़ता है। परन्तु समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान बन जाने पर विरोधी उसके कार्य में बाधक नहीं बन पाते हैं॥ 05 ॥

पदार्थ :- आ = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **यातम्** = प्राप्त, गत, गया हुआ (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। **दिवो** = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। **अच्छा** = अच्छा, श्रेष्ठ, सुन्दर, स्वच्छ (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। **पृथिव्या** = पृथ्वी योग्य, पृथिवी द्वारा (पृथ्, प्रथ् - विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **हिरण्ययेन** = हिरण्य द्वारा, प्रकाशमान, शब्दकर्ता द्वारा (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना)। **सुवृता** = सुव्रती, उत्तम व्रत वाले (सु - अच्छा, उत्तम

(उपसर्ग), वृत् - रहना, होना, वरण करना, चमकना, बोलना, सेवा करना, वर्ताव करना, व्यवहार करना, हिंसा करना, वृ - नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)। **रथेन** = रथ द्वारा (रम - रमना, प्रिय होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। **मा** = नहीं, मत (अव्यय)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)। **अन्ये** = अन्य, कोई और, इतर (सर्वनाम)। **नि** = निश्चित, निरन्तर (अव्यय)। **यमन्** = यमन करने वाला, यमन करता हुआ (यम - आवरण करना, अपने अधीन रखना, पोषण करना, नियमन करना, प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना, नाश करना, अन्त करना)। **देवयन्तः** = देव-गामी, देवों का उद्धार करते हुए (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना, यन् - उद्धार करना, या - जाना, जानना, प्राप्त होना, पहुँचना)। **सम्** = सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग)। **यत्** = जिसे, जो (सर्वनाम)। **ददे** = दिया, दान किया (दा, दद्, दत् - दान करना, देना, त्याग करना, सौंपना, लौटाना, रखना)। **नाभिः** = नाभि (नभ - नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, हिंसा करना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। **पूर्व्या** = पहले, पूर्व (पूर्व - पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)॥ **05**॥

105. नू नो रयिम् पुरुवीरम् बृहन्तम्,
दस्रा मिमाथाम् उभयेषु अस्मे।
नरो यत् वाम् अश्विना स्तोमम् आवन्,
सधस्तुतिम् आजमीढासो अग्मन्॥ 06॥

काव्यानुवाद

तुम रयि, पुरुवीर बढ़ाते हो, दोनों में दीप्ति जगाते हो।
अश्विना तुम्हें हे स्तुति-रक्षक, पा गये साथ ही स्तुति कर नर॥06॥

संहितापाठ

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीढासो अग्मन्॥06॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - अश्विना, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- दस्रा = पालन करने वाले **नू** = शीघ्र **नो** = हमारे लिए **बृहन्तम्** = बृहत् **रयिम्** = ज्ञान, **पुरुवीरम्** = पुरुवीर, अग्रणी वीर को **अस्मे** = हम **उभयेषु** = दोनों में **मिमाथाम्** = मान करो, माप दो (प्रदान करो)। **अश्विना** = हे अश्विन् युगल! तीव्र गति युक्त! व्यापक! **यत्** = क्योंकि **आजमीढासो** = प्रगतिशील विद्वान् **नरो** = नर **वाम्** = तुम दोनों की **स्तोमम्** = स्तुति, स्तोम का **आवन्** = रक्षण-पालन करते हुए **सधस्तुतिम्** = साथ स्तुति को **अग्मन्** = प्राप्त हुए॥ **06**॥

भावार्थ :- हमें जीवन में गतिशीलता चाहिए तथा ऐसे वीर चाहिए जो बड़े उद्यमशील हों, वेद के अध्येता हों, तथा अग्रगामी हों। इतने गुण होंगे तो वह वीर दर्शनीय होगा ही। ऐसे अश्वियों अर्थात् व्यापक-समष्टि दृष्टि वाले युगल की स्तुति जो करता है, समाज उसकी भी स्तुति करता है। महान् लोगों के अनुयायी भी महान् तथा आदरणीय बन जाते हैं॥ **06**॥

पदार्थ :- नू = ही, भी, शीघ्र (निपात, अव्यय)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **रयिम्** = विद्या, ज्ञान को (रय्-रि, री - चलना, जाना, जानना, पाना, री-रै - शब्द करना)। **पुरुवीरम्** = पुरुवीर को, अग्रणी वीर को, अग्रगामी पराक्रमी को (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। **बृहन्तम्** = बड़ा, बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **दस्रा** = नष्ट करने वाले, पालन करने वाले (दस् - रक्षण, पालन, स्थापन करना, देखना, नष्ट होना, नष्ट करना, डसना)।

मिमाथाम् = प्रक्षेपण, स्थापन, रक्षा, मान करो (मा - सम्मान करना, पूजना, ज्ञान की इच्छा करना, शब्द करना, मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, समानता दर्शाना)। **उभयेषु** = दोनों में, पूर्णताओं में (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। **अस्मे** = हमारा, हममें, हमारे लिए (सर्वनाम)। **नरो** = नर (नृ - नम्र होना, विनय होना, कोमल होना, मृदु होना, चलना, ले जाना)। **यत्** = जिसे, जो (सर्वनाम), क्योंकि (अव्यय)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)। **अश्विना** = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक (अश् - व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **स्तोमम्** = स्तोम, स्तुति को (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **आवन्** = रक्षा-पालन करते हुए (अव् - रक्षा करना, पालन करना, प्रिय होना, जानना, प्रभु होना)। **सधस्तुतिम्** = सध-स्तुति, साथ स्तुति करने वाले को (सध - साथ (अव्यय), स्तु - प्रशंसा करना, स्तुति करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा करना, भजन करना)। **आजमीढासो** = प्रगतिशील विद्वान्, प्रगतिशील सिञ्चन-प्रोक्षण करने वाले (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, आगम, अज् - जानना, जाना, पहुँचना, स्थापित करना, फेंकना, आ-अज - आना, मिह् - सिञ्चन करना, प्रोक्षण करना, गीला करना)। **अग्मन्** = गये (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, गम् - जाना) **॥ 06 ॥**

106. इह इह यत् वाम् समना पपृक्षे,
सा इयम् अस्मे सुमतिः वाजरत्ना।
उरुष्यतम् जरितारम् युवम् ह,
श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ 07 ॥

काव्यानुवाद

जो तुम्हें यहाँ मन से मिलते, वे सुमति ज्ञान-रत्नों वाले।

द्रुतगामी, विजयी, तुमको ही, नासत्य कामना आश्रय लें ॥ 07 ॥

संहितापाठ

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ 07 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - अश्विना, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- नासत्या = हे नासत्य युगल, असत्यहीन युगल, शब्द कर्ता **इह इह** = यहाँ यहाँ **यत्** = जो **वाम्** = तुम दोनों को **समना** = समान मन वाले, मन सहित, मन से **पपृक्षे** = मिले, **सा** = वह, **इयम्** = यह **अस्मे** = हमारे लिए **सुमतिः** = सुमति, सुबुद्धि, **वाजरत्ना** = वाज-रत्न, ज्ञान-रत्न वाले (हैं)। **युवम्** = तुम **ह** = ही **जरितारम्** = जरितृ, जीर्ण, वृद्ध, परिपक्व, **उरुष्यतम्** = प्रगतिशील, व्यापक, **युवद्रिक्** = तुम दोनों की ओर देखने वाले **श्रितः** = सेवित, परिपक्व, आश्रित **कामो** = कामना, इच्छा (हो) **॥ 07 ॥**

भावार्थ :- व्यापक समष्टि दृष्टि वाले युगल से जो भी मन से जुड़ गया, वही वास्तव में सुमति वाला है, उसी के पास ज्ञान रूपी रत्न हैं। जिसके पास व्यापक और समष्टि दृष्टिकोण नहीं है, जो व्यक्तिवादी स्वार्थी दृष्टि से विचार करता है, उसके पास सुमति और ज्ञान हो ही नहीं सकता है। ज्ञान-रत्न वाले युगल विजयी होंगे, प्रगतिशील होंगे। उनकी ओर देखने वाले की कामना असत्य-हीन अर्थात् सत्य होगी, पूर्ण होगी **॥ 07 ॥**

पदार्थ :- इह इह = यहाँ (सर्वनाम)। **यत्** = जिसे, जो (सर्वनाम)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)। **समना** = समान मन वाले (स - सहित, साथ, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **पपृक्षे** = मिला, सम्बन्धित हुआ (पृक् - मिलना, सम्बन्धित होना)। **सा** = वह, उसने (सर्वनाम)। **इयम्** = यह, इसको (सर्वनाम)। **अस्मे** = हमारा, हममें, हमारे लिए (सर्वनाम)। **सुमतिः** = सुमति, सुबुद्धि (सु -

उत्तम, अच्छा, मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)। **वाजरत्ना** = वाज-रत्न, ज्ञान-रत्न (वाज् - गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, रम् - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना)। **उरुष्यतम्** = गमनीय, गतिशील, गति, व्यापकता, विस्तार योग्य को (उरु - बहुत, अधिक (सर्वनाम), उर् - विस्तार करना, जाना, चलना, निरन्तर चलना)। **जरितारम्** = जरितृ, जीर्ण, वृद्ध या परिपक्व को (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना)। **युवम्** = तुमको (सर्वनाम)। **ह** = ही, निश्चय ही (अव्यय)। **श्रितः** = सेवित, परिपक्व, आश्रित (श्री - सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना)। **कामो** = कामना, इच्छा (कम् - चाहना, इच्छा करना)। **नासत्या** = असत्य से हीन युगल, नासत्य युगल, श्वास-प्रश्वास, शब्द करने वाले (न - नहीं, अ - नहीं, सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, नास - श्वास लेना, शब्द करना, ध्वनि करना, श्वास-ध्वनि करना)। **युवद्रिक्** = तुम दोनों की ओर देखने वाला (युव - तुम दोनों (सर्वनाम), यु - मिलाना, अलग करना, बाँधना, गूँथना, यु - पृथक् पृथक् करना, दृक्-दृक्ष् - देखना)॥ 07॥

107. मधुमतीः ओषधीः द्यावः आपो,
मधुमत् नो भवतु अन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिः मधुमान् नो अस्तु,
अरिष्यन्तो अनु एनम् चरेम॥ 08॥

काव्यानुवाद

मधुमती ओषधी द्यौ व्यापक, मधुमान हमें हो अन्तरिक्ष।
मधुमान क्षेत्र का अधिपति हो, आचरण अहिंसक हो अपना॥ 08॥

संहितापाठ

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम॥ 08॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - क्षेत्रपति, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- नो = हमारे लिए **ओषधीः** = ओषधी, **द्यावः** = द्यावा, अग्रगामी, प्रकाशमय, **आपो** = आप, व्याप्त, व्यापक, **मधुमतीः** = मधुयुक्त, **नो** = हमारे लिए **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्ष, अन्तर्दृष्टि, **मधुमत्** = मधुयुक्त **भवतु** = हो, हो जाये। **नो** = हमारे लिए **क्षेत्रस्य** = क्षेत्र का **पतिः** = ऐश्वर्यवान्, स्वामी **मधुमान्** = मधुरता युक्त **अस्तु** = हो। **अरिष्यन्तो** = अहिंसा करते हुए, हिंसा न करते हुए **एनम्** = इसके **अनु** = अनुकूल **चरेम** = आचरण करें॥ 08॥

भावार्थ :- अथर्ववेद का समापन सर्वत्र मधुरता की कामना के साथ किया जा रहा है। अहिंसक भावना के साथ हम भी मधुर आचरण करें, यह सङ्कल्प है॥ 08॥

पदार्थ :- मधुमतीः = मधुयुक्त (मध्-मद् - मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना, आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। **ओषधीः** = ओषधी (उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। **द्यावः** = अग्रगामी, प्रकाशमय, द्यावा (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **आपो** = आप, व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। **मधुमत्** = मधुयुक्त (मध्-मद् - मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना, आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **भवतु** = हो, हो जाये (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्ष, अन्तर्दृष्टि (अन्तः - मध्य, बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त्

- बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **क्षेत्रस्य** = क्षेत्र का (क्षि - जाना, चलना, जानना, पाना निवास करना, रहना, क्षय होना)। **पतिः** = ऐश्वर्यवान्, स्वामी (पत् - जाना, नीचे जाना, उड़ना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **मधुमान्** = मधुरता युक्त (मध्-मद् - मधुर होना, मीठा होना, मध्य होना, आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **अस्तु** = हो (अस् - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। **अरिष्यन्तो** = अहिंसा करते हुए, हिंसा न करते हुए (अ - नहीं, रिष्- हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, मारने का यत्न करना)। **अनु** = पश्चात्, पीछे, अनुकूल (उपसर्ग)। **एनम्** = इसको, इसे (सर्वनाम)। **चरेम** = आचरण करें (चर - जाना, खाना, आचरण करना)॥ 08 ॥

108. पनाय्यम् तत् अश्विना कृतम् वाम्,
वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्त्रम् शंसाः उत ये गविष्टौ,
सर्वान् इत् तान् उप याता पिबध्यै॥ 09 ॥

काव्यानुवाद

अश्विना, तुम्हारी स्तुति की, पृथ्वी के दिव्य वृषभ राजस्।
बहु शंसित जो वाणी-प्रवीण, सब पान हेतु आते समीप॥ 09 ॥

संहितापाठ

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्त्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् ताँ उप याता पिबध्यै॥ 09 ॥

(ऋषि - अथर्वा, देवता - अश्विना, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- अश्विना = हे अश्विन् युगल, तीव्र गति युक्त, व्यापक **वृषभो** = पराक्रमी, **दिवो** = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय, **रजसः**

= लोक, रजस् **पृथिव्याः** = पृथ्वी वालों ने **वाम्** = तुम दोनों के लिए **तत्** = वह **पनाय्यम्** = प्रशंसा, स्तुति **कृतम्** = किया। **गविष्टौ** = हे गविष्ट युगल, वाणी, ज्ञान, इच्छा युक्त युगल **ये** = जो **सहस्त्रम्** = सहस्र, हजारों **शंसाः** = स्तुतियाँ (हैं), **तान्** = उन **सर्वान्** = सभी को **इत्** = ही **पिबध्यै** = पीने के लिए **उत** = ही **उप** = समीप **याता** = प्राप्त हो॥ 09 ॥

भावार्थ :- वैदिक स्तुति करने से हम शक्तिशाली बनते हैं, दिव्यता प्राप्त करते हैं तथा पृथ्वी के अनुरागी हो जाते हैं। दिव्य गुणों से युक्त तथा शक्तिशाली होकर हम पृथ्वी के वातावरण तथा संसार के सामाजिक वातावरण का संरक्षण-पोषण करते हैं। वेद में सहस्त्रों स्तुतियाँ हैं, ऋचाएँ हैं। हमें उन सभी का स्वाध्याय तथा चिन्तन-मनन करना चाहिए। सभी के लिए उत्तम तो यही है कि सम्पूर्ण चारो वेदों का स्वाध्याय जीवन में एक बार तो कर ही लें॥ 09 ॥

पदार्थ :- पनाय्यम् = प्रशंसा, स्तुति (पन - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **तत्** = वह, उस को (सर्वनाम)। **अश्विना** = अश्विन, तीव्र गति युक्त, व्यापक (अश् - व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **कृतम्** = कृतित्व, किया हुआ (कृ - करना)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)। **वृषभो** = पराक्रमी (वृष - गर्भवती होना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना, वृष - बरसना, सींचना, प्रोक्षण करना, मार डालना, पीड़ा करना, दुःख देना, पीड़ित करना)। **दिवो** = दिव, स्तुतिकर्ता, तेजस्वी, ज्योतिर्मय (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। **रजसः** = लोक का, रजस् का (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। **पृथिव्याः** = पृथ्वी योग्य, पृथिवी के (पृथ्, प्रथ् - विस्तार

करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना)। **सहस्रम्** = सहस्र को, बहुतों को (सहस्र - हजार)। **शंसाः** = स्तुतियाँ, प्रशंसाएँ (शंस् - इच्छा करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना)। **उत** = ही, भी, ओर (अव्यय, निपात)। **ये** = जो (सर्वनाम)। **गविष्टौ** = गविष्ट युगल, वाणी, ज्ञान, इच्छा युक्त युगल (गु - शब्द करना, मनन करना)। **सर्वान्** = सभी को (सर्वनाम)। **इत्** = ही (अव्यय)। **तान्** = उनको (सर्वनाम)। **उप** = समीप (उपसर्ग)। **याता** = प्राप्त करो (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। **पिबध्यै** = पीने के लिए (पा-पिब् - पीना, पान करना, प्राशन करना, संरक्षण करना)॥ 09 ॥

सविता सूक्त

(यजुर्वेद, अध्याय 1, सूक्त 1)

109. इषे त्वा ऊर्जे त्वा वायवः स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु। श्रेष्ठतमाय कर्मणे आ प्यायध्वम्, अघ्न्याः इन्द्राय भागम्॥1 ॥

काव्यानुवाद

गति तुमको दे, बल-प्राण तुम्हें, रचना में सुस्थित देव तुम्हें।
सविता तुमको दें श्रेष्ठ कर्म, प्रभु इन्द्र हेतु दें भाग तुम्हें॥ 01 ॥

संहितापाठ

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागम्॥ 01 ॥

(ऋषि - परमेष्ठी प्रजापति। देवता - सविता। छन्द - पंक्ति। स्वर - पंचम)

मन्त्रार्थ : (वायवः) रचनाशील **(स्थ)** स्थित **(देवो)** देव **(सविता)** सविता, सृष्टिकर्ता, ऐश्वर्यवान् (परमात्मा) **(त्वा)** तुमको **(इषे)** ज्ञान, प्रगति, इच्छा, निरन्तर दर्शन के लिए **(ऊर्जे)** ऊर्जा, बल **(त्वा)** तुमको

(वः) तुमको **(प्रार्पयतु)** अर्पण करे, प्राप्त करायें। **(श्रेष्ठतमाय)** श्रेष्ठतम **(कर्मणे)** कर्म के लिए, **(इन्द्राय)** इन्द्र के लिए, परम ऐश्वर्यशाली के लिए **(अघ्न्याः)** अहिंसक, अहिंसनीय **(भागम्)** भाग, सेवा, दान **(आप्यायध्वम्)** प्राप्त करायें॥ 01 ॥

भावार्थ : यजुर्वेद को कर्म प्रधान माना गया है। प्रथम मन्त्र में ही परमात्मा से श्रेष्ठतम कर्मशीलता, रचनाशीलता प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गयी है। इसके लिए आवश्यक गति, बल, प्राणशक्ति देने के लिए कहा गया है। श्रेष्ठतम कर्म तथा परम ऐश्वर्य के लिए सेवा, दान आदि की भी आवश्यकता है तथा यह भी महत्वपूर्ण है कि ये सभी संसाधन अहिंसक हों अर्थात् किसी व्यक्ति को कष्ट पहुँचाकर प्राप्त न किये जायें। सबके सुख में ही अपना सुख निहित है॥ 01 ॥

पदार्थ : इषे = प्रगति, इच्छा, निरन्तर दर्शन के लिए (इष् = गति करना, इच्छा करना, निरन्तर देखना)। **त्वा** = तुम्हें (सर्वनाम)। **ऊर्जे** = ऊर्जा के लिए (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना)। **त्वा** = तुम्हें (सर्वनाम)। **वायवः** = गतिशील, रचनाशील (वे - वुनना। वा - गति करना) **स्थ** = स्थित (स्था- स्थित होना)। **देवो** = देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **वः** = तुम्हें (सर्वनाम)। **सविता** = सृष्टिकर्ता, ऐश्वर्यवान् (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। **प्रार्पयतु** = बहुत अधिक अर्पण करें (प्र + अर्पयतु, प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग)। अर्प् = अर्पण करना)। **श्रेष्ठतमाय** = श्रेष्ठतम के लिए (श्रि - सेवा करना)। **कर्मणे** = कर्म के लिए (कृ - करना)। **आ प्यायध्वम्** = वृद्धि करें, बढ़ें (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, आगम, प्याय् - बड़ा होना, बढ़ना)। **अघ्न्याः** = अहिंसक (अ - नहीं, घ्न्, हन् = हिंसा करना)। **इन्द्राय** = परम ऐश्वर्य के लिए (इदि-इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **भागम्** = सेवा, दान (भज् = सेवा करना, दान करना)॥ 01 ॥

110. प्रजावतीः अनमीवाः अयक्ष्माः,
मा वः स्तेन ईशत मा अघशंसो।
ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः,
यजमानस्य पशून् पाहि ॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

हों प्रजावती आरोग्यमती, अय-क्ष्मा रहें, गतिशील रहें,
शासक हों पापी चोर नहीं, रक्षित यजमान सुशील रहें ॥ 02 ॥

संहितापाठ

प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशत माघशंसो ध्रुवाऽस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥ 02 ॥

(ऋषि - परमेष्ठी प्रजापति। देवता - सविता। छन्द - पंक्ति। स्वर - पंचम)

मन्त्रार्थ : (**प्रजावतीः**) सन्तान वाली (नारियाँ) (**अनमीवा**) निरोगी, (**अयक्ष्मा**) गतिशील (हों)। (**वः**) तुमको (**मा**) नही (**स्तेन**) चोर, (**मा**) नही (**अघशंसो**) पापी - अपराधी (**ईशत**) शासन करें। (**अस्मिन्**) इस (में) (**गोपतौ**) सुरक्षा में (**ध्रुवा**) स्थिर (**यजमानस्य**) यजमान के (**पशून्**) पशुओं को, सम्यक् दृष्टि को, सम्बन्ध को (**बह्वीः**) बहुत (**पाहि**) पालन, रक्षा करो **॥ 01 ॥**

भावार्थ : प्रजावती शब्द स्त्रीलिंग है, अतः स्पष्ट है कि निरोगी तथा गतिशीलता की कामना विशेष रूप से नारियों के लिए की गयी है। नारियों का स्वास्थ्य अच्छा हो, उनमें गतिशीलता हो, उनको घर तक सीमित न रखा जाए। चोर, पापी-अपराधी शासन नहीं करें। परमात्मा से प्रार्थना है कि सुरक्षा स्थायी हो, सुनिश्चित हो। इस प्रकार सद्भाव रखने वाले यजमान तथा उनके मार्गदर्शकों-शुभचिन्तकों की रक्षा परमात्मा करे **॥ 01 ॥**

विशेष :- यजमान का शाब्दिक अर्थ है यजन करता हुआ। यज् धातु

का अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण, दान करना। अतः यजमान का अर्थ हुआ देवपूजा, संगतिकरण तथा दान करने वाला। ऐसे सज्जनों की रक्षा के लिए परमात्मा से प्रार्थना की गयी है। प्रयास हमें करना होगा तथा प्रार्थना से परमात्मा की सहायता मिलेगी। यजमानस्य पशून् पाहि का अर्थ है यजमान के पशुओं की रक्षा करो। पशु का सामान्य अर्थ घोड़े, गाय आदि मानना वेद की गरिमा-गम्भीरता के अनुकूल नहीं है। यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र इतने साधारण भाव का सन्देश नहीं देता। पश्यति इति पशुः अर्थात् जो देखता है, वह पशु है। नेत्रों वाले सभी जीवों में देखने की क्षमता है, अतः सामान्य अर्थ में वे पशु हैं। परन्तु वेद में पशु का अर्थ विशेष दृष्टि वाले विद्वान् साधक ही हो सकता है। मन्त्रदृष्टा विद्वानों को ऋषि कहते हैं - **ऋषियो मन्त्र दृष्टारः**। पश्यन्ते यस्मिन् इति पशुः इस प्रकार विग्रह करने पर अर्थ होगा, जिसमें देखते हैं। यजमान अर्थात् साधक उपासक जिसमें अपनी दृष्टि केन्द्रित करते हैं, अर्थात् परमात्मा। यहां पशु का ऐसा ही उदात्त अर्थ स्वीकार करना उचित है। श्लेष के रूप में पशु के अर्थ परमात्मा, उपासक तथा प्राणी या संसाधन माने जा सकते हैं। वेद मन्त्रों की त्रिविधि अर्थ प्रक्रिया में तीनों ही अर्थ उपयुक्त हैं। पश बन्धने धातु से भी पशु शब्द बनता है। बन्धनों की रक्षा करने का भाव है कि परमात्मा के साथ हमारे सम्बन्ध बने रहें। इस बन्धन की रक्षा करना तो आवश्यक है ही **॥ 02 ॥**

पदार्थ : प्रजावतीः = प्रजायुक्त, सन्तान वाली (प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग)। जन् = जन्म होना, जन्म देना, उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **अनमीवाः** = निरोगी (अन् = नहीं, अम् = रोगी होना)। **अय-क्ष्माः** = गतिशील हों (अय-क्ष्माः, इ-अय् = गति करना। क्षम् - सहना, समर्थ होना, क्षमा करना)। **मा** = नहीं (अव्यय)। **वः** = तुम्हें (सर्वनाम)। **स्तेनः** = चोर (स्तेन - चुराना, लूटना)। **ईशत** = ऐश्वर्य हो, अधिकार हो (ईश = ऐश्वर्य-अधिकार होना)। **मा** = नहीं (अव्यय)। **अघशंसो** = पापी, अपराधी (अघ् - पाप, अपराध करना, शंस् - इच्छा करना, प्रशंसा करना)। **ध्रुवा** =

स्थिर, अविचल, गतिशील (ध्रुव् = स्थिर होना, अविचल, गतिशील होना)। **अस्मिन्** = इसमें (सर्वनाम)। **गोपतौ** = सुरक्षा में (गुप् = रक्षा करना। पत् - ऐश्वर्य होना)। **स्यात** = हो (अस् = होना)। **बह्वीः** = बहुत (सर्वनाम)। **यजमानस्य** = यजमान का (यज् - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगतिकरण करना)। **पशून्** = पशुओं को, सम्यक् दृष्टि को, सम्बन्ध को (पश् = देखना, पश् - बन्धन होना)। **पाहि** = रक्षा करो (पा = पालन करना, रक्षा करना)**॥ 02 ॥**

111. वसोः पवित्रम् असि द्यौः असि,
पृथिवि असि मातरिश्वनो घर्मो असि।
विश्वधा असि परमेण धाम्ना दृंहस्व,
मा ह्वाः मा ते यज्ञपतिः ह्वार्षीत्॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

तुम हो पवित्रकर्ता वसु के, द्यौ हो पृथिवी हो देव तुम्हीं।
प्रभु भक्त उपासक मातरिश्व के, अभिसिंचक हो ज्योति तुम्हीं॥
हे परमपिता, हे परमात्मन्, तुम सकल विश्व धारणकर्ता।
प्रभु, परम धाम से करो सुदृढ़, हो नहीं कुटिलता देव कहीं॥ 02 ॥

संहितापाठ

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि परमेण धाम्ना दृँहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।।02॥

(ऋषि - परमेष्ठी प्रजापति, देवता - यज्ञ, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ : **(वसोः)** वसु अर्थात् वासस्थान **(पवित्रम्)** पवित्र करने वाले **(असि)** हो, **(द्यौः)** अग्रगामी, दीप्त **(असि)** हो, **(पृथिवि)** पृथ्वी, **(मातरिश्वनो)** मातरिश्वा का, माता में प्रगति, वृद्धि का **(घर्मो)** अभिसिञ्चन तथा प्रकाश करने वाले **(असि)** हो, **(विश्वधा)** विश्व को धारण करने वाले

(असि) हो। **(परमेण धाम्ना)** परमधाम से **(दृंहस्व)** दृढ़ करो, वृद्धि करो, **(मा)** मत, नहीं **(ह्वाः)** कुटिलता करो, **(ते)** तुम्हारा **(यज्ञपतिः)** यज्ञपति, यजन का स्वामी, रक्षक **(मा)** मत, नहीं **(ह्वार्षीत्)** कुटिलता करे**॥ 02 ॥**

भावार्थ : परमात्मा के पवित्रकर्ता, अग्रगामी, प्रेरणा, प्राणदाता आदि गुणों का वर्णन करते हुए कुटिलता से बचाने की प्रार्थना की गयी है। जिन गुणों का वर्णन किया गया है, हमें उन गुणों को स्वयम् धारण करना है तथा कुटिलता से बचना है, तभी तो परमधाम से दृढता तथा वृद्धि की कामना पूर्ण होगी। परमात्मा के परम धाम से वह प्रेरणा तथा प्रकाश हमें प्राप्त होगा जिससे हम वृद्धि कर सकेंगे**॥ 02 ॥**

विशेष :- मातरिश्वनो का अर्थ वायु तथा लक्षणा से प्राणों को माना गया है। इस प्रकार इसका व्यापक अर्थ प्राणियों से लिया जा सकता है। मातरि श्वसति इति मातरिश्वन् व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ हुआ माता में श्वास लेने वाला अर्थात् माता के आश्रय में जीवन पाने वाला। वेद में इसका भावार्थ उत्पन्न करने वाले परमात्मा में ही जीवन को सार्थक करने वाला उपासक लेना उपयुक्त है**॥ 02 ॥**

पदार्थ : वसोः = वसु, वासस्थान का (वस - वसना)। **पवित्रम्** = पवित्र (पू - पवित्र करना)। **असि** = हो (अस् - होना)। **द्यौ** = अग्रगामी (द्यु = आगे जाना)। **पृथिवि** = पृथ्वी पर (पृथ् - फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, विस्तार होना)। **मातरिश्वनो** = मातरिश्वा का, माता में प्रगति, वृद्धि करने वाले का (मा - मान करना, श्वि - चलना, वृद्धि करना। श्वस् - श्वास लेना, जीते रहना)। **घर्मो** = अभिसिंचित तथा प्रकाशित करने वाले (घृ = सींचना, प्रकाशित होना)। **विश्वधा** = सबको, विश्व को धारण करने वाला (विश्व - सब कुछ, सभी, धा - धारण करना)। **परमेण** = परम द्वारा (सर्वनाम)। **धाम्ना** = धाम द्वारा (धा - धारण करना आदि)। **दृंहस्व** = दृढ़ करो, वृद्धि करो (दृंह = दृढ़ करना, वृद्धि करना)। **मा** = नहीं (अव्यय)।

ह्वाः = वक्र हो, कुटिल हो (ह्वृ = वक्र होना)। **मा** = नहीं (अव्यय)। **ते** = तुम्हारा (सर्वनाम)। **यज्ञपतिः** = यज्ञपति, यजन का स्वामी, रक्षक (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **ह्वार्षीत्** = वक्र हो (ह्वृ = वक्र होना)॥ 2 ॥

(2) सूक्त 2

112. वसोः पवित्रम् असि शत-धारम्,
वसोः पवित्रम् असि सहस्र-धारम्।
देवः त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण,
शत-धारेण सुप्वा कामधुक्षः॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

वसु के शतधारक हो पवित्र, पावन सहस्रधारक वसु के।
वह देव करे सविता पवित्र, वसु के शतधारों से तुमको।
सुन्दर पवित्र इच्छाओं को, जीवन दें, ज्योतिर्मय कर दें॥ 03 ॥

संहितापाठ

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥ 03 ॥

(ऋषि-परमेष्ठी प्रजापति, देवता-सविता, छन्द- जगती, स्वर-निषाद)

मन्त्रार्थ : (**वसोः**) वसु का, वासस्थान का (**पवित्रम्**) पवित्र करने वाले (**शतधारम्**) सैकड़ों धाराओं वाले (**असि**) हो, (**वसोः**) वसु का, वासस्थान का (**पवित्रम्**) पवित्र करने वाले (**सहस्रधारम्**) सहस्रों धाराओं वाले (**असि**) हो। (**वसोः**) वसु का, वासस्थान का (**सुप्वा**) अच्छी तरह पवित्र करने वाले, (**कामधुक्षः**) कामनाओं को जीवन देने वाले, प्रकाशित करने वाले (**सविता**) उत्पन्न करने वाले (**देवः**) देव (परमात्मा) (**शतधारेण**)

सैकड़ों धाराओं से (**त्वा**) तुम्हें (**पुनातु**) पवित्र करें॥ 03 ॥

भावार्थ : परमात्मा सैकड़ों - सहस्रों धाराओं से हमारे वसु अर्थात् वासस्थान को पवित्र करने वाला है। सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाला वह देव परमात्मा वासस्थान को सैकड़ों धाराओं से पवित्र करता है तथा अच्छी पवित्र कामनाओं-इच्छाओं को जीवन देता है, प्रकाशित करता है अर्थात् उन्हें सफल बनाता है, पूर्ण करता है॥ 03 ॥

पदार्थ : वसोः = वसु का, वासस्थान का (वस् - निवास करना)। **पवित्रम्** = पवित्र (पू - पवित्र करना)। **असि** = हो (अस् - होना)। **शत-धारम्** = सैकड़ों धाराओं वाला (शत = सौ, धाः- धारा होना, धार बाँधना)। **सहस्रधारम्** = हजारों धाराओं वाला (सहस्र = हजार, धृ-धाः- धारण करना, धारा होना, धार बाँधना)। **देवः** = देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। **त्वा** = तुम्हें (सर्वनाम)। **सविता** = उत्पन्नकर्ता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। **पुनातु** = पवित्र करो (पू - पवित्र करना)। **पवित्रेण** = पवित्रता से (पू - पवित्र करना)। **शतधारेण** = सैकड़ों धाराओं वाले से। **सुप्वा** = उत्तम पवित्र (सु = अच्छा, पू = पवित्र करना)। **कामधुक्षः** = कामनाओं को जीवन देने वाला, प्रकाशित करने वाला (काम = कामनाएँ, धुक्ष = दीप्त करना, जीवन होना)॥ 03 ॥

113. सा विश्वायुः, सा विश्वकर्मा, सा विश्वधायाः।
इन्द्रस्य त्वा भागम् सोमेन, आ तनच्मि, विष्णो हव्यम् रक्ष॥4 ॥

काव्यानुवाद

सबका जीवन, वह विश्वकर्म, वह सकल विश्व धारणकर्ता।
मैं भाग इन्द्र का दिव्य सोम से, करता हूँ विस्तार पिता।
हे विष्णु! सर्व व्यापक ईश्वर, प्रभु! करो हव्य की तुम रक्षा॥ 04 ॥

संहितापाठ

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः। इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेना तनच्मि विष्णो हव्यꣳरक्ष॥ 04॥

(ऋषि- परमेष्ठी प्रजापति, देवता- विष्णु, छन्द- अनुष्टुप्, स्वर- गान्धार)

मन्त्रार्थ : सा वह (वेद वाणी) **विश्वायुः** सम्पूर्ण आयु वाली, सबको मिलाने वाली, अलग करने वाली **सा** वह **विश्वकर्मा** सम्पूर्ण कर्म करने वाली, **सा** वह **विश्वधायाः** सम्पूर्ण धारण करने वाली (है)। **त्वा** तुम **इन्द्रस्य** इन्द्र के, परम ऐश्वर्यवान् के **भागम्** भाग को **सोमेन** सोम द्वारा, सौम्यता, ऐश्वर्य-सृजन द्वारा **आ** = सम्यक्, सम्पूर्ण **तनच्मि** शब्द करता हूँ, विस्तार करता हूँ। **विष्णो** हे विष्णु, सर्वव्यापी **हव्यम्** हव्य, देय, दान की **रक्ष** रक्षा करो॥ **04**॥

भावार्थ : 'सा' शब्द स्त्रीलिंग है तथा विष्णु शब्द पुल्लिंग है। वेद में इस प्रकार का लिंग-भेद बहुत महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है। संस्कृत में लिंग शब्दों में माना जाता है, उसके अर्थ में नहीं। एक ही अर्थ के विविध शब्द अलग लिंग में हो सकते हैं। परन्तु सर्वनाम शब्दों में लिंग-भेद स्वीकार्य है। कहा गया है कि श्रद्धापूर्वक सबके उपकार के लिए वेदवाणी का विस्तार करता हूँ। क्रिया तनच्मि का अर्थ विस्तार, श्रद्धा, उपकार के साथ शब्द करना भी है। इससे 'सा' शब्द वेदवाणी के लिए मानना उपयुक्त है। हव्यम् का अर्थ दानयोग्य, देय, आदान-प्रदान योग्य वस्तु, विचार, ज्ञान आदि है। हु धातु का अर्थ दान करना तथा आदान-प्रदान करना है॥ **04**॥

पदार्थ : सा = वह (सर्वनाम)। **विश्वायुः** = सम्पूर्ण आयु (विश्व + आयुः, विश्व = सब, आयुः = आयु, जीवन। आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, अय - जाना, जानना, पाना, गति करना, आय - शब्द करना, शासन करना, यु - मिलना, अलग करना)। **विश्वकर्मा** = सम्पूर्ण कर्म करने वाला (विश्व = सब, कृ - करना)। **विश्वधाया** = सम्पूर्ण धारण करने वाली (विश्व

- सब, धा - धारण करना)। **इन्द्रस्य** = इन्द्र के, परम ऐश्वर्यवान् के (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **त्वा** = तुम्हें (सर्वनाम)। **भागम्** = भाग (भज - अंश या भाग होना)। **सोमेन** = सोम द्वारा, सौम्यता द्वारा, ऐश्वर्य-सृजन द्वारा (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **आ** = सम्यक्, समन्तात् (उपसर्ग)। **तनच्मि** = शब्द, विस्तार करता हूँ (तन् - शब्द करना, विस्तार करना)। **विष्णो** = विष्णु, व्यापक (विष्ण् = सींचना, व्याप्त होना)। **हव्यम्** = हव्य, देय, दान को (हु - आदान-प्रदान करना)। **रक्ष** = रक्षा करो (रक्ष - रक्षण-पालन करना)॥ **04**॥

114. अग्ने व्रतपते व्रतम् चरिष्यामि,
तत् शकेयम् तत् मे राध्यताम्।
इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि॥ 05॥

काव्यानुवाद

व्रतपते! अग्नि! करता हूँ व्रत, कर सकूँ उसे, कर पूर्ण मुझे।
यह मैं तजकर सब अनृत देव, प्रभु! निकट सत्य के जाता हूँ॥

संहितापाठ

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ 05॥

(ऋषि - परमेष्ठी प्रजापति, देवता-अग्नि, छन्द-अनुष्टुप्, स्वर- गान्धार)

मन्त्रार्थ : व्रतपते हे व्रतपते! **अग्ने** हे अग्नि! **व्रतम्** व्रत को **चरिष्यामि** आचरण करूँगा। **तत्** वह **शकेयम्** कर सकूँ, **मे** मेरा **तत्** वह (व्रत) **राध्यताम्** पूर्ण करो। **इदम्** यह **अहम्** मैं **अनृतात्** अनृत से **सत्यम्** सत्य को **उपैमि** निकट जाता हूँ॥ **05**॥

भावार्थ : अग्नि स्वरूप परमात्मा को व्रतपति अर्थात् व्रत का रक्षक स्वामी सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि मैं व्रत करूँगा। प्रार्थना है कि

मैं ऐसा कर सकूँ, उसे पूर्ण करो। व्रत का अर्थ है वरण किया हुआ संकल्प। वह व्रत यही है कि अनृत से सत्य के समीप जाऊँ। अनृत (अन् + ऋत) का अर्थ है जो ऋत नहीं है। ऋत कहते हैं व्यापक सार्वभौम प्राकृतिक नियमों को। अर्थात् प्राकृतिक नियमों के विपरीत चलने का प्रयास न करें तथा सत्य का आचरण करें। यही वैदिक व्रत है **॥ 05 ॥**

पदार्थ : अग्ने = हे अग्नि (अग् - गति करना, घूमना, जाना)। **व्रतपते** = व्रत के रक्षक, स्वामी (वृ = वरण करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **व्रतम्** = व्रत को (वृ = वरण करना)। **चरिष्यामि** = चलूँगा, आचरण करूँगा (चर् = चलना, विचरना, आचरण करना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **शकेयम्** = कर सकूँ (शक् - सक्षम होना, कर सकना)। **मे** = मेरा (सर्वनाम)। **राध्यताम्** = पूर्ण करो (रध् = पूर्ण करना)। **इदम्** = यह (सर्वनाम)। **अहम्** = मैं (सर्वनाम)। **अनृतात्** = अनृत से (ऋ- जाना, फैलाना)। **सत्यम्** = सत्य को (सत् = सत्य होना)। **उपैमि** = जाता हूँ (उप - निकट (उपसर्ग)। इ - जाना) **॥ 05 ॥**

115. कः त्वा युनक्ति, सः त्वा युनक्ति।
कस्मै त्वा युनक्ति, तस्मै त्वा युनक्ति।
कर्मणे वाम्, वेषाय वाम् ॥ 06 ॥

काव्यानुवाद

करता है कौन नियुक्त तुम्हें, वह करता है तुमको नियुक्त।
किस हेतु तुम्हें करता नियुक्त, उस हेतु तुम्हें करता नियुक्त।
वह कर्म हेतु तुमको सिंचन, व्यापक में करता है नियुक्त ॥ 06 ॥

संहितापाठ

करस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ 06 ॥

(ऋषि - परमेष्ठी प्रजापति, देवता - प्रजापति, छन्द-अनुष्टुप्, स्वर- गान्धार)

मन्त्रार्थ : कः कौन **त्वा** तुमको **युनक्ति** नियुक्त करता है? **सः** वह **त्वा** तुमको **युनक्ति** नियुक्त करता है। **कस्मै** किसलिए **त्वा** तुमको **युनक्ति** नियुक्त करता है? **तस्मै** उसके लिए **त्वा** तुमको **युनक्ति** नियुक्त करता है। **कर्मणे** कर्म के लिए, **वाम्** तुम दोनों को **वेषाय** अनुपयोगी को अलग करने के लिए, सींचने के लिए, व्यापक के लिए **वाम्** तुम दोनों को (नियुक्त करता है) **॥ 06 ॥**

भावार्थ : वह परमात्मा तथा उसके उपासक विद्वान् ऋषि हमें प्रेरणा देते हैं कि हम जीवन में कर्मशील रहें, अनुपयोगी को छोड़ने में तत्पर रहें, उपयोगी को सींचते रहें, व्यापक दृष्टि रखें एवम् सर्वव्यापी परमात्मा की उपासना करते रहें **॥ 06 ॥**

पदार्थ : कः = कौन (सर्वनाम)। **त्वा** = तुमको (सर्वनाम)। **युनक्ति** = नियुक्त करता है (युङ्क् - मिलाप करना, एकत्र करना, जुड़ना)। **सः** = वह (सर्वनाम)। **त्वा** = तुमको (सर्वनाम)। **कस्मै** = किसलिए (सर्वनाम)। **तस्मै** = उसके लिए (सर्वनाम)। **कर्मणे** = कर्म के लिए (कृ - करना)। **वाम्** = तुम दोनों को (सर्वनाम)। **वेषाय** = अनुपयोगी होने पर अलग करने के लिए, सींचने के लिए (विष् - विलग करना, प्रयोग न होने से निकाल देना, विष - सींचना, व्यापना) **॥ 06 ॥**

116. प्रति उष्टम् रक्षः, प्रति उष्टा अरातयो।
निष्टप्तम् रक्षो, निष्टप्ता अरातयः।
उरु अन्तरिक्षम् अनु एमि ॥ 07 ॥

काव्यानुवाद

जल रहे अदानी रक्षक भी, निरतप्त अदानी, रक्षक भी।
प्रभु उनकी रक्षा करें आप, मैं प्राप्त करूँ उरु अन्तरिक्ष ॥ 07 ॥

संहितापाठ

प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टाअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ 07 ॥

(ऋषि - परमेष्ठी प्रजापति, देवता - यज्ञ, छन्द - बृहती, स्वर- मध्यम)

मन्त्रार्थ : रक्षः रक्षा करने वाले **प्रति उष्टम्** प्रति-दहनशील (हैं) **अरातयो** अदानी (दान न करने वाले) **प्रति उष्टा** प्रति-दहनशील (हैं)। **रक्षः** रक्षा करने वाले **निष्टप्तम्** निरन्तर सन्तापयुक्त (हैं)। **अरातयः** अदानी लोग **निष्टप्ता** निरन्तर सन्तापयुक्त (हैं)। **उरु** विस्तृत **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **अनु एमि** (मैं) अनुगमन करता हूँ, प्राप्त होता हूँ॥ 07 ॥

भावार्थ : अपनी सम्पत्ति की रक्षा करने में ही केन्द्रित रहने वाले रक्षा की चिन्ता में ही सन्ताप सहते हैं। दान न करने वाले लोग भी उसी स्तर के हैं। वे भी तनाव, ईर्ष्या आदि दुःखों से पीड़ित रहते हैं। उनको सत्संग से विवेक जागृत कर इस पीड़ा से बचाना चाहिए। हमारी दृष्टि अन्तरिक्ष की भाँति व्यापक होनी चाहिए। हम ऐसे अदानी लोगों से भी द्वेष न करें, उन्हें सत्य मार्ग पर लाने का प्रयास करें॥ 07 ॥

पदार्थ : प्रति उष्टम् = प्रति-दहनशील (प्रति - प्रतिकार में, सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, उष् - दहन, हिंसा करना)। **रक्षः** = रक्षा करने वाला, रक्षक, बचाने वाला (रक्ष् - रक्षा करना, बचाना)। **प्रति उष्टा** = प्रति-दहनशील (प्रति = सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में, उष् = दहन, हिंसा करना)। **अरातयो** = अदानी (अ - नहीं, रा = देना)। **निष्टप्तम्** = दहनशील (नि - निश्चित, निरन्तर, तप् - सन्ताप, दहन ऐश्वर्य होना)। **रक्षो** = बचाने वाला (रक्ष् - रक्षा करना, बचाना)। **निष्टप्ता** = सन्ताप युक्त, दहनशीलं, ऐश्वर्ययुक्त (नि - निश्चित, निरन्तर, तप् = सन्ताप, दहन ऐश्वर्य होना)। **अरातयः** = अदानी (अ - नहीं, रा = देना)। **उरु** = बहुत (अव्यय, सर्वनाम)। **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्ष को (अन्तः - बीच में, इक्ष् -

स्वाद लेना, ईक्ष् -देखना)। **अन्वेमि** = अनुगमन करता हूँ, प्राप्त होता हूँ (अनु - पश्चात्, उपसर्ग, इ = जाना, जानना, पाना)॥ 07 ॥

व्रतदीक्षा सूक्त

(यजुर्वेद, अध्याय 5, मन्त्र 40-43)

117. अग्ने व्रतपाः ते व्रतपा,
या तव तनूः मयि अभूत्, एषा सा त्वयि,
यो मम तनूः त्वयि अभूत्, इयम् सा मयि॥
यथायथम् नौ व्रतपते व्रतानि,
अनु मे दीक्षाम् दीक्षापतिः,
अमंस्त अनु तपः तपस्पतिः॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

अग्ने! व्रतपा! तव व्रतपा तनु, जो मुझमें था, वह तुममें है।
जो तनु मेरा तुममें था प्रभु! वह मुझमें है, जो तुममे है।
व्रतपति! हम व्रत पालन करते, दीक्षापति ने ज्यों दीक्षा दी,
तप-पालक ने तप दिया हमें॥ 01 ॥

संहितापाठ

अग्ने व्रतपास्ते व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि। यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः॥ 01 ॥

(ऋषि- आगस्त्य, देवता - अग्नि, छन्द- धृति, स्वर - ऋषभ)

मन्त्रार्थ :- व्रतपा हे व्रतों के पालक **अग्ने** अग्नि! **ते** तुम्हारे लिए **मयि** मुझमें **या** जो **तव** तुम्हारा **व्रतपाः** व्रत-पालक **तनूः** विस्तार **अभूत्** हुआ, **सा** वह **एषा** यह **त्वयि** तुम में (है)। **यो** जो **मम** मेरा **तनूः** विस्तार **त्वयि** तुझमें

अभूत् हुआ था, **सा** वह **इयम्** यह **मयि** मुझमें (है)। **व्रतपते** हे व्रतों के पति! **दीक्षापतिः** दीक्षापति **यथायथम्** यथावत्, यथोचित **नौ** हम दोनो के लिए **व्रतानि** व्रतों को **अनु दीक्षाम्** दीक्षा को, **तपस्पतिः** तपस्पति, तप के पालक-रक्षक **तपः** तप का **अनु-अमंस्त** प्रगति, शब्द, सेवा करें **॥ 01 ॥**

भावार्थ :- परमात्मा के व्रत का पालन करें, उसकी उपासना का क्रम बनायें, उसके अनुकूल आचरण करें। इस भाव तथा कर्म को भी उसे ही समर्पित कर दें। कहा गया है कि तुमसे ही यह मुझे मिला था और तुमको ही समर्पित है। उसके बाद उसका फल दीक्षा तथा तप भी उसकी कृपा से प्राप्त हो जायेगा **॥ 01 ॥**

पदार्थ :- अग्ने = हे अग्नि! (अग् - ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना)। **व्रतपाः** = व्रतों के पालक (वृ - वरण करना, पा - रक्षा करना, पालन करना)। **ते** = तुम्हारा, तुम्हारी, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **या** = जो (सर्वनाम)। **तव** = तुम्हारा (सर्वनाम)। **मयि** = मुझमें (सर्वनाम)। **एषा** = यह (सर्वनाम)। **सा** = वह (सर्वनाम)। **यो** = जो (सर्वनाम)। **मम** = मेरा (सर्वनाम)। **तनूः** = विस्तार (तन् - विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना)। **त्वयि** = तुम में (सर्वनाम)। **अभूत्** = हुआ था (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भू - होना)। **इयम्** = यह (सर्वनाम)। **यथायथम्** = यथावत्, यथोचित, जैसा-जैसा (अव्यय)। **नौ** = हम दोनों (सर्वनाम)। **व्रतपते** = हे व्रतपति (वृ = वरण करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **व्रतानि** = व्रतों को (वृ = वरण करना)। **अनु** = पश्चात्, पीछे (उपसर्ग)। **मे** = मेरे लिए, मेरा, हमारा (सर्वनाम)। **दीक्षाम्** = दीक्षा को (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना, आदेश देना, नियम-व्रत करना)। **दीक्षापतिः** = दीक्षापति (दीक्ष - दीक्षा देना, उपदेश देना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, उड़ना, नीचे गति करना)। **अमंस्त** = प्रगति, शब्द, सेवा करें (अम् = गति, शब्द, सेवा करना)। **अनु** = पश्चात्, पीछे (उपसर्ग)। **तपः** = तप (तप् = तप करना)। **तपस्पतिः** = तपपति (तप् = तप्त होना, तप करना, ऐश्वर्य होना,

पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना) **॥ 01 ॥**

118. उरु विष्णो विक्रमस्व, उरु क्षयाय नः कृधिः ॥
घृतम् घृतयोने पिब, प्र प्र यज्ञपतिम् तिर ॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

हे विष्णु! करो विस्तृत विक्रम, विस्तृत निवास जनहेतु करो।
घृतयोनि! पान कर लो घृत को, कर पार यजनपति को स्वामी।।2 ॥

संहितापाठ

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥ 02 ॥

(ऋषि - आगस्त्य, देवता - विष्णु, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- विष्णो हे विष्णु, सर्वव्यापक, **उरु** विस्तृत **विक्रमस्व** पराक्रम करो। **नः** हमारे लिए **उरु** विस्तृत **क्षयाय** निवास के लिए **कृधि** (कृपा) करो। **घृतयोने** हे घृतयोनि, **घृतम्** घृत को, प्रकाश को **पिब** पान करो, पियो। **यज्ञपतिम्** यजनपति को **प्र प्र** प्रकृष्ट, प्रभूत **तिर** तार दो, पार उतारो **॥ 02 ॥**

भावार्थ :- विष्णु का अर्थ व्यापक परमात्मा है, उससे भी यही सीखना है कि वह भी पराक्रमी है, आलसी नहीं। हमारे निवास के लिए सुन्दर संसार की रचना उसने की है। अपना निवास बनाने के लिए हमें भी पराक्रम, प्रयास करना होगा। इसके बाद ही हम घृत अर्थात् प्रकाश को पा सकते हैं। ऐसे परिश्रमी, पराक्रमी उपासक को परमात्मा पार उतारता है। घृत का शाब्दिक अर्थ है प्रकाशित, अभिसिंचित। परमात्मा और उपासक दोनो ही घृतयोनि अर्थात् घृत-प्रकाश स्वरूप हैं। परमात्मा तो स्वयम् प्रकाशरूप है ही, उपासक भी उससे प्रकाशित है **॥ 02 ॥**

पदार्थ : उरु = विस्तृत (अव्यय)। **विष्णो** = हे विष्णु (विष्ण् =

व्यापक होना)। **विक्रमस्व** = पराक्रम करो, रक्षा करो (वि - विशेष, क्रम = निर्भयता से जाना, वृद्धि करना, रक्षा करना, बचाना)। **क्षयाय** = निवास के लिए (क्षि - जाना, चलना, निवास करना, रहना)। **नः** = हमको, हमारे लिए (सर्वनाम)। **कृधि** = करो (कृ = करना)। **घृतम्** = घृत को, प्रकाश को (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। **घृतयोने** = हे घृतयोनि, प्रकाश युक्त (घृ - सींचना, प्रकाशित होना)। **पिब** = पान करो, पी लो (पिब्-पा - पीना, प्राशन करना)। **प्र** = अधिक (उपसर्ग)। **यज्ञपतिम्** = यजनपति को (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, पत् - ऐश्वर्य होना, श्रीमान् होना, शक्तिमान होना)। **तिर** = पार करो (तृ - तैरना, पार जाना, पार करना)॥ **02**॥

119. अति अन्यान् अगाम्, न अन्यान् उप अगाम्,
अर्वाक् त्वा परेभ्यः, अविदम् परो अवरेभ्यः॥
तम् त्वा जुषामहे देव, वनस्पते देव-यज्यायै,
देवाः त्वा, देव-यज्यायै, जुषन्ताम् विष्णवे त्वा॥
ओषधे त्रायस्व स्वधिते, मा एनम् हिंसीः॥ 03॥

काव्यानुवाद

हम छोड़ अन्य को आये हैं, अन्यों के निकट नहीं जाते।
अर्वाक् अन्य से तुम स्वामी, जाना प्रभु! परे अवर से हो॥
हे देव वनस्पति! तुमको हम, चाहते देव के यजन हेतु।
चाहें सब देव तुम्हें स्वामी, प्रभु! व्यापक देव यजन कारण॥
ओषधे! त्राण करना सबका, स्वधिते! इसकी हिंसा न करो॥ 03॥

संहितापाठ

अत्यन्याँ2ऽअगां नान्याँ2ऽउपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः। तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिंसीः॥ 03॥

(ऋषि- आगस्त्य, देवता- अग्नि, छन्द- धृति, स्वर - ऋषभ)

मन्त्रार्थ :- अन्यान् अन्य को **अति** अतिक्रम कर **अगाम्** गया, प्राप्त किया, **अन्यान्** अन्यों के **उप** समीप **न** नहीं **अगाम्** गया हूँ। **त्वा** तुमको **परेभ्यः** दूसरों से **अर्वाक्** पहले, **अवरेभ्यः** अश्रेष्ठों से **परो** परे **अविदम्** जान लिया है, पा लिया है। **देव** हे देव! **वनस्पते** हे वनस्पति!, **देवयज्यायै** देवयजन के लिए **तम्** उस **त्वा** तुमको **जुषामहे** विचार करते हैं, सेवा करते हैं, सेवन करते हैं। **देवाः** देवगण **देव-यज्यायै** देव-यजन के लिए **विष्णवे** विष्णु के लिए, व्यापक के लिए **त्वा** तुम्हें **जुषन्ताम्** विचार करें, सेवा करें, सेवन करें। **स्वधिते** हे स्वधिति! **ओषधे** हे ओषधि!, **त्रायस्व** रक्षा करो, **एनम्** इसकी **मा** नहीं **हिंसीः** हिंसा करो॥ **03**॥

भावार्थ :- हमारे लक्ष्य उच्च हैं। किसी के आसपास पहुँचना भर पर्याप्त नहीं है, अन्यों का अतिक्रम कर सबसे आगे जाना है। सांसारिक सुखों में नहीं, देवत्व को जानने में, अपनाने में सबसे आगे रहने का प्रयास करें। छल-कपट से सुख-साधन तथा सम्पत्ति जुटा लेने की जोड़-तोड़ में आगे रहने का निर्देश नहीं है। स्पष्ट किया गया है कि देवयजन के लिए सेवा करनी है, वनस्पति तथा ओषधि की रक्षा करनी है, किसी की हिंसा नहीं करनी है॥ **03**॥

पदार्थ : अति = अतिक्रम कर, अधिक (उपसर्ग, अव्यय)। **अन्यान्** = अन्य को (सर्वनाम)। **अगाम्** = गया (गम् - जाना)। **उप** = समीप (उपसर्ग)। **न** = नहीं (अव्यय)। **अर्वाक्** = पहले (अव्यय)। **त्वा** = तुमको, तुम्हें, तुम्हारे (सर्वनाम)। **परेभ्यः** = परायों के लिए, अन्यों से (सर्वनाम)। **अविदम्** = जान लिया, पा लिया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, विद्-विन्द - पाना, समझना, जानना, वास करना)। **परो** = पराया, परे (अव्यय)। **अवरेभ्यः** = अवरों से, अश्रेष्ठों से (अ - नहीं, वर - इच्छा करना, आशा

करना)। **तम्** = उसको (सर्वनाम)। **जुषामहे** = विचार करते हैं, सेवा करते हैं (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **देव** = हे देव, तेजस्वी (देव्, दिव् - तेजस्वी होना, चमकना)। **वनस्पते** = हे वनस्पति (वन - शब्द करना, सेवा करना, चाकरी करना, पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना)। **देव-यज्ञायै** = देवयजन के लिए (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, यज - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **देवाः** = विद्वान्, तेजस्वी (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। **जुषन्ताम्** = विचार करें, सेवा करें (जुष् = विचार करना, सेवा करना)। **विष्णवे** = विष्णु के लिए (विष्ण् = व्याप्त होना)। **ओषधे** = ओषधे (उषध् = चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। **त्रायस्व** = रक्षा करो (त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। **स्वधिते** = हे स्वधित (स्व = अपना, धा = धारण, पोषण, रक्षण करना)। **मा** = नहीं (अव्यय)। **एनम्** = इसको (सर्वनाम)। **हिंसीः** = हिंसा करो (हिंस् = हिंसा करना, मारना) **॥ 03 ॥**

120. द्याम् मा लेखीः, अन्तरिक्षम् मा हिंसीः,
पृथिव्या सम्भव।
अयम् हि त्वा स्वधितिः तेतिजानः,
प्रणिनाय महते सौभगाय।
अतः त्वम् देव वनस्पते, शतवल्शो विरोह,
सहस्रवल्शा वि वयम् रुहेम ॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

द्यौ में मत लेख करो स्वामी, मत अन्तरिक्ष की हिंसा कर।
सब कुछ सम्भव पृथ्वी पर ही।
यह तेतिजान स्वधितिः तुमको, पा गये महा सौभाग्य हेतु।
इसलिए वनस्पति देव! आप, शत-शत वल्शों से बढ़े चलो।

हम बढ़ें सहस्रों वल्शों से ॥ 04 ॥

संहितापाठ

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या संभव अयꣳहि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥ 04 ॥

(ऋषि - आगस्त्य, देवता - यज्ञ, छन्द - अत्यष्टि, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- द्याम् द्युलोक में **मा** मत **लेखीः** लिखो। **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **मा** मत **हिंसीः** हिंसा करो, मारो। **पृथिव्या** पृथ्वी पर (ही कार्य करना) **सम्भव** सम्भव है। **अयम्** यह **हि** ही **स्वधितिः** स्वधिति, स्वयम् धारण करने वाला **तेतिजानः** तीक्ष्ण **महते** महान् **सौभगाय** सौभाग्य के लिए **प्रणिनाय** ले जाता है। **देव** हे देव! **वनस्पते** वनपालक!, **अतः** अतः **त्वम्** तुम **शतवल्शो** सौ आच्छादनों युक्त **विरोह** विशेष आरोहण करो। **सहस्रवल्शा** सहस्र आच्छादनों युक्त **वयम्** हम लोग **रुहेम** आरोहण करें, बढ़ें **॥ 04 ॥**

भावार्थ :- अव्यावहारिक कल्पनाओं से कोई कार्य नहीं हो सकता है, जैसे द्युलोक या चमकते सूर्य आदि नक्षत्रों पर कुछ लिखने का प्रयास व्यर्थ है। आकाश की हिंसा करना भी सम्भव नहीं है। जो कुछ करना सम्भव है, वह इस पृथ्वी पर ही हो सकता है। ठोस धरातल पर प्रयास करके ही सफलता मिल सकती है। स्व-धिति का अर्थ है स्वयम् धारण करना। भलीभाँति अध्ययन कर विद्या को स्वयम् धारण करें तथा उसका प्रकाश अन्यों तक भी विस्तारित करें। तेतिजान का अर्थ है तीक्ष्ण। अध्ययन से प्राप्त तीक्ष्ण बुद्धि से सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं **॥ 04 ॥**

पदार्थ : द्याम् = द्युलोक में (द्यु - अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना)। **मा** = नहीं, मुझको (अव्यय, सर्वनाम)। **लेखीः** = लिखो (लिख - लिखना)। **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्ष को (अन्तः - बीच में, इक्ष् - स्वाद लेना, ईक्ष् -देखना)। **मा** = नहीं, मुझको (अव्यय,

सर्वनाम)। **हिंसीः** = हिंसा करो (हिंस् = हिंसा करना, मारना)। **पृथिव्या** = पृथ्वी पर (पृथृ - व्याप्त होना, विस्तार होना)। **सम्भव** = सम्यक् हो, सम्भव हो (सम् = सम्यक्, भलीभांति, भू = होना)। **अयम्** = यह (सर्वनाम)। **हि** = ही (अव्यय)। **त्वा** = तुमको, तुम्हें, तुम्हारे (सर्वनाम)। **स्वधितिः** = स्वधिति (स्व - अपना, धि-धा - धारण, पोषण, रक्षण करना)। **तेतिजानः** = तेतिजान, तीक्ष्ण (तिज्, तेज् - चमकना, चमकाना, पैना करना)। **प्रणिनाय** = ले जाता है (नी - पहुँचाना, प्राप्त होना, मिलना, ले जाना)। **महते** = महान् के लिए, महत् के लिए (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **सौभगाय** = सौभाग्य के लिए (सु = उत्तम भज् =सेवा करना, दान करना, सिद्ध करना)। **अतः** = इससे, इसलिए (अव्यय)। **त्वम्** = तुम (सर्वनाम)। **देव** = तेजस्वी, देव (देव्, दिव् - तेजस्वी होना, चमकना)। **वनस्पते** = वनपालक (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, पत् - ऐश्वर्य होना, जाना, जानना)। **शत-वल्शो** = सौ आच्छादनों युक्त (शत - सौ, वल - आच्छादित करना, ढकना, घेरना, जाना)। **विरोह** = विशेष रोहण करो (वि - विशेष, विना, विलोम, रुह - बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना)। **सहस्त्रवल्शा** = हजार आच्छादनों युक्त (सहस्त्र - हजार, वल - आच्छादित करना, ढकना, घेरना, जाना)। **वि** = विशेष (उपसर्ग)। **वयम्** = हम लोग (सर्वनाम)। **रुहेम** = बढ़ें (रुह - बीज से उत्पन्न होना, प्रकट होना, जन्म होना, जन्म लेना)**॥ 04 ॥**

सूची सूक्त

(यजुर्वेद, अध्याय 23, मन्त्र 33-38)

121. गायत्री त्रिष्टुप् जगती, अनुष्टुप् पङ्क्त्या सह।
बृहती उष्णिहा ककुप्, सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती भी, सब छन्द अनुष्टुप्, पंक्ति सहित।
बृहती, उष्णिक् भी ककुप् सभी, सूची से तुमको शान्त करें॥ 01 ॥

संहितापाठ

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह। बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥ 01 ॥

(ऋषि - प्रजापति, देवता - विद्वांसो, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ : गायत्री = गायत्री, गान, स्तुति, **त्रिष्टुप्** = त्रिष्टुप्, स्तुति, **जगती** = जगती, प्रगति, **अनुष्टुप्** = अनुष्टुप्, स्तुति, **पङ्क्त्या** = पंक्ति, **सह** = के साथ **बृहती** = बृहती, **उष्णिहा** = उष्णिहा, उष्णिक्, **ककुप्** = ककुप्, **सूचीभिः** = सूचियों द्वारा, सूचनाओं द्वारा, **त्वा** = तुमको **शम्यन्तु** = शान्ति करे, शमन करें, कल्याण करें**॥ 01 ॥**

भावार्थ : गायत्री आदि छन्द सूचियों द्वारा तुमको शान्ति प्रदान करें, कल्याण करें, शमन करें। वेद-मन्त्र गायत्री आदि छन्दों में हैं। इन छन्दों में जो सूचियाँ है, अर्थात् जो सूचनाएं हैं, उनसे हमें शान्ति प्राप्त होती है, हमारे दोषों, दुर्गुणों, विकारों, कष्टों का शमन होता है तथा हमारा कल्याण होता है**॥ 01 ॥**

पदार्थ : गायत्री = गायत्री, गान, स्तुति (गा = स्तुति करना, गाना, गायन करना, जाना, गमन करना, जानना)। **त्रिष्टुप्** = त्रिष्टुप्, स्तुति (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, त्रि - तीन, (संख्या), स्तु - स्तुति करना)। **जगती** = जगती, संसार, गतिशील (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। **अनुष्टुप्** = अनुस्तुप, अनुस्तुति (अनु = पश्चात्, पीछे, स्तु - स्तुति करना)। **पङ्क्त्या** = पंक्ति द्वारा, विस्तार द्वारा (पञ्च् = व्यक्त करना, प्रसिद्ध करना, विस्तार करना, फैलाना)। **सह** = साथ (अव्यय)। **बृहती** = बड़ा, बृहत् (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना,

बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **उष्णिहा** = उष्णिक्, उष्ण (उष् - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। **ककुप्** = ककुप्, गर्वित, चञ्चल, प्यासा (कक् - गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना)। **सूचीभिः** = सूचियों द्वारा, सूचनाओं द्वारा (सूच् - सूचना करना)। **शम्यन्तु** = शान्ति करे, शमन करें, कल्याण करें (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **त्वा** = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा (सर्वनाम) **॥ 01 ॥**

122. द्विपदा याः चतुष्पदाः,त्रिपदा याः च षट्पदाः।
विच्छन्दा याः च सच्छन्दाः, सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

जो द्विपद, चतुष्पद, त्रिपद छन्द, जो षट् पद छन्द रचे हैं, सब।
विच्छन्द सभी, सच्छन्द सभी, सूची से तुमको शान्त करें ॥ 02 ॥

संहितापाठ

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः। विच्छन्दाः याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ 02 ॥

(ऋषि - प्रजापति, देवता - प्रजा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ : द्विपदा - द्विपद वाले, **याः** - जो, **चतुष्पदाः** - चार पद वाले, **त्रिपदा** तीन पद वाले, **याः** - जो, **च** = और, **षट्पदाः** - छह पद वाले, **विच्छन्दा** = विच्छन्द, विशेष छन्द, **याः** - जो, **च** = और, **सच्छन्दाः** - सच्छन्द, (हैं), **सूचीभिः** = सूचियों द्वारा, सूचनाओं द्वारा, **त्वा** = तुमको **शम्यन्तु** = शान्ति करे, शमन करें, कल्याण करें **॥ 02 ॥**

भावार्थ :- द्विपद वाले, चार पद वाले, तीन पद वाले और छह पद वाले तथा विच्छन्द और सच्छन्द आदि सभी प्रकार के छन्द सूचियों द्वारा अर्थात् उन छन्दों में निहित सूचनाओं द्वारा कल्याण करे, शान्ति करे, शमन

करे। वेद-मन्त्रों में विविध प्रकार के छन्द प्रयोग हुए हैं तथा उनमें जीवन के लिए उपयोगी अनेक सूचनाएं अर्थात् ज्ञान निहित हैं। उनसे हमारा कल्याण होता है **॥ 02 ॥**

पदार्थ :- द्विपदा - द्विपद वाले (द्वि - दो (संख्या, सर्वनाम), पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना, भूषित होना)। **याः =** जो (सर्वनाम)। **चतुष्पदाः** - चार पद वाले (चतुः - चार (संख्या, सर्वनाम), पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना, भूषित होना)। **त्रिपदा** तीन पद वाले (त्रि - तीन, (संख्या, सर्वनाम), पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना, भूषित होना)। **याः** - जो (सर्वनाम)। **च** = और (अव्यय)। **षट्पदाः** - छह पद वाले (षट् - छह, (संख्या, सर्वनाम), पद - स्थानान्तर करना, चलना, जाना, भूषित होना)। **विच्छन्दा** - विच्छन्द, विशेष छन्द (वि - विशेष, छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना, ढकना)। **याः** - जो (सर्वनाम) **च** = और (अव्यय)। **सच्छन्दाः** = सच्छन्द (स - सहित, साथ, (उपसर्ग), छन्द् - बल-प्राण होना, आच्छादन करना), **सूचीभिः** = सूचियों द्वारा, सूचनाओं द्वारा (सूच् - सूचना करना)। **शम्यन्तु** = शान्ति करे, शमन करें, कल्याण करें (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **त्वा** = तुमको, तुम्हारा (सर्वनाम) **॥ 02 ॥**

123. महानाम्न्यो रेवत्यो, विश्वा आशाः प्रभूवरीः।
मैघीः विद्युतो वाचः, सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

महानाम्नी जो रेवती तथा, जो विश्वा आशा प्रभूवरी।
मैघी, विद्युत जो वाणी है, सूची से तुमको शान्त करें ॥ 03 ॥

संहितापाठ

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः।

मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥ 03॥

(ऋषि - प्रजापति, देवता - प्रजा, छन्द - उष्णिक्, स्वर - ऋषभ)

मन्त्रार्थ :- महानाम्न्यो = महानाम्नी, महान् नाम वाली **रेवत्यो** = रेवती, प्रगतिशील, वाणी, **विश्वा** = विश्व, सभी **आशाः** = आशायें **प्रभूवरीः** = प्रभू का वरण करने वाला, प्रकृष्ट होने वाला, अधिक होने वाला, **मैघीः** - सिञ्चन करने वाला, **विद्युतो** = विद्वान्, विशेष प्रकाशमान **वाचः** = वाणी, **सूचीभिः** = सूचियों द्वारा, सूचनाओं द्वारा, **त्वा** = तुमको **शम्यन्तु** = शान्ति करे, शमन करें, कल्याण करें॥ 03॥

भावार्थ :- हमारी प्रगति, वाणी तथा ज्ञान-विज्ञान महान् हो, सभी आशायें प्रभूत हो, पर्याप्त हों, सिञ्चन करने वाली हों, प्रकाशमय वाणी सूचनाओं से हमारा कल्याण करे॥ 03॥

पदार्थ : महामाम्नयो = महान् नाम वाले (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, नाम् - नाम होना, नाम रखना)। **रेवत्यो** = गतिशीलता, वाणी (रिव् - उड़ना, तैरना, बहना, री - गति करना, शब्द करना)। **विश्वा** - विश्व, सभी (सर्वनाम)। **आशाः** = आशायें (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, शास् - आशीर्वाद देना, बोध करना, शासन करना, भला चाहना, आशा करना)। **प्रभूवरीः** = अधिक होने वाला, प्रकृष्ट होने वाला (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, भू - होना)। **मैघीः** सिञ्चन करने वाले (मिह् - सिञ्चन करना, घर्षण करना, दबाना)। **विद्युतो** = विद्वान्, विशेष प्रकाशमान (वि - विशेष, विद् - जानना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **वाचः** = वाणी (वच् - बोलना, कहना, समझाना, जानना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **सूचीभिः** = सूचियों द्वारा, सूचनाओं द्वारा (सूच् - सूचना करना)। **शम्यन्तु** = कल्याण करे, शान्ति करे, शमन करे (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन

करना)। **त्वा** = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा (सर्वनाम)॥ 03॥

124. नार्यः ते पत्नयो लोम, वि चिन्वन्तु मनीषया।
देवानाम् पत्नयो दिशः, सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥ 04॥

काव्यानुवाद

नारियाँ तुम्हारी पत्नी वे, प्रतिभा से चेतन लोम करें।
देवों की पत्नी दिशा सभी, सूची से तुमको शान्त करें॥ 04॥

संहितापाठ

नार्य्यस्ते पत्नयो लोम विचिन्वन्तु मनीषया।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥ 04॥

(ऋषि - प्रजापति, देवता - स्त्रियः, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- लोम = हे लोम!, हे छिद्रयुक्त जन!, **ते** = तुम्हारी, **नार्यः** = नारियाँ **पत्नयो** = पत्नियाँ **मनीषया** = मनीषा द्वारा, विचारशीलता द्वारा, **वि** = विशेष, **चिन्वन्तु** = चुनें, एकत्र करें। **देवानाम्** = देवों की, **दिशः** = दिशा देने वाली **पत्नयो** = पत्नियाँ, **सूचीभिः** = सूचियों द्वारा, सूचनाओं द्वारा, **त्वा** = तुमको, **शम्यन्तु** = शान्ति प्रदान करें, शमन करें, कल्याण करें॥ 04॥

भावार्थ :- लू धातु का अर्थ छेदना, काटना है। लोम का अर्थ छिद्र है। लोम शब्द में कोई विभक्ति न होने से इसे सम्बोधन माना जाना चाहिए। अतः इस मन्त्र का अर्थ है कि हे लोम!, हे छिद्रयुक्त जन! तुम्हारी, पत्नियाँ मनीषा द्वारा, विचारशीलता द्वारा विशेष चयन करें। पूर्व विद्वानों ने लोम शब्द में विभक्ति का लोप मानकर अर्थ किया है कि नारियाँ, पत्नियाँ लोम का चयन करें। पत्नी से अपेक्षा है कि वह लोम अर्थात् हमारे छिद्र को मनीषा द्वारा चयन करे। इतनी सजग मनीषा अपेक्षित है। वेद में व्याकरण के नियम कठोर नहीं हैं, काव्य की आवश्यकता के अनुसार ऋषियों ने छूट

ले ली है। वेद की भाषा सहज सरल बोल-चाल की भाषा है, पण्डितों, व्याकरणाचार्यों के विद्वता-प्रदर्शन का माध्यम नहीं है। नृ धातु का अर्थ नम्र होना, विनय होना, कोमल होना, मृदु होना, चलना, ले जाना है। नारी में इन गुणों की अपेक्षा है। नर शब्द भी इसी धातु से बनता है, अतः उसमें भी इन गुणों की अपेक्षा होना स्वाभाविक है। पत्नी शब्द पत् धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है जाना, उड़ना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना। पत्नी से ये अपेक्षायें होनी चाहिए। स्वाभाविक है कि नर तथा नारी शब्द एक ही धातु से व्युत्पन्न हैं तथा पति तथा पत्नी शब्द भी एक ही धातु से व्युत्पन्न है तो दोनो के गुण-कर्म-स्वभाव तथा महत्व भी समान हैं। देवों अर्थात् दिव्य जनों की पत्नियाँ इतनी दिशा देने वाली होगीं तो उनकी सूचनाओं से हमारा कल्याण होगा ही **॥ 04 ॥**

पदार्थ : नार्यः = नारियाँ (नृ - नम्र होना, विनय होना, कोमल होना, मृदु होना, चलना, ले जाना)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **पत्नयो** = पत्नियाँ (पत् - जाना, नीचे जाना, उड़ना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **लोम** = लोम, छिद्र (लू - छेदना, काटना)। **वि** = विशेष, विना, विलोम (उपसर्ग)। **चिन्वन्तु** = चुनें, एकत्र करें (चि - चुनना, एकत्र करना)। **मनीषया** = मनीषा द्वारा, विचारशीलता द्वारा (मन् - जानना, समझना, मानना, विचार करना, स्वीकार करना, मान्य करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **देवानाम्** = देवों का (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। **पत्नयो** = पत्नियाँ (पत् - जाना, नीचे जाना, गिरना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **दिशः** = दिशायें, दिशाओं को (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना)। **सूचीभिः** = सूचियों द्वारा, सूचनाओं द्वारा (सूच् - सूचना करना)। **शम्यन्तु** = शान्ति करे, शमन करें, कल्याण

करें (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **त्वा** = तुमको, तुम्हें, तुम्हारा (सर्वनाम) **॥ 04 ॥**

125. रजता हरिणीः सीसा, युजो युज्यन्ते कर्मभिः। अश्वस्य वाजिनः त्वचि, सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ 05 ॥

काव्यानुवाद

रजता हरिणी सीसा संयुत्, कर्मों से योजित रहें सदा।
बलवान् तीव्र गति त्वचा पूर्ण, हो शान्त, सुशान्ति प्रदान करें ॥ 05 ॥

संहितापाठ

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ 05 ॥

(ऋषि - प्रजापति, देवता - स्त्रियः, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- रजता = रजत युक्त, रंजन करने वाले, रंगने वाले, **हरिणीः** = हरिण युक्त, हरण करने वाले, **सीसा** - सीसा, बन्धनकारी, **युजो** = युक्त करने वाले, **कर्मभिः** = कर्मों द्वारा, **युज्यन्ते** = युक्त करते हैं। **अश्वस्य** = अश्व का, तीव्र गति युक्त, व्यापक का, **वाजिनः** = बलशाली, वेगवान, तीव्र गति वाले, वाजयुक्त, विद्यायुक्त, गतियुक्त **त्वचि** = त्वचा में, आच्छादन में, **सिमाः** = सम्पूर्ण, **शम्यन्तीः** = शान्तिमय, शमनकारी, कल्याणकारी **शम्यन्तु** = शान्ति करे, शमन करें, कल्याण करें **॥ 05 ॥**

भावार्थ :- हमको सांसारिकता में रंगने वाले, हरण करने वाले, बन्धन में डालने वाले लोग हमें ऐसे कर्मों से युक्त करते हैं, जो कर्म हमें बाँधते हैं, जकड़ते हैं। ऐसे लोगों से, ऐसे कार्यों से हमको बचना है। अध्यात्म चेतना का आच्छादन हो, साधना-उपासना का आच्छादन हो तो व्यापक, बलशाली, कल्याणकारी शक्तियाँ सम्पूर्णतः हमारा कल्याण करती हैं,

शान्ति प्रदान करतीं हैं ।। 05 ।।

पदार्थ :- रजता = रजत युक्ता, रंजन करने वाले, रंगने वाले (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना)। **हरिणीः** = हरिण युक्त, हरण करने वाले (हृ - प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **सीसा** - बन्धनकारी (सि = बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना) **युजो** = युक्त करने वाले (युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना)। **युज्यन्ते** = युक्त करते हैं (युज - जुड़ना, मिलाप करना, एकत्र करना, चित्त स्थिर करना, मन को रोकना)। **कर्मभिः** = कर्मों द्वारा (कृ = करना)। **अश्वस्य** = अश्व का, तीव्र गति युक्त, व्यापक का (अश् - व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना, भोजन करना)। **वाजिनः** = बलशाली, वेगवान, तीव्र गति वाले (वाज् = गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना)। **त्वचि** = त्वचा में (त्वच - आच्छादित करना, लपेटना, ढांकना)। **सिमाः** = सम्पूर्ण (सर्वनाम)। **शम्यन्तु** = शान्ति करे, शमन करें, कल्याण करें (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना) **शम्यन्तीः** = कल्याणकारी, शान्तिमय, शमनकारी (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना) ।। 05 ।।

126. कुवित् अङ्ग यवमन्तो यवम् चित्,
यथा दान्ति अनुपूर्वम् वियूय।
इह इह एषाम् कृणुहि भोजनानि,
ये बर्हिषो नम उक्तिम् यजन्ति ।। 06 ।।

काव्यानुवाद

परिपूर्ण यथा यव क्षेत्र प्राप्त, सुविचारित धान्य ग्रहण करते।
भोजन करते हैं इसी भाँति, कहते हैं नमः, यजन करते ।। 06 ।।

संहितापाठ

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ।। 06 ।।

(ऋषि - प्रजापति, देवता - सभासद, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- यथा = जैसे **कुवित्** = कवि, शब्दज्ञ, शब्दज्ञानी, शब्द को जानने वाला, **अङ्ग** = अंग, विद्वान्, प्रगतिशील, पाने वाला **यवमन्तो** = यवयुक्त, मिलाने वाले, पृथक् करने वाले **यवम्** = यव को, समाप्ति, उपसंहार, मिलाने-अलग करने वाले को **चित्** = ही **अनुपूर्वम्** = अनुपूर्व को **वियूय** = विलग कर, **दान्ति** = देते हैं, दान करते हैं, **इह** = यहाँ **इह** = यहाँ **एषाम्** = इनका **भोजनानि** = भोजन **कृणुहि** = करो। **ये** = जो **बर्हिषो** = बृहत्, महान् **नम** = नमन **उक्तिम्** = उक्ति को, कथन को, **यजन्ति** = यजन करते हैं ।। 06 ।।

भावार्थ :- कवि, शब्दज्ञ, शब्दज्ञानी, शब्द को जानने वाला, विद्वान् जिस यव को देता है, उस यव का अर्थ मिलाने-अलग करने की क्षमता मानना उचित है। इस विवेक के साथ हम भोजन करते हैं। बर्हिष अर्थात् बृहत्, महान् जन सर्वहित में नमः उक्ति का यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान करते हैं। नमन का यजन महत्वपूर्ण है, तथा यजन में नमन का भाव महत्वपूर्ण है ।। 06 ।।

पदार्थ : कुवित् = कवि, शब्दज्ञ, शब्दज्ञानी, शब्द को जानने वाला (कु, कव् - शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)। **अङ्ग** = अंग, विद्वान्, गतिशील, पाने वाला (अंग् - अंग होना, अवयव होना, चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। **यवमन्तो** = यवयुक्त, समाप्ति,

उपसंहार, मिलाने-अलग करने, पृथक् करने वाले (यु - मिलाना, अलग करना, यव - समाप्त करना, उपसंहार करना)। **यवम्** = यव को, समाप्ति, उपसंहार, मिलाने-अलग करने वाले को (यु = मिलाना, अलग करना, यव = समाप्त करना, उपसंहार करना)। **चित्** = ही (अव्यय)। **यथा** = जिससे, जैसे, जिस प्रकार (अव्यय)। **दान्ति** = देते हैं, दान करते हैं (दा - देना, सौंपना)। **अनुपूर्वम्** = अनुपूर्व को (अनु - पीछे, पूर्व = पहले, (सर्वनाम)। **वियूय** = विलग कर (वि = विशेष, विना, विलोम, यु = मिलाना, अलग करना)। **इह** = इसमें, यहां, यह (सर्वनाम)। **इह** = इसमें, यहां, यह (सर्वनाम)। **एषाम्** = इनका (सर्वनाम)। **कृणुहि** = करो (कृ - करना)। **भोजनानि** = भोजन (भुज - संरक्षण करना, पालन करना, खाना, भक्षण करना)। **ये** = जो (सर्वनाम)। **बर्हिषो** = बढ़ा हुआ, महान् (बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **नम** = नमन (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **उक्तिम्** = उक्ति को, कथन को (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। **यजन्ति** = यजन करते हैं (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, संगति करना, दान करना)॥ **06**॥

सविता सूक्त

(यजुर्वेद, अध्याय 30, मन्त्र 1-5)

127. देव सवितः प्र सुव यज्ञम्, प्र सुव यज्ञपतिम् भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतम् नः पुनातु,
वाचस्पतिः वाचम् नः स्वदतु॥ 01॥

काव्यानुवाद

देव सविता यजन को जन, यजनपति भगहेतु प्रजनन।

केतपू गन्धर्व दिव्यः, करे पावन केत मेरा॥ 01॥

संहितापाठ

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ 01॥

(ऋषि - नारायण, देवता - सविता, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - देव - हे देव! दिव्यस्वरूप! **सवितः** - सवित!, ऐश्वर्य युक्त और उत्पन्न करने वाले! **भगाय** - भग के लिए, सेवा, दान के लिए **यज्ञम्** - यज्ञ को **प्र सुव** - उत्पन्न कीजिये, **यज्ञपतिम्** - यज्ञपति को **प्र सुव** - उत्पन्न कीजिये। **केतपूः** - गृह, संवाद को पवित्र करने वाला **दिव्यो** - दिव्य **गन्धर्वः** - गन्धर्व, प्रगतिशील, विद्वान् **नः** - हमारे **केतम्** - केत को निवास को, संवाद को **पुनातु** - पवित्र करे। **वाचस्पतिः** - वाणी के पोषक-रक्षक **नः** - हमारी **वाचम्** - वाणी को **स्वदतु** - रुचिकर हो, प्रसन्नता युक्त करे॥ **01**॥

भावार्थ - ऐश्वर्य युक्त, उत्पन्न करने वाले परमात्मा से प्रार्थना है कि सेवा, दान के लिए यज्ञ को उत्पन्न कीजिये, यज्ञपति को अर्थात् यजन के स्वामी, पालक-रक्षक को उत्पन्न कीजिये। हमारे गृह, संवाद को पवित्र करने वाला दिव्य गन्धर्व अर्थात् प्रगतिशील, विद्वान् हमारे केत अर्थात् निवास को, संवाद को पवित्र करे। वाणी के पोषक-रक्षक हमारी वाणी को रुचिकर, प्रसन्नता युक्त करे। प्रसुव का अर्थ है उत्पन्न करें, ऐश्वर्यवान् करें। कुछ विद्वानों ने प्रेरित करें, ऐसा भी अर्थ किया है। यजन तथा यजनपति को उत्पन्न करने का भाव व्यक्ति को इसके लिए प्रेरित करना मानना उचित तो हो सकता है, परन्तु वास्तविक अर्थ उत्पन्न करें, ऐश्वर्यवान् करें, ही है, ऐसा जानना चाहिए॥ **01**॥

पदार्थ - देव = देव, दिव्यस्वरूप (दिव् - तेजस्वी होना)। **सवितः** = सवित, ऐश्वर्य युक्त और उत्पन्न करने वाले (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य

होना)। **प्र** - प्रकृष्ट, अधिक (उपसर्ग)। **सुव** = उत्पन्न कीजिये (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **यज्ञम्** = यज्ञ को (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **प्र** - प्रकृष्ट, अधिक (उपसर्ग)। **सुव** = उत्पन्न कीजिये (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **यज्ञ-पतिम्** = यज्ञपति को (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **भगाय** = भग के लिए, सेवा, दान के लिए (भज् - सेवा करना, दान करना)। **दिव्यो** - दिव्य (दिव् - तेजस्वी होना)। **गन्धर्वः** = प्रगति, विद्या को धारण करने वाला (गम् + धृ, गम् - जाना, जानना, पाना, धृ - धारण करना)। **केतपूः** - गृह, ज्ञान को पवित्र करने वाला (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। **केतम्** - केत को (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। **नः** - हमारा (सर्वनाम)। **पुनातु** - पवित्र करें (पू - पवित्र करना), **वाचस्पतिः** - वाणी का रक्षक, पालक (वच् - बोलना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **वाचम्** - वाणी को (वच् - बोलना, कहना, समझाना)। **नः** - हमारा (सर्वनाम)। **स्वदतु** - रुचिकर हो, प्रसन्नता युक्त करे (स्वद् - स्वाद लेना, रुचिकर होना, तुष्ट होना, प्रसन्न होना)॥ 01॥

128. तत् सवितुः वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ 02॥

काव्यानुवाद

वह देव सविता वरण-योग्य सबका, उस देव का भर्ग धारें सदा ही।
जो बुद्धि को प्रेरणा दे हमारी॥ 02॥

संहितापाठ

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ 02॥

(ऋषि - नारायण, देवता - सविता, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ- तत् - वह **सवितुः** - सविता, उत्पन्न कर्ता, ऐश्वर्यवान् **देवस्य** - देव के **वरेण्यम्** वरण योग्य **भर्गो** - भर्ग को, प्रकाश को, भरण-पोषण को **धीमहि** - धारण करते हैं, **यो** जो **नः** हमारी **धियो** बुद्धि को **प्रचोदयात्** प्रकृष्ट प्रेरणा दे॥ 02॥

भावार्थ - हम उत्पन्न कर्ता, ऐश्वर्यवान् देव परमात्मा के वरण योग्य भर्ग अर्थात् प्रकाश, भरण, पोषण को धारण करते हैं। भर्गो अर्थात् भर्गः या भर्ग शब्द का अर्थ प्रकाश, भरण, पोषण होता है। भृज्-भर्ज धातु का अर्थ चमकना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना, भूजना, तलना, पकाना है। भृ धातु का अर्थ है भरण-पोषण करना। हम परमात्मा के दिव्य पोषण, प्रकाश को धारण करते हैं, अपनाते हैं तो वह हमारी बुद्धि को समुचित प्रेरणा प्रदान करता है॥ 02॥

पदार्थ- तत् - वह (सर्वनाम)। **सवितुः** - सविता, उत्पादक, ऐश्वर्यवान् (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **देवस्य** - देव का (दिव् - तेजस्वी होना)। **वरेण्यम्** - वरण योग्य (वृ - वरण करना)। **भर्गो** = भर्ग, प्रकाश, भरण-पोषण (भृज्-भर्ज = चमकना, प्रकाशित होना, भूँजना, तलना, पकाना। भृ = पूर्ण करना, भरना, भरण-पोषण करना, धारण करना)। **धीमहि** - धारण करते हैं, बुद्धिगत करते हैं, (धी - धारण करना, बुद्धि होना)। **यो** - जो (सर्वनाम)। **नः** - हमारी (सर्वनाम)। **धियो** - बुद्धि को (धी - धारण करना, बुद्धि होना)। **प्र** - प्रकृष्ट, अधिक (उपसर्ग)। **चोदयात्** - प्रेरणा दे (चुद् - प्रेरणा देना)॥ 02॥

129. विश्वानि देव सवितः, दुरितानि परा सुव। यत् भद्रम् तत् नः आ सुव॥ 03॥

काव्यानुवाद

देव सविता, सब दुरित को, कीजिए अब दूर।
जो भला कल्याणकारी, दीजिए भरपूर॥ 03॥

संहितापाठ

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव॥ 03॥

(ऋषि - नारायण, देवता - सविता, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ - देव - हे देव! **सवितः -** सवित, उत्पन्नकर्ता, ऐश्वर्यवान्! **विश्वानि -** सभी **दुरितानि -** दोषों को, दुःखों को, दुष्ट आचरण को **परा -** परे, दूर **सुव -** ले जाइये, भेज दीजिये। **यत् -** जो **भद्रम् -** सुख, शुभ, कल्याणकारी (है), **तत् -** वह **नः -** हमारे लिए **आ सुव -** लाइये, भेज दीजिये **॥ 03॥**

भावार्थ - इस मन्त्र में पहले दोषों-दुर्गुणों को दूर करने की भावना है, तत्पश्चात् कल्याणकारी गुणों को धारण करने की कामना है। यदि हम जीवन को कल्याणकारी, शुभ, श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं तो पहले दोषों का त्याग तथा भद्रभाव को ग्रहण करना चाहिए **॥ 03॥**

पदार्थ - देव - हे देव! (दिव् - तेजस्वी होना)। **सवितः -** उत्पन्नकर्ता, ऐश्वर्यवान् (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **विश्वानि -** विश्व, सभी (सर्वनाम)। **दुरितानि -** दोषों को, दुःखों को, दुष्ट आचरण को (दुः, दुष्, दुर् - दूषित होना, दुष्ट आचरण करना)। **परा -** परे, दूर (अव्यय)। **सुव -** ले जाइये, भेज दीजिये (सू - जाना, चलना, भेजना, उड़ाना)। **यत् -** जो (सर्वनाम)। **भद्रम् -** सुख, शुभ, कल्याणकारी (भदि-भन्द् - सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। **तत् -** वह (सर्वनाम)। **नः -** हमारे लिए (सर्वनाम)। **आ-सुव -** लाइये, भेज दीजिये (सू - जाना, चलना, भेजना, उड़ाना) **॥ 03॥**

130. विभक्तारम् हवामहे, वसोः चित्रस्य राधसः। सवितारम् नृचक्षसम् ॥ 04॥

काव्यानुवाद

प्रभु विभागकर्ता सदा, उसका कर आह्वान।
धन-वसु-चित्र प्रदान कर, सविता नर पर ध्यान॥ 04॥

संहितापाठ

विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम्॥ 04॥

(ऋषि - मेधातिथि, देवता - सविता, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ- चित्रस्य - चेतन करने वाले, चित्र स्वरूप, चित्र की भाँति प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट, आश्चर्यजनक, आश्चर्यस्वरूप का, **राधसः -** सिद्ध, निर्णय, वृद्धि का **वसोः -** वसु का, वासस्थान तथा वास करने वाले लोगों का **विभक्तारम् -** विभाग करने वाले, **नृचक्षसम् -** नरों को देखने वाले, **सवितारम् -** सविता को, ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाले को **हवामहे -** पुकारते हैं, आह्वान करते हैं **॥ 04॥**

भावार्थ - परमात्मा की कृपा से हम सभी तथा हमारे निवास स्थान चेतन-जीवन्त हैं, दिव्यचित्रस्वरूप हैं, कहना चाहें तो कह सकते हैं कि विचित्र अर्थात् आश्चर्यचकित करने वाले भी हैं। वह हमको यह सब कुछ तथा और भी बहुत कुछ बाँटता है **॥ 04॥**

विशेष - इस अध्याय के इन प्रथम चार मन्त्रों को हम इसका मङ्गलाचरण भी कह सकते हैं। प्रारम्भ में परमात्मा की स्तुति अर्थात् गुण-कीर्तन किया गया है। इसमें परमात्मा के उन गुणों को विशेष रूप से स्मरण किया गया है जो इस अध्याय के मूल सन्देश के वाहक माने जा सकते हैं। विशेष रूप से इस अध्याय में ही समाज में विभिन्न कार्य करने वाले लोगों का कार्य-विभाजन बताया गया है। स्तुतियों तथा कार्य-विभाजन का संकेत यही है कि हम रुचि तथा क्षमता के अनुसार कार्य का चयन करें, परमात्मा का स्मरण करें तथा अपनी ओर से पूर्ण प्रयास करें तो कार्य की सफलता में सहायता अवश्य प्राप्त होगी **॥ 04॥**

पदार्थ - वसोः - वसु का अर्थात् वासस्थान तथा वास करने वाले लोगों का (वस् - वसना, निवास करना)। **चित्रस्य -** चेतन करने वाले, चित्र स्वरूप का, आश्चर्यस्वरूप का (चित् - चेतन करना या होना, विचार करना, चित्र - चित्र बनाना, आश्चर्य करना)। **राधसः -** सिद्ध, निर्णय, वृद्धि का (राध् - सिद्ध करना, पूरा करना, निर्णय करना, बढ़ना)। **विभक्तारम् -** विभाग करने वाले (भज् - सेवा करना, दान करना, वि-भज् - विभाजन करना, बाँटना)। **नृचक्षसम् -** नरों को देखने वाले (नृ - ले जाना, चक्ष - देखना)। **सवितारम् -** सविता, ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाले को (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना)। **हवामहे -** आह्वान करते हैं (ह्वे - बुलाना, आह्वान करना, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना)॥ 04 ॥

वसु सूक्त

131. ब्रह्मणे ब्राह्मणम् क्षत्राय राजन्यम्,
मरुद्भ्यो वैश्यम् तपसे शूद्रम्,
तमसे तस्करम् नारकाय वीरहणम्,
पाप्मने क्लीबम् आक्रयाया अयोगूम्,
कामाय पुंश्चलूम् अतिक्रुष्टाय मागधम्॥ 05 ॥

काव्यानुवाद

ब्रह्म हेतु ब्राह्मण रहें, रक्षा को राजन्य।
पोषण के हित वैश्य हों, शूद्र तपस्याधन्य।
तस्कर तम के योग्य हैं, नारक हित अधिवीर।
क्लीब पाप्मन् के लिए, आक्रय में गतिधीर।
कामहेतु पुंश्चल रहें, मागध वचन प्रवीर॥ 05 ॥

संहितापाठ

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे

तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयायाऽअयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम्॥ 05 ॥

(ऋषि-नारायण, देवता - परमेश्वर, छन्द - अतिशक्वरी, स्वर- पञ्चम)

मन्त्रार्थ - ब्रह्मणे ब्रह्म के लिए, बृहत् के लिए **ब्राह्मणम्** ब्राह्मण को, बृहत् को, **क्षत्राय** क्षत्र के लिए, गति के लिए, शब्द के लिए, भोजन के लिए, आच्छादन के लिए **राजन्यम्** राजन्य को, राजकीय कर्मियों को **मरुद्भ्यो** मरुतों के लिए, मरणशीलों के लिए **वैश्यम्** वैश्य को, सूचना, प्रेरणा, प्रवेश करने वाले को, **तपसे** तपस्या के लिए **शूद्रम्** शूद्र को, शुद्धिकर्ता को, **तमसे** तमस् के लिए, इच्छा, अन्धकार के लिए **तस्करम्** तस्कर को, **नारकाय** नारक के लिए **वीरहणम्** वीरहण को, वीरो का हनन करने वाले को **पाप्मने** पाप्मन् के लिए, पाप के लिए, पापाचरण वाले के लिए **क्लीबम्** कोमल, निर्बल को, **आक्रयाया** आक्रय के लिए **अयोगूम्** अयोगु को, योग-हीन को, विद्वान्, गतिमय को **कामाय** कामना के लिए **पुंश्चलूम्** पुंश्चलू को, प्रगतिशील, पवित्र चाल को, **अतिक्रुष्टाय** अतिक्रुष्ट के लिए **मागधम्** मागध को (प्राप्त करता है, प्राप्त करें)॥ 05 ॥

भावार्थ - समाज में विविध प्रकार के कार्यों के लिए विविध योग्यता तथा गुण-कर्म वाले लोगों की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए अपनी रुचि के अनुसार लोग दक्षता प्राप्त करते हैं। समाज को सभी लोगों की आवश्यकता होती है। जो जिस कार्य का वरण कर लेता है, वह उसका वर्ण कहा जाने लगता है। यही वैदिक व्यवस्था है। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण समाज को चार वर्णों में विभाजित करने का प्रयास अनुचित है। इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र में आ लभते (प्राप्त करता है, प्राप्त करें), क्रिया का प्रयोग हुआ है, जो वाक्य को पूर्ण करने के लिए सभी मन्त्रों में प्रयोग होती है॥ 05 ॥

विशेष - इस अध्याय में आगे सभी मन्त्रों में इसी प्रकार से विविध

प्रकार के कार्यों तथा उनके करने वाले लोगों का उल्लेख है। इन्हें वसु विभाग अर्थात् समाज में वसने वाले तथा वसाने वाले लोगों के विभाग के मन्त्र भी कहा जाता है॥ 05 ॥

पदार्थ - ब्रह्मणे - ब्रह्म के लिए, बृहत् के लिए (बृह्-बढ़ना)। **ब्राह्मणम् -** ब्राह्मण को, बृहत् को (बृह्-बढ़ना)। **क्षत्राय** क्षत्र के लिए, गति के लिए, शब्द के लिए, भोजन, आच्छादन, मारने के लिए (क्षत्-क्षद् - खाना, ढकना, मारना, रक्षा करना, क्षु - जाना, चलना, शब्द करना), **राजन्यम्** राजन्य को, राजकीय कर्मियों को (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। **मरुद्भ्यो** मरुतों के लिए (मृ-मरना) **वैश्यम् -** वैश्य को, सूचना, प्रेरणा, प्रवेश करने वाले को (विश्-सूचना देना, प्रेरणा देना, प्रवेश करना)। **तपसे** तपस्या के लिए (तप् - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तृषा होना) **शूद्रम्** शूद्र को, शुद्धिकर्ता को (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना)। **तमसे** तमस् के लिए (तम् - इच्छा होना अन्धकर होना) **तस्करम्** तस्कर को (तस् - रक्षा करना, स्थापना करना, भेजना, उड़ाना)। **नारकाय** नारक के लिए (नृ - चलना, ले जाना, विनय होना) **वीरहणम्** वीरहण को (वीर् - वीरता दिखाना, वीर होना, हण् - शब्द करना, कलह करना, हन् - चलना, गति करना, हिंसा करना)। **पाप्मने** पाप्मन् के लिए, पाप के लिए (पाप् - पाप करना, दुष्ट आचरण करना) **क्लीबम्** कोमल, निर्बल को (क्लीब् - कोमल, निर्बल होना)। **आक्रयाया** आक्रय के लिए (आ - सम्यक् रूप से, समन्तात्, क्री-खरीदना, विनिमय करना, जीतना) **अयोगूम्** अयोगु को, योग-हीन को, विद्वान्, गतिमय को (अ - नहीं। अय् - गति करना, शब्द करना, युज् - योग करना, जोड़ना), **कामाय** कामना के लिए (काम्-कम् - इच्छा करना, चाहना) **पुंश्चलूम्** पुंश्चलू को, प्रगतिशील, पवित्र चाल को (पु - गति करना, रक्षा करना, चलना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, चल् - चलना)। **अतिक्रुष्टाय** अतिक्रुष्ट के लिए (अति - अधिक, बहुत, क्रुश - पुकारना,

रोना) **मागधम्** मागध को (मग्-लेना, मगध्-घेरना, चाकरी करना)॥05॥

ब्रह्म सूक्त

(यजुर्वेद, अध्याय 32, सूक्त 1-10)

132. तत् एव अग्निः तत् आदित्यः,
तत् वायुः तत् उ चन्द्रमाः।
तत् एव शुक्रम् तत् ब्रह्म,
ता आपः स प्रजापतिः॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

है अग्नि वही, आदित्य वही, है वायु वही है, है वही चन्द्र।
है वही शुक्र, वह परम ब्रह्म, वह आपः है, वह प्रजापतिः॥01॥

संहितापाठ

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः॥ 01 ॥

(ऋषि - स्वयम्भु ब्रह्म, देवता - परमात्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- तत् वह **एव** ही **अग्निः** अग्नि, अग्रणी, **तत्** वह **आदित्यः** आदित्य, अविनाशी, **तत्** वह **वायुः** वायु, प्रवाहमान, रचनाशील, **तत्** वह **उ** ही **चन्द्रमाः** चन्द्रमा, आनन्दस्वरूप, आनन्दकारक, **तत्** वह **एव** ही **शुक्रम्** शुक्र, शीघ्रकारी, शुद्ध, **तत्** वह **ब्रह्म** ब्रह्म, बड़ा, बृहत्, **ता** वह **आपः** आप, व्यापक, **स** वह **प्रजापतिः** प्रजापति, प्रजा का रक्षक, पालक, स्वामी (है)॥ 01 ॥

भावार्थ - सम्पूर्ण प्रकृति, सभी देवशक्तियाँ, अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः, प्रजापति आदि एक परमात्मा के ही विविध रूप हैं, उसके ही गुणवाची नाम हैं। विविध रूपों में एक परमात्मा ही व्यक्त हुआ

है। हम जो कुछ भी देखते, जानते तथा अनुभव करते हैं, वह सब कुछ परमात्मा ही है॥ 01 ॥

पदार्थ- तत् वह (सर्वनाम) **एव** ही (अव्यय) **अग्निः** अग्नि (अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, अग्रणी होना), **तत्** वह (सर्वनाम) **आदित्यः** आदित्य (अदिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना), **तत्** वह (सर्वनाम) **वायुः** वायु (वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना), **तत्** वह (सर्वनाम) **उ** ही (अव्यय) **चन्द्रमाः** चन्द्रमा (चन्द् - चमकना, आनन्द होना, आनन्द करना)। **तत्** वह (सर्वनाम) **एव** ही (अव्यय) **शुक्रम्** शुक्र (शुक् - जाना, शुच् - शुद्ध होना) **तत्** वह (सर्वनाम) **ब्रह्म** ब्रह्म (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना), **ता** वह (सर्वनाम) **आपः** आप, व्यापक (आप् - व्याप्त होना, जाना, पाना, अवलम्ब होना), **स** वह (सर्वनाम) **प्रजापतिः** प्रजापति, प्रजा का पालक, रक्षक, स्वामी (प्र - प्रकृष्ट, अधिक। जन् - उत्पन्न करना, पत् - ऐश्वर्य होना, उड़ना, गिरना, रक्षा करना)॥ 01 ॥

133. सर्वे निमेषा जज्ञिरे, विद्युतः पुरुषात् अधि।
न एनम् ऊर्ध्वम् न तिर्यञ्चम्, न मध्ये परि जग्रभत्॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

जन्मे सब निमिष उसी से हैं, विद्युत अधि पुरुष ईश से ही।
इसको ऊपर से, तिरछे या, कोई भी मध्य से पा न सका॥ 02 ॥

संहितापाठ

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥ 02 ॥

(ऋषि - स्वयम्भु ब्रह्म, देवता - परमात्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ- सर्वे सब **निमेषा** निमेष, सिञ्चन, प्रोक्षण **विद्युतः** विद्वान्,

विशेष प्रकाशमान **अधि** अधिक **पुरुषात्** पुरुष से, अग्रणी, पूर्ण से **जज्ञिरे** उत्पन्न हुए हैं। **एनम्** इस को **न** नहीं **ऊर्ध्वम्** ऊपर, **न** नहीं **तिर्यञ्चम्** तिरछा, **न** नहीं **मध्ये** बीच में **परि जग्रभत्** परिग्रहण कर सकते हैं, पा सकते हैं॥ 02 ॥

भावार्थ - कालचक्र, समय-विभाग, सभी प्रकाशमान सूर्य, चन्द्र नक्षत्रादि भी परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं। उसको किसी दिशा से पकड़ पाना सम्भव नहीं है॥ 02 ॥

पदार्थ- सर्वे सब (सर्वनाम) **निमेषा** निमेष, सिञ्चन, प्रोक्षण (नि - निश्चित, निरन्तर, मिष् - स्पर्धा करना, सींचना, प्रोक्षण करना, पलक झपकाना)। **विद्युतः** विद्वान्, विशेष प्रकाशमान (वि - विशेष, विद् - जानना, द्युत् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **अधि** अधिक (उपसर्ग) **पुरुषात्** पुरुष से (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना), **जज्ञिरे** उत्पन्न हुए हैं (जन् - उत्पन्न होना)। **न** नहीं (अव्यय)। **एनम्** इसको (सर्वनाम)। **ऊर्ध्वम्** ऊपर (सर्वनाम), **न** नहीं (अव्यय)। **तिर्यञ्चम्** तिरछा (अव्यय), **न** नहीं (अव्यय) **मध्ये** बीच में (सर्वनाम)। **परि जग्रभत्** परिग्रहण कर सकता है (परि - सब ओर (सर्वनाम)। ग्रह्-ग्रभ् - ग्रहण करना)॥ 02 ॥

134. न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महत् यशः।
हिरण्यगर्भ इति एषः, मा मा हिंसीत् इति एषा,
यस्मात् न जातः इति एषः॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

उसका प्रतिमान नहीं कोई, जिसका यश महत् नाम वाला।
यह हिरण्यगर्भ, ऐसा जानो, हिंसा विहीन, ऐसा मानो।
यह जन्म न लेने वाला है॥ 03 ॥

संहितापाठ

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जातऽइत्येषः॥ 03॥

(ऋषि -स्वयम्भु ब्रह्म, देवता- हिरण्यगर्भ परमात्मा, छन्द - पङ्क्ति, स्वर - पञ्चम)

मन्त्रार्थ - तस्य उसकी **प्रतिमा** प्रतिमा, प्रतिमान, समतुल्य **न** नहीं, **यस्य** जिसका **नाम** नाम **महत्** महान् **यशः** कीर्ति **अस्ति** है। **एषः** यह **हिरण्यगर्भ** हिरण्यगर्भ, प्रकाश को गर्भ में धारण करने वाला **इति** ऐसा (है)। **एषा** यह **मा** नहीं **मा** नहीं **हिंसीत्** हिसा करे **इति** ऐसा (है)। **यस्मात्** जिस कारण से **एषः** यह **न** नहीं **जात** उत्पन्न हुआ **इति** ऐसा (है)॥ 03॥

भावार्थ - परमात्मा की कोई प्रतिमा अर्थात् प्रतिरूप या तुलना नहीं हो सकती है। ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके रूपक से बताया जा सके कि परमात्मा इसकी तरह है। परमात्मा का अंश तो सब है, परन्तु ऐसा कोई भी या कुछ भी नहीं है जिसे कहा जा सके कि यह परमात्मा के समान है। उसका नाम ही महान् यश है अर्थात् उसका यश या कीर्ति उसके नाम से है, उसको तो नाम से ही जाना जा सकता है। गुणों के अनुसार उसे समझने के लिए हिरण्यगर्भ, प्रकाश को गर्भ में धारण करने वाला, हिंसा न करने वाला, अहिंसक तथा न जातः अर्थात् यह नहीं उत्पन्न हुआ, अजन्मा आदि कहा जाता है॥ 03॥

पदार्थ - न नहीं (अव्यय) **तस्य** उसकी (सर्वनाम) **प्रतिमा** प्रतिमा, प्रति-मान, (प्र - प्रकृष्ट, अधिक। मा - मापना, तुलना करना) **अस्ति** है (अस् - होना), **यस्य** जिसका (सर्वनाम) **नाम** नाम (अव्यय, सर्वनाम) **महत्** महान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना) **यशः** कीर्ति (यश् - प्रख्यात होना, कीर्ति होना, व्याप्त होना, फैलना)। **हिरण्यगर्भ** हिरण्यगर्भ (हिरण् - प्रकाश करना, शब्द करना, ग्रह-गृह-गृभ्-गर्भ् - भीतर होना, अन्तःवास करना) **इति** ऐसा (अव्यय) **एषा** यह

(सर्वनाम), **मा** नहीं (अव्यय) **मा** नहीं (अव्यय) **हिंसीत्** हिसा करे (हिंस् - हिंसा करना, मारना) **इति** ऐसा (अव्यय) **एषा** यह (सर्वनाम), **यस्मात्** जिससे (सर्वनाम) **न** नहीं (अव्यय) **जात** उत्पन्न हुआ (जन् - उत्पन्न होना) **इति** इसी प्रकार (अव्यय) **एषः** यह (सर्वनाम)॥ 03॥

(15) सूक्त 2

135. एषो ह देवः प्रदिशो अनु सर्वाः,
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः,
प्रत्यङ् जनाः तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ 04॥

काव्यानुवाद

यही देव सबमें सुव्यापक, सुविस्तृत,
वही पूर्व जन्मा, वही गर्भ में भी।
सुजन्मा हुआ, जन्म लेने को तत्पर,
वही सज्जनों, सर्वतोमुख प्रतिष्ठित॥ 04॥

संहितापाठ

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः सऽउ गर्भे अन्तः। सऽएव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ 04॥

(ऋषि - स्वयम्भु ब्रह्म, देवता - आत्मा, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर -धैवत)

मन्त्रार्थ- एषो यह **ह** ही **देवः** देव **प्रदिशो** प्रकृष्ट रूपों वाला, प्रकृष्ट, अधिक दिशा देने वाला **अनु सर्वाः** सभी के अनुकूल (है)। **पूर्वो** पूर्व, पहले **ह** ही **जातः** उत्पन्न करने वाला, **स** वह **उ** ही **गर्भे** गर्भ में **अन्तः** भीतर (है)। **स** वह **एव** ही **जातः** जन्मा हुआ (है), **स** वह **जनिष्यमाणः** (भविष्य में) जन्म लेने वाला (है), **जनाः** हे लोगो! **प्रत्यङ्** प्रत्यक्ष, प्रत्येक **सर्वतोमुखः** सब ओर मुख वाला **तिष्ठति** स्थित है॥ 04॥

भावार्थ - सृष्टि के सभी रूपों में परमात्मा ही व्यक्त हो रहा है। प्रदिशो का अर्थ प्रकृष्ट रूप वाला किया गया है। दिक्-दिग्-दिह् धातु का अर्थ रूप बनाना, रूप देना होता है। दिक् तथा दिशा शब्द भी इसी से बनते हैं। जो उत्पन्न करने वाला है, जो उत्पन्न हो चुका है, जो अभी गर्भ में है, जो भविष्य में जन्म लेने वाला है, वह सभी परमात्मा का ही विविध रूप है, उसके अतिरिक्त कुछ भी अस्तित्व में नहीं हैं। सभी जन अर्थात् जन्म लेने वाले लोग भी उसी का विभिन्न रूप हैं तथा वही सबकी ओर मुख किये हुए सर्वत्र व्याप्त है **।। 04 ।।**

पदार्थ - एषो यह (सर्वनाम) **ह** ही (अव्यय) **देवः** देव (दिव् - तेजस्वी होना) **प्रदिशो** प्रकृष्ट रूपों वाला, प्रकृष्ट, अधिक दिशा देने वाला (प्र - प्रकृष्ट, दिश् - दिखाना, दिखाना, समझाना, कहना, देना) **अनु** अनुकूल (उपसर्ग) **सर्वाः** सभी (सर्वनाम)। **पूर्वो** पूर्व, पहले (सर्वनाम) **ह** ही (अव्यय) **जातः** उत्पन्न करने वाला, उत्पन्न हुआ (जन् - उत्पन्न होना) **स** वह (सर्वनाम) **उ** ही (अव्यय) **गर्भे** गर्भ में (ग्रह-गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना) **अन्तः** भीतर (है) (अव्यय, उपसर्ग, सर्वनाम)। **स** वह (सर्वनाम) **एव** ही (अव्यय) **जातः** जन्मा हुआ (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना), **स** वह (सर्वनाम) **जनिष्यमाणः** (भविष्य में) जन्म लेने वाला (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना), **प्रत्यङ्** प्रत्यक्ष, प्रत्येक (अव्यय) **जनाः** जन, लोग (जन् - उत्पन्न होना) **सर्वतोमुखः** सब ओर मुख वाला (सर्वतो - सब ओर, मुख् - मुख्य होना, जाना, खाना) **तिष्ठति** स्थित है (तिष्ठ् - ठहरना, खड़ा होना) **।। 04 ।।**

136. यस्मात् जातम् न पुरा किम् चन एव,
यः आबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सम् रराणः,
त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ।। 05 ।।

काव्यानुवाद

उत्पन्न कुछ भी नहीं पूर्व जिसके,
जो हो गया सब भुवन रूप में भी।
स्वयम् वह प्रजापति, प्रजा सह सुरमता,
वही षोडशी त्रीणि अधिज्योति सेवित ।। 05 ।।

संहितापाठ

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ।। 05 ।।

(ऋषि- स्वयम्भु ब्रह्म, देवता- परमेश्वर, छन्द- त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ- यस्मात् जिससे **पुरा** पहले **किम् चन** कुछ भी **एव** ही **न** नहीं **जातम्** उत्पन्न हुआ, **यः** जो **विश्वा** सभी **भुवनानि** भुवन (सृष्टि या लोक) **आबभूव** हो गया है। **स** वह **षोडशी** सोलह से युक्त **प्रजापतिः** प्रजा का रक्षक **प्रजया** प्रजा के साथ **सम् रराणः** सम्यक् रमण करता हुआ, **त्रीणि** तीन **ज्योतींषि** ज्योतियों को **सचते** सींचता है **।। 05 ।।**

भावार्थ - परमात्मा से पहले कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि वही तो विश्व भुवन के रूप में साकार हुआ है। अतः सम्पूर्ण सृष्टि उसकी प्रजा अर्थात् उससे उत्पन्न है तथा वह उसका प्रजापति अर्थात् प्रजा का पालक, रक्षक है। स्वाभाविक है कि वह अपनी प्रजा का दायित्व भी वहन करता है। वह उस प्रजा के साथ रमण करता है, उसके साथ रहता है तथा वह षोडशी तीन ज्योतियों का अभिसिञ्चन करता है। षोडशी शब्द से किन सोलह गुणों का संकेत किया गया है तथा तीन ज्योतियों से क्या तात्पर्य है, यह गम्भीर चिन्तन का विषय है। ऐसे स्थलों पर सभी अध्येताओं को स्वतन्त्रतापूर्वक चिन्तन करना चाहिए, किसी एक विद्वान् भाष्यकार की लीक पर चलना उचित नहीं होगा। अतः हम यहाँ अपना भी कोई मत नहीं दे रहे हैं **।। 05 ।।**

पदार्थ - यस्मात् जिससे (सर्वनाम) **पुरा** पहले (अव्यय) **किम् चन** कुछ भी (अव्यय) **एव** ही (अव्यय) **न** नहीं (अव्यय) **जातम्** उत्पन्न हुआ (जन् - उत्पन्न होना), **य** जो (सर्वनाम) **विश्वा** सभी (सर्वनाम) **भुवनानि** भुवन (भू - होना) **आबभूव** हो गया है (आ - समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, (उपसर्ग), भू - होना)। **स** वह (सर्वनाम) **षोडशी** सोलह से युक्त (षोडश - सोलह, संख्या) **प्रजापतिः** प्रजा का रक्षक (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना) **प्रजया** प्रजा के साथ (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना) **सम्** सम्यक् (उपसर्ग) **रराणः** रमण करता हुआ, शब्द करता हुआ (रम् - रमना, रमण करना, रण - शब्द करना, जाना, रन् - अलग करना, मिलाना), **त्रीणि** तीन **ज्योतींषि** ज्योतियों को (ज्युत् - प्रकाशित होना, चमकना) **सचते** सींचता है (सच् - सींचना, सेवा करना, सन्तुष्ट करना, पूर्णतः समझना, सम्बन्धी होना)॥ 05 ॥

137. येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा,
येन स्वः स्तभितम् येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 06 ॥

काव्यानुवाद

जिन्होंने किया उग्र द्यौ, भूमि को दृढ़,
जिन्होंने प्रतिष्ठित किया नाक, स्वः को।
आकाश में जो रजस् भी बनाये,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
ओम् देव के हेतु धारें हविष् हम॥ 06 ॥

संहितापाठ

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वा स्तभितं येन नाकः।

योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 06 ॥

(ऋषि- स्वयम्भु ब्रह्म, देवता- परमात्मा, छन्द- त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ- येन जिसके द्वारा **द्यौः** प्रकाशयुक्त **उग्रा** उग्र, **च** और **पृथिवी** पृथ्वी **दृढा** दृढ, **येन** जिसके द्वारा **स्वः** ऐश्वर्यवान्, उत्पन्नकर्ता, **येन** जिसके द्वारा **नाकः** नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल, **स्तभितम्** स्थित (हैं)। **यो** जो **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में **रजसो** रजस् का (लोक समूह का) **विमानः** विमान करने वाला, निर्माण करने वाला, विशेष मान करने वाला (है), **कस्मै** किस **देवाय** देव के लिये **हविषा** हविष द्वारा **विधेम** विधान करें, दान करें, विशेष रूप से धारण करें॥ 06 ॥

भावार्थ - परमात्मा ही द्यौ, पृथ्वी, स्वः, नाक आदि की रचना तथा संचालन करने वाला है। सभी लोक-लोकान्तर उसके द्वारा ही व्यवस्थित हैं। अन्तरिक्ष में फैले हुए रजकणों को वह सूर्य तथा ग्रह, चन्द्रमा आदि के रूप में निर्माण कर विशेष मानयुक्त करता है। मान का अर्थ आदर-सम्मान के साथ ही विशेष रूप से मापन योग्य आकार प्रदान करना, विमान करना अर्थात् निर्माण करना भी है॥ 06 ॥

पदार्थ- येन जिसके द्वारा (सर्वनाम) **द्यौः** प्रकाशयुक्त (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - चमकना, प्रकाशित होना) **उग्रा** उग्र (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना) **च** और (अव्यय) **पृथिवी** पृथ्वी (पृथ्, प्रथ् - विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना) **दृढा** दृढ़ हैं (दृढ-दृद - धारण करना, सहन करना, दृढ होना), **येन** जिससे (सर्वनाम) **स्वः** ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाले (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होना), **येन** जिससे (सर्वनाम) **नाकः** नाक, अक रहित, अकुटिल, अविचल (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना), **स्तभितम्** स्थित हैं (स्तभ्-स्तभि-स्तम्भ - स्थापित करना, स्थित करना)। **यो** जो (सर्वनाम) **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में (अन्तः - बीच में, अन्त्

- बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना) **रजसो** रजस् का (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना) **विमानः** विशेष मान, निर्माण (वि - विशेष, मा - मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना), **कस्मै** किसके लिए (सर्वनाम) **देवाय** देव के लिये (दिव् - तेजस्वी होना) **हविषा** हविष द्वारा, देय द्वारा, दान द्वारा, आदान-प्रदान द्वारा (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना) **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना) **II 06 II**

138. यम् क्रन्दसी अवसा तस्तभाने,
अभि ऐक्षेताम् मनसा रेजमाने।
यत्र अधि सूर उदितो विभाति,
कस्मै देवाय हविषा विधेम।
आपो ह यत् बृहतीः यः चित् आपः II 07 II

काव्यानुवाद

धारण, सुरक्षण करे जो, पुकारें,
मन से प्रकाशित उसे देखते हैं।
अधिसूर्य होता उदित व विभासित,
किस देव के हेतु धारें हविष् हम?
जो आप बृहती, जो आप चित् है,
व्यापक, बृहद्, चेतना व्याप्त जो है II 07 II

संहितापाठ

यं क्रन्दसीऽअवसा तस्तभानेऽअभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूरऽउदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम II
आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिदापः II 07 II

(ऋषि - स्वयम्भु ब्रह्म, देवता - परमात्मा, छन्द - शक्वरी, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - क्रन्दसी क्रन्दनयुक्त **यम्** जिसे **तस्तभाने** स्तभित, प्रकाशित करने वाले, **रेजमाने** प्रकाशमान, गतिमान **अवसा** रक्षण से **मनसा** मन द्वारा, मनन द्वारा, ज्ञान द्वारा **अभि ऐक्षेताम्** अभिमुख देखते हैं। **यत्र** जहाँ **अधि सूर** महासूर्य **उदितो** उदित, उदय हुआ **विभाति** विशेष प्रकाशित होता है, **कस्मै** किस **देवाय** देव के लिए **हविषा** हविष द्वारा **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण करें। **आपो** व्याप्त, व्यापक **ह** ही **यत्** जो **बृहतीः** वृहत्, **यः** जो **चित्** चेतन **आपः** व्याप्त, व्यापक (है) **II 07 II**

भावार्थ - रेजमाने पद का भावार्थ विद्वानों ने विविध प्रकार से किया है। रेज धातु का अर्थ प्रकाश करना तथा रि धातु का अर्थ गति करना होता है। अतः इसके दो अर्थ प्रकाशमान तथा गतिमान लेना उचित है। अधिसूर का भाव है सूर्य का भी कारण रूप महासूर्य, जो सूर्यों का भी जन्मदाता है।

पदार्थ- यम् जिसको (सर्वनाम) **क्रन्दसी** क्रन्दनयुक्त (क्रन्द् - रोना, पुकारना, दुःख होना) **अवसा** रक्षण से (अव् - रक्षा करना) **तस्तभाने** स्तभित अथवा प्रकाशित करने वाले (स्तभ्-स्तभि-स्तम्भ - स्थापित करना, स्थित करना)। **अभि** अभिमुख (उपसर्ग) **ऐक्षेताम्** देखें (ईक्ष् - देखना) **मनसा** मन से (मन् - मनन करना, जानना) **रेजमाने** प्रकाशमान (रेज् - चमकना, प्रकाशित होना)। **यत्र** जहाँ (सर्वनाम) **अधि** अधिक (उपसर्ग) **सूर** सूर्य (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होनाा) **उदितो** उदित, उदय हुआ (उत् - ऊपर, उत्कृष्ट, इ - जाना, जानना, पाना) **विभाति** विशेष प्रकाशित होता है (वि - विशेष, भा - चमकना, प्रकाशित होना), **कस्मै** किसके लिए (सर्वनाम) **देवाय** देव के लिए (दिव् - तेजस्वी होना) **हविषा** हविष द्वारा (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना) **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना)। **आपो** व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना,

जानना) **ह** ही (अव्यय) **यत्** जो (सर्वनाम) **बृहतीः** वृहत् (बृह् - बढ़ना), **यः** जो (सर्वनाम) **चित्** ही, भी, चेतन (**चित्** ही, भी (अव्यय)। चित् - चेतन होना), **आपः** व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना) **॥ 07 ॥**

(16) सूक्त 3

139. वेनः तत् पश्यत् निहितम् गुहा सत्,
यत्र विश्वम् भवति एकनीडम् ॥
तस्मिन् इदम् सम् च वि च एति सर्वम्,
स ओतः प्रोतः च विभूः प्रजासु ॥ 08 ॥

काव्यानुवाद

उसे वेन देखें निहित सत् गुहा में,
जहाँ एक ही नीड है विश्व होता।
उसमें समाहित सकल सृष्टि सम्यक्,
विभू है वही ओत-प्रोतः प्रजा में ॥ 08 ॥

संहितापाठ

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निद॑ सं च वि चैति सर्व॑ सऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ 08 ॥

ऋषि- स्वयम्भु ब्रह्म, देवता- परमात्मा, छन्द- त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ- वेनः विद्वान् **तत्** उस **सत्** सत्य को, **गुहा** गुहा में **निहितम्** निहित, स्थित **पश्यत्** देखता है। **यत्र** जहाँ, जिस में **विश्वम्** विश्व **एकनीडम्** एक नीड, आश्रय, घोसला **भवति** हो जाता है। **तस्मिन्** उसमें **इदम्** यह **सर्वम्** सब **सम्** सम्यक् रूप से, भलीभाँति **च** और **वि** विशेष **च** और **एति** प्राप्त होता है। **स** वह **विभूः** विशेष रूप से हुआ **च** और **प्रजासु** प्रजाओं में

ओतः प्रोतः ओत प्रोत (है) **॥ 08 ॥**

भावार्थ - उस निहित गुह्य सत्य स्वरूप परमात्मा को विद्वान् ही देख पाते हैं। वी धातु व्यापक अर्थों वाली है। जानना, व्यापना, पाना आदि इसके प्रमुख अर्थ हैं। वेन का अर्थ सामान्यतः विद्वान् ही लिया गया है। उस परम सत्य स्वरूप परमात्मा का अनुभव हो जाने पर विश्व एक नीड अर्थात् एक आश्रय, आवास जैसा प्रतीत होने लगता है। नीड का अर्थ आश्रय या घोसला भी होता है। नीड शब्द का प्रयोग विराट में लघुता का अनुभव कराने के लिए हुआ है। विश्व-परिवार या विश्व ग्राम से बहुत आगे बढ़कर सम्पूर्ण सृष्टि के एक नीड हो जाने का अनुभव है। परमात्मा का अनुभव हो जाने पर तो उसके अतिरिक्त सबकुछ अति सूक्ष्म ही प्रतीत होता है **॥08॥**

पदार्थ - **वेनः** विद्वान् (वेन - जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, वाद्य यन्त्र बजाना) **तत्** उस (सर्वनाम) **निहितम्** निहित, स्थित (नि - निरन्तर, निश्चित, हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना) **गुहा** गुह्य (गुह् - आच्छादन करना, छिपाना, ढकना, गति करना, जाना, जानना, हिंसा करना) **सत्** सत्य, नित्य को (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना), **पश्यत्** देखता है (पश्-दृश् - देखना)। **यत्र** जहाँ, जिस में (सर्वनाम) **विश्वम्** विश्व (सर्वनाम) **भवति** होता (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **एकनीडम्** एक आश्रय वाला (एक - एक (संख्या, सर्वनाम), एक - विचार करना, निड् - निवास करना, गृह बनाना)। **तस्मिन्** उसमें (सर्वनाम) **इदम्** यह (सर्वनाम) **सम्** सम्यक् रूप से, भलीभाँति (उपसर्ग) **च** और (अव्यय) **वि** विशेष (उपसर्ग) **च** और (अव्यय) **एति** प्राप्त होता है (आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, ई - जाना, जानना, पाना, व्यापना, इच्छा करना, प्रेरणा करना) **सर्वम्** सब (सर्वनाम), **स** वह (सर्वनाम) **ओतः** ओत, सम्यक् ही (आ - सम्यक्,

समन्तात्, पूर्णतः उत - ही) **प्रोतः** प्रोत (प्र - प्रकृष्ट, उत - ही) **च** और (अव्यय) **विभूः** विशेष रूप से हुआ (वि - विशेष। भू - होना, पाना, चिन्तन करना)। **प्रजासु** प्रजाओं में (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना)॥ 08॥

140. प्र तत् वोचेत् अमृतम् नु विद्वान्,
गन्धर्वो धाम विभृतम् गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहा अस्य,
यः तानि वेद स पितुः पिता असत्॥ 09॥

काव्यानुवाद

कहें उस अमृत को हमें देव-विद्वान्,
गन्धर्व विभृत गुहा में प्रतिष्ठित।
इसके गुहा में निहित तीन पद को,
जो जान लेता, पिता का पिता वह॥ 09॥

संहितापाठ

प्र तद्वोचेतमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत्॥ 09॥

(ऋषि - स्वयम्भु ब्रह्म, देवता - विद्वान्, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ- गन्धर्वो गन्धर्व **विद्वान्** विद्वान्, **नु** शीघ्र **तत्** उस **अमृतम्** अमृत **धाम** धाम, धारण-पोषण-रक्षण, दान **विभृतम्** विशेष भरण करने वाले **गुहा** गुह्य **सत्** सत्य, नित्य **प्र वोचेत्** कहे, प्रवचन करे। **अस्य** इसके **त्रीणि** तीन **पदानि** पद **गुहा** गुहा में **निहिता** निहित, स्थित (हैं)। **यः** जो **तानि** उन को **वेद** जानता है, **स** वह **पितुः** पिता का **पिता** पिता **असत्** हो जाता है॥ 09॥

भावार्थ - परमात्मा के सत्य स्वरूप को विद्वान् ही बता सकते हैं। पहले भी कहा जा चुका है कि उस परमात्मा के तीन पद तो मूल परम चेतन

रूप में सर्वदा स्थित रहते हैं, मात्र एक पद ही सृष्टि के रूप में व्यक्त होता है। उस अव्यक्त मूल स्वरूप को जो जान लेता है, वह तो पिता का भी पिता हो जाता है अर्थात् स्वयम् ब्रह्म-स्वरूप को प्राप्त हो जाता है॥ 09॥

पदार्थ- तत् वह, उस (सर्वनाम) **अमृतम्** अमृत को (अ - नहीं, मृ - मरना) **नु** निश्चय ही, शीघ्र ही (अव्यय) **गन्धर्वो** गन्धर्व, प्रगतिशील, शोभित (गम् + धृ, गम् - जाना, जानना, पाना, धृ - धारण करना, गन्ध् - गन्ध होना, शोभित होना, मांगना, जाना) **विद्वान्** विद्वान् (विद् - जानना), **धाम** धारण-पोषण-रक्षण, दान (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना) **विभृतम्** विशेष भरण करने वाला (वि - विशेष, भृ - भरण करने वाला) **गुहा** गुह्य (गुह् - आच्छादन करना, जाना) **सत्** सत्य (सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना), **प्र वोचेत्** कहे, प्रवचन करे (प्र - प्रकृष्ट, वच्-वद् - कहना)। **अस्य** इसके (सर्वनाम) **त्रीणि** तीन (त्रि - तीन, संख्या) **पदानि** पद (पद् - चलना) **गुहा** गुहा (गुह् - आच्छादन करना, जाना)। **निहिता** स्थित (नि - निरन्तर, निश्चित, हि - जाना), **यः** जो (सर्वनाम)। **तानि** उन को (सर्वनाम) **वेद** जानता है (विद् - जानना), **स** वह (सर्वनाम) **पितुः** पिता का (पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना)। **पिता** पिता (पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना)। **असत्** हो जाता है (अस् - होना)॥ 09॥

141. स नो बन्धुः जनिता स विधाता,
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतम् आनशानाः,
तृतीये धामन् अधि ऐरयन्त॥ 10॥

काव्यानुवाद

वही बन्धु अपना, वही जन्मदाता, वही है विधाता, सभी धाम ज्ञाता।

जहाँ देवगण हैं अमृत प्राणधारी, वही तीसरा धाम स्वामी हमारा ॥10।

संहितापाठ

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ 10 ॥

(ऋषि- स्वयम्भु ब्रह्म, देवता- परमात्मा, छन्द- त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ- स वह **नो** हमारा **बन्धुः** बन्धु, सम्बन्धी, भाई, **जनिता** उत्पन्न करने वाला, **स** वह **विधाता** विधान करने वाला, **विश्वा** सब **धामानि** धामों को **भुवनानि** भुवनों को **वेद** जानता है। **यत्र** जहाँ **तृतीये** तीसरे **धामन्** धाम में **देवा** देवगण **अमृतम्** अमृत को **आनशानाः** प्राण-चेतना को तीक्ष्ण करते हुए **अधि ऐरयन्त** अधिगत होते हैं, प्राप्त होते हैं ॥ 10 ॥

भावार्थ - परमात्मा ही हमारा अपना है। वही हमारा भाई है तथा उत्पन्न करने वाला माता-पिता भी है। वही सम्पूर्ण सृष्टि संचालन का विधान बनाने वाला है। वही है जो सभी भुवनों को जानता है, अन्य किसी की सामर्थ्य इतनी नहीं है कि सब कुछ जान सके। जीव का ज्ञान सीमित ही होता है। जहाँ हम रहते हैं तथा जितना हम जानते हैं, वह तो हमारे लिए पहला धाम है ही, उसके अतिरिक्त जो सृष्टि है, वह दूसरा धाम कहा जा सकता है। इन दोनों धामों के अतिरिक्त जो कुछ है, वह परमात्मा का शुद्ध चेतन मूल स्वरूप है, वही तीसरा धाम है। उसको जानकर, उसका अनुभव कर ही अमृत तत्व का पान कर सकते हैं ॥ 10 ॥

पदार्थ- स वह (सर्वनाम) **नो** हमारा (सर्वनाम) **बन्धुः** भाई (बन्ध - बाँधना, बद्ध करना, हिंसा करना, मारना, वध करना, घृणा करना), **जनिता** उत्पन्न करने वाला (जन् - उत्पन्न करना), **स** वह (सर्वनाम) **विधाता** विधान करने वाला (वि - विशेष, धा - धारण करना), **धामानि** धामों को (धा - धारण करना) **विश्वा** सब (सर्वनाम) **भुवनानि** भुवनों को (भू - होना), **वेद** जानता है (विद् - जानना)। **यत्र** जहाँ (सर्वनाम) **देवा**

देवगण (दिव् - तेजस्वी होना) **अमृतम्** अमृत को (अ - नहीं, मृ - मरना) **आनशानाः** समन्तात् नाश करते हुए, प्राण-चेतना को तीक्ष्ण करते हुए (आ - समन्तात, सम्यक्, नश् - नाश होना। अन् - चेतन होना, प्राण होना, जीवन होना, समर्थ होना, जाना। शान - तीक्ष्ण करना, पैना करना, धार रखना। शण - दान करना, जाना, जानना, शब्द करना), **तृतीये** तीसरे (संख्या) **धामन्** धाम में (धा - धारण करना) **अधि** अधिक (उपसर्ग) **ऐरयन्त** प्राप्त होते हैं (ऋ-इर्य - जाना, चलना, पाना, जानना, फैलाना, ईर - जाना,जानना, पाना, प्रेरणा करना) ॥ 10 ॥

शिवसङ्कल्प सूक्त

(यजुर्वेद, अध्याय 34, मन्त्र 1-6)

142. यत् जाग्रतो दूरम् उत् ऐति दैवम्,
तत् उ सुप्तस्य तथा एव एति।
दूरम् गमम् ज्योतिषाम् ज्योतिः एकम्,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु ॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

सदा देव जगते हुए दूर जाता,
भले सो रहे हों, उसी भाँति चलता।
वही दूरगामी प्रमुख ज्योतियों में,
रहे मन सदा शिव सुसंकल्प-स्वामी ॥ 01 ॥

संहितापाठ

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 01 ॥

(ऋषि - शिवसङ्कल्प, देवता - मन, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ- यत् जो **दैवम्** दैव **जाग्रतो** जागते हुए **दूरम्** दूर **उत्** उत्तम **ऐति** जाता है, **तत्** वह **सुप्तस्य** सोते हुए **उ** भी **तथा** उस प्रकार **एव** ही **एति** जाता है। **दूरम्** दूर **गमम्** जाने वाला (मन) **ज्योतिषाम्** ज्योतियों में **एकम्** एक **ज्योतिः** ज्योति (है)। **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शिव-सङ्कल्प वाला, शुभ विचारों, कामनाओं वाला **अस्तु** हो **॥ 01 ॥**

भावार्थ- मन जागते हुए और सोते हुए भी दूर तक जाता है, विचरण करता है। वह ज्योतियों में एक ज्योति अर्थात् सभी ज्योतियों में विशिष्ट तथा प्रमुख ज्योति है। हमारा वह मन शिव-सङ्कल्प वाला, शुभ विचारों तथा कामनाओं वाला हो। मन को दैव कहा गया है। दैव अर्थात् दिव्यता से युक्त, दिव्य विचारों भावनाओं से सम्बन्धित। मन दिव्य वेद मन्त्रों से युक्त है, स्वतः ओतप्रोत है। सकारात्मक श्रेष्ठता, उत्कृष्टता को ही दिव्यता कहा जाता है। अतः सर्वश्रेष्ठ देव तो परमात्मा है, वेद है। वेद के विद्वानों को भी देव कहा जाता है। दूरम् शब्द अव्यय तथा सर्वनाम के रूप में भी मान्य है। दु तथा दू धातुओं का अर्थ जाना होता है। इससे भी दूरम् का अर्थ गया हुआ अर्थात् दूर हो गया मान सकते हैं **॥ 01 ॥**

पदार्थ :- यत् = जो (सर्वनाम)। **जाग्रतो** = जागा हुआ, जाग्रत (जागृ - जगना, नींद न लेना)। **दूरम्** = दूर (अव्यय, सर्वनाम)। **उत्** = ऊपर, उच्च (उपसर्ग, अव्यय)। **एति** = जाता है (इ - जाना)। **दैवम्** = दैव, देव (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **उ** = निश्चय ही, भी (अव्यय, निपात)। **सुप्तस्य** = सोते हुए का (सुप्-स्वप् - सोना)। **तथा** = उस प्रकार (अव्यय)। **एव** = ही (अव्यय) **एति** = जाता है (इ-ए - जाना)। **दूरम्** = दूर (अव्यय, सर्वनाम)। **गमम्** = जाने वाला (गम् - जाना)। **ज्योतिषाम्** = ज्योतियो का (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **ज्योतिः** = प्रकाश (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **एकम्** = एक (संख्या, सर्वनाम)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **मे** = मेरे लिए, मेरा

(सर्वनाम)। **मनः** = मन (मन् - मनन करना, जानना)। **शिव** = कल्याणकारी (शिव् - कल्याण करना)। **संकल्पम्** = संकल्प वाला (सम् - सम्यक् रूप से, भली-भाँति (उपसर्ग)। कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। **अस्तु** = हो (अस् - होना) **॥ 01 ॥**

143. येन कर्माणि अपसो मनीषिणो,
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यत् अपूर्वम् यक्षम् अन्तः प्रजानाम्,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु ॥ 02 ॥

काव्यानुवाद

मनीषी सकल कर्म जिससे निभाते,
परम धैर्यशाली रहे यज्ञ में जो।
सु अन्तःकरण वह सबल है प्रजा का,
रहे मन सदा शिव सुसंकल्प-स्वामी ॥ 02 ॥

संहितापाठ

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 02 ॥

(ऋषि - शिवसङ्कल्प, देवता - मन, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - येन जिसके द्वारा **अपसो** पालनकर्ता **मनीषिणो** मनीषी **धीराः** धैर्यशाली **यज्ञे** यज्ञ में, देवपूजा, संगतिकरण, दान में, **विदथेषु** ज्ञान प्राप्ति में **कर्माणि** कर्म **कृण्वन्ति** करते हैं, **यत्** जो **प्रजानाम्** प्रजाओं के **अन्तः** भीतर **अपूर्वम्** अपूर्व, अद्वितीय, विलक्षण, **यक्षम्** पूजनीय (है), **तत** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्प वाला **अस्तु** हो **॥ 02 ॥**

भावार्थ- महान् गुणवान् लोकहितकारी व्यक्ति मन की शक्ति से श्रेष्ठ कार्य करते हैं। यदि मन ही निर्बल तथा दूषित हो तो उत्कृष्ट कार्य

सम्भव नहीं हैं। अपः शब्द का अर्थ पालनकर्ता है। जल को जीवन का प्रमुख आधार मानकर अपः को सामान्यतः जल भी कहते हैं **॥ 02 ॥**

पदार्थ :- येन = जिसके द्वारा (सर्वनाम)। **कर्माणि** = कर्मों को (कृ - करना)। **अपसो** = पालनकर्ता (अप - पालन करना)। **मनीषिणो** = मनीषी (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **यज्ञे** = यज्ञ में (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। **कृण्वन्ति** = करते है (कृ - करना)। **विदथेषु** = ज्ञान प्राप्ति में, ज्ञानियों में (विद् - जानना)। **धीराः** = धीर, धैर्यवान् (धी - धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना)। **यत्** = जो (सर्वनाम)। **अपूर्वम्** = अपूर्व जो पहले नहीं हुआ, विशिष्ट, विलक्षण (अ - नहीं, पूर्व - पहले, (सर्वनाम)। **यक्षम्** = पूज्य, पूजन (यक्ष् - पूजा करना)। **अन्तः** = बीच में (अव्यय, उपसर्ग)। **प्रजानाम्** = प्रजाओं के, प्राणियों के ((प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **मे** = मेरे लिए, मेरा (सर्वनाम)। **मनः** = मन (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **शिव** = कल्याणकारी (शिव् - कल्याण करना)। **संकल्पम्** = संकल्प वाला (सम् - सम्यक् रूप से, भली-भाँति, कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। **अस्तु** = हो (अस् - होना) **॥ 02 ॥**

144. यत् प्रज्ञानम् उत चेतो धृतिः च,
यत् ज्योतिः अन्तः अमृतम् प्रजासु।
यस्मात् न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु ॥ 03 ॥

काव्यानुवाद

सुप्रज्ञा तथा चेतना धैर्य-धारी,

अमृत ज्योति अन्तःकरण में प्रजा के।
नहीं कर्म जिसके बिना हो सके कुछ,
रहे मन सदा शिव सुसंकल्प स्वामी ॥ 03 ॥

संहितापाठ

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 03 ॥

(ऋषि - शिवसङ्कल्प, देवता - मन, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - यत् जो **प्रज्ञानम्** प्रज्ञान, **उत** उसी प्रकार **चेतो** चेतन, सचेतक **च** और **धृतिः** धैर्य (है), **यत्** जो **प्रजासु** प्रजाओं के **अन्तः** भीतर **अमृतम्** अमृत, शाश्वत् **ज्योतिः** प्रकाश (है), **यस्मात्** जिसके **ऋते** विना **किञ्चन** कोई **कर्म** कार्य **न** नहीं **क्रियते** किया जाता है, **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्प वाला **अस्तु** हो **॥ 03 ॥**

भावार्थ - यहाँ मन को अमृत ज्योति कहा गया है जो प्राणियों में स्थित है। मन के विना कोई कार्य सम्भव नहीं है। वह चेतन भी है। स्पष्ट है कि ये ही गुण तथा लक्षण आत्मा के भी माने जाते हैं। प्राणियों में व्याप्त चेतन शक्ति ही आत्मा है। वेद में परमात्मा को आत्मा ही कहा गया है। उस चेतना से कार्य करने वाली इन्द्रिय-शक्ति मन ही है जो कर्मों के लिए उत्तरदायी है **॥ 03 ॥**

पदार्थ :- यत् = जो (सर्वनाम)। **प्रज्ञानम्** = प्रकृष्ट, विशेष ज्ञान (प्र - प्रकृष्ट, ज्ञा - जानना, समझना)। **उत** = ही, और, उसी प्रकार (अव्यय)। **चेतो** = चेतन करने वाला, सचेत करने वाला (चित् - चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना)। **धृतिः** = धैर्य (धृ - रहना, स्थिर रहना, धारण करना, रखना, युक्त होना)। **च** = और (अव्यय)। **यत्** = जो (सर्वनाम)। **ज्योतिः** = प्रकाश (ज्युत् - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **अन्तः** = बीच में (अव्यय, उपसर्ग, सर्वनाम)। **अमृतम्** = न मरने वाला,

अमर (अ - नहीं, मृ = मरना)। **प्रजासु** = प्रजाओं में, प्राणियों में (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **यस्मात्** = जिससे (सर्वनाम)। **न** = नहीं (अव्यय)। **ऋते** = विना (अव्यय)। **किञ्चन** = कोई (किम् + चन (अव्यय)। **कर्म** = कर्म, कार्य (कृ - करना)। **क्रियते** = किया जाता है (कृ - करना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **मे** = मेरे लिए, मेरा (सर्वनाम)। **मनः** = मन (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **शिव** = कल्याणकारी (शिव् - कल्याण करना)। **संकल्पम्** = संकल्प वाला (सम् - सम्यक् रूप से, भली-भाँति, कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। **अस्तु** = हो (अस् - होना) **॥ 03 ॥**

145. येन इदम् भूतम् भुवनम् भविष्यत्,
परिगृहीतम् अमृतेन सर्वम्।
येन यज्ञः तायते सप्तहोता,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु ॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

सदा भूत, भावी तथा वर्तमानम्,
सभी को अमृत वह ग्रहण कर रखे है।
यजन सप्तहोता, सुविस्तार-कर्ता,
रहे मन सदा शिव सुसंकल्प-स्वामी ॥ 04 ॥

संहितापाठ

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 04 ॥

(ऋषि - शिवसङ्कल्प, देवता - मन, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ- येन जिस **अमृतेन** अमृत द्वारा **इदम्** यह **भूतम्** भूत,

भुवनम् वर्तमान **भविष्यत्** भविष्य **सर्वम्** सब **परिगृहीतम्** परिगृहीत (हैं)**, येन** जिसके द्वारा **सप्तहोता** सप्तहोता **यज्ञः** यज्ञ **तायते** विस्तार करते हैं, **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्प वाला **अस्तु** हो ॥ **04 ॥**

भावार्थ - मन ही भूत, वर्तमान तथा भविष्य को परिग्रहीत किये हुए है, पकड़े या नियन्त्रित किये हुए है। तीनों काल-विभागों के कार्य तथा परिणाम मन पर निर्भर हैं। यज्ञ आदि कर्मों का विस्तार करने वाला मन है तो उसका फल भी उसी पर निर्भर है तथा उसी के लिए हैं। आत्मा-परमात्मा को कर्म तथा फल से परे माना गया है **॥ 04 ॥**

पदार्थ :- येन = जिससे (सर्वनाम)। **इदम्** = यह, इसको (सर्वनाम)। **भूतम्** = भूत (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **भुवनम्** = हो रहा, वर्तमान (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **भविष्यत्** = भविष्य (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **परिगृहीतम्** = सम्प्राप्त, सब ओर से, ग्रहण किया हुआ (परि - सब ओर से (उपसर्ग), गृह - लेना, स्वीकार करना)। **अमृतेन** = अमृत द्वारा (अ - नहीं, मृ - मरना, देहत्याग करना)। **सर्वम्** = सब (सर्वनाम)। **येन** = जिससे (सर्वनाम)। **यज्ञः** = यजन, यज्ञ (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **तायते** = विस्तार होता है (ताय् - संरक्षण करना, फैलाना, लम्बा करना)। **सप्तहोता** = सात होता युक्त (सप्त - सात, हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **मे** = मेरे लिए, मेरा (सर्वनाम)। **मनः** = मन (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **शिव** = कल्याणकारी (शिव् - कल्याण करना)। **संकल्पम्** = संकल्प वाला (सम् - सम्यक् रूप से, भली-भाँति, कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। **अस्तु** = हो (अस् - होना) **॥ 04 ॥**

146. यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि यस्मिन्,
प्रतिष्ठिता रथनाभौ इव अराः।

यस्मिन् चित्तम् सर्वम् ओतम् प्रजानाम्,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु॥ 05॥

काव्यानुवाद

रची हैं ऋचायें, यजुः, साम जिसमें,
रथों के अरों की तरह हैं प्रतिष्ठित,
सभी का रमा चित्त जिसमें सदा ही,
रहे मन सदा शिव सुसंकल्प-स्वामी॥ 05॥

संहितापाठ

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ 05॥

(ऋषि - शिवसङ्कल्प, देवता - मन, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - यस्मिन् जिसमें **ऋचः** ऋचायें, ऋग्वेद के मन्त्र **साम** साम, सामवेद के मन्त्र **यजूंषि** यजुष्, यजुर्वेद के मन्त्र **रथनाभौ** रथ की नाभि में, केन्द्र में **अराः** अरों **इव** की भाँति **प्रतिष्ठिता** प्रतिष्ठित (हैं), **यस्मिन्** जिसमें **सर्वम्** सभी **प्रजानाम्** प्रजाओं का **चित्तम्** चित्त, चेतना **ओतम्** ओत-प्रोत (है), **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्पवाला **अस्तु** हो॥ 05॥

भावार्थ - सभी वेद मन्त्र मन में प्रतिष्ठित हैं। चित्त या चेतना शक्ति भी मन में ओत-प्रोत है। हमें साधना द्वारा उस शक्ति को जाग्रत करना है। वेद मन्त्रों को मन में प्रतिष्ठित करने के साथ साधना करें तो मन चेतन शक्ति से ओत-प्रोत हो ही जायेगा॥ 05॥

पदार्थ :- यस्मिन् = जिसमें (सर्वनाम)। **ऋचः** = ऋचायें, ऋग्वेद के मन्त्र (ऋच - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **साम** = साम, सामवेद के मंत्र (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। **यजूंषि** =

यजुष्, यजुर्वेद के मन्त्र (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **यस्मिन्** = जिसमें (सर्वनाम)। **प्रतिष्ठिता** = प्रतिष्ठित (प्र - प्रकृष्ट, तिष्ठ-स्था - स्थित होना, ठहरना, मार्ग प्रतीक्षा करना)। **रथ** = रथ (रम् - रमना, रमण करना)। **नाभौ** = नाभि में, मध्य में (नभ - मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। **इव** = के समान। **अराः** = अरें (अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। **यस्मिन्** = जिममें (सर्वनाम)। **चित्तम्** = चित्त या चेतना, ज्ञान (चित् - विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। **सर्वम्** = सब (सर्वनाम)। **ओतम्** = ओत- प्रोत, स्थित, व्याप्त)। **प्रजानाम्** = प्रजाओं का, सृजनों का (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **मे** = मेरे लिए, मेरा (सर्वनाम)। **मनः** = मन (मन - जानना, समझना, विचार करना, मानना)। **शिव** = कल्याणकारी (शिव् - कल्याण करना)। **संकल्पम्** = संकल्प वाला (सम् - सम्यक् रूप से, भली-भाँति, कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। **अस्तु** = हो (अस् - होना)॥ 05॥

147. सुषारथिः अश्वान् इव यत् मनुष्यान्,
नेनीयते अभीशुभिः वाजिनः इव।
हृत् प्रतिष्ठम् यत् अजिरम् जविष्ठम्,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु॥ 06॥

काव्यानुवाद

कुशल सारथी अश्व को रस्सियों से,
चलाता सदा मानवों को यथावत्।
बली चिर युवा वह हृदय में प्रतिष्ठित,
रहे मन सदा शिव सुसंकल्प-स्वामी॥ 06॥

संहितापाठ

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ 06॥

(ऋषि - शिवसङ्कल्प, देवता - मन, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ - यत् जो **मनुष्यान्** मनुष्यों को **सुषारथिः** उत्तम सारथी **इव** के समान **अभीशुभिः** शासन-शक्ति, अधिकार द्वारा **वाजिनः** वेगवान् **अश्वान्** अश्वों, व्यापको, घोड़ों **इव** के समान **नेनीयते** ले जाता है, **यत्** जो **हृत्-प्रतिष्ठम्** हृदय में प्रतिष्ठित **अजिरम्** गतिशील, जरा रहित **जविष्ठम्** अत्यन्त वेगवान् (है), **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्पवाला **अस्तु** हो॥ 06॥

भावार्थ - कुशल सारथी के समान मन ही जीवन रूपी रथ का सञ्चालन करता है। अतः परमात्मा से एक ही प्रार्थना है कि मेरा मन शिव-सङ्कल्पवान् हो। यदि मन में शिव अर्थात् कल्याणकारी सङ्कल्प होंगे तो हमारा जीवन श्रेष्ठ होगा, समाज सुखी होगा तथा मानवता की उन्नति होगी॥ 06॥

पदार्थ :- सुषारथिः = उत्तम सारथी (सु - उत्तम, अच्छा। स - सहित, साथ। रम् - रमना, रमण करना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। **अश्वान्** = अश्वों को, व्यापक को, घोड़ों को (अश- पहुँचना, पाना, व्याप्त होना)। **इव** = के समान (अव्यय)। **यत्** = जो (सर्वनाम)। **मनुष्यान्** = मनुष्यों को (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **नेनीयते** = ले जाता है (नी - पहुँचाना, प्राप्त होना, मार्ग दिखाना, पाना, मिलना, ले जाना)। **अभीशुभिः** = शासन-शक्ति, अधिकार द्वारा (अभि - अभिमुख, विशेष, ईश- शासन करना, अधिकार होना)। **वाजिनः** = बलशाली, वेगवान, तीव्र गति वाले (वाज् - गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार

करना, बल होना)। **इव** = के समान (अव्यय)। **हृत्** = हृदय (हृ - ले जाना, पहुँचाना, लेना, ग्रहण करना)। **प्रतिष्ठम्** = प्रतिष्ठित, स्थित (तिष्ठ-स्था - स्थित होना, ठहरना, मार्ग प्रतीक्षा करना)। **यत्** = जो (सर्वनाम)। **अजिरम्** = गतिमान्, जरा रहित (अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना, अ - नहीं, जृ - जीर्ण होना, वृद्ध होना)। **जविष्ठम्** = अतिशय वेगवान् (जु - जाना, वेग से जाना, दौड़ना, भागना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **मे** = मेरा (सर्वनाम)। **मनः** = मन (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **शिव** = कल्याणकारी (शिव् = कल्याण करना)। **संकल्पम्** = संकल्प वाला (सम् - सम्यक् रूप से, भली-भाँति, कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। **अस्तु** = हो (अस् - होना)॥ 06॥

वेद स्तुति

(यजुर्वेद, अध्याय 36)

सूक्त - 1

148. ऋचम् वाचम् प्र पद्ये, मनो यजुः प्र पद्ये।
साम प्राणम् प्र पद्ये, चक्षु श्रोत्रम् प्र पद्ये।
वाक्-ओजः सह-ओजो, मयि प्राणापानौ॥ 01॥

काव्यानुवाद

वाणी को ऋक् प्राप्त हो, मन यजु को पाये।
प्राण साम-मय हो रहे, चक्षु वेद पाये॥
वाणी-बल, सह-ओज हो। मुझमें प्राण-अपान हों॥ 01॥

संहितापाठ

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं

प्र पद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ 01 ॥

(ऋषि - दध्यङ् आथर्वण, देवता - अग्नि, छन्द - पङ्क्ति, स्वर - पञ्चम)

मन्त्रार्थ :- वाचम् वाणी **ऋचम्** ऋचा को, ऋक् वेद को **प्र पद्ये** प्राप्त हो, **मनो** मन **यजुः** यजुर्वेद को **प्र पद्ये** प्राप्त करे, **प्राणम्** प्राण **साम** सामवेद को **प्र पद्ये** प्राप्त हो, **चक्षु** चक्षु, नेत्र **श्रोत्रम्** श्रोत्र, अथर्ववेद अथवा सम्पूर्ण वेद को **प्र पद्ये** प्राप्त हो। **मयि** मुझमें **प्राणापानौ** प्राण-अपान, **वाक्-ओजः** वाक् का, वाणी का ओज, बल, **सह-ओजो** सहनशक्ति, सामर्थ्य, साथ का ओज, बल (हो) **॥ 01 ॥**

भावार्थ :- हमारा जीवन वेदमय हो, हमारी वाणी में ओज हो, प्रभाव हो। हममें सहनशक्ति, सामर्थ्य, सहयोग का ओज, बल भी बना रहे **॥ 01 ॥**

पदार्थ :- ऋचम् = ऋचा को, ऋक् वेद को (ऋच - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आच्छादित करना, चमकना)। **वाचम्** = वाणी को (वच - बोलना, कहना, समझाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **प्रपद्ये** = प्राप्त हो (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, पद - स्थानान्तर करना, प्राप्त होना)। **मनो** = मन (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। **यजुः** = यजुर्वेद को (यज् - देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। **प्रपद्ये** = प्राप्त हो (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, पद - स्थानान्तर करना, प्राप्त होना)। **साम** = सामवेद को (साम - सान्त्वना देना, समाधान करना, शान्त करना)। **प्राणम्** = प्राण (प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। **प्रपद्ये** = प्राप्त हो (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, पद - स्थानान्तर करना, प्राप्त होना)। **चक्षु** = आँख (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। **श्रोत्रम्** = श्रोत्र (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **प्रपद्ये** = प्राप्त हो (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, पद - स्थानान्तर करना, प्राप्त होना)। **वाक्** = वाणी (वच्- बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **ओजः** = ओज (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। **सह** = साथ (अव्यय) सह - सहन करना, शक्ति होना, सन्तुष्ट

होना)। **ओजो** = ओज (ओज - शक्तिमान् होना, जीवन होना, बढ़ना)। **मयि** = मुझमें (सर्वनाम)। **प्राणापानौ** = प्राण- अपान (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन् - जीवन होना, प्राण होना) **॥ 01 ॥**

149. यत् मे छिद्रम् चक्षुषो, हृदयस्य मनसो वा अति तृण्णम्, बृहस्पतिः मे तत् दधातु, शम् नो भवतु भुवनस्य यः पतिः ॥2 ॥

काव्यानुवाद

जो छिद्र अंकुरण चक्षु का, हृदय का या मन का अति।
पूर्ण करे वह बृहस्पति, कल्याण करे वह भुवनपति ॥ 02 ॥

संहितापाठ

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ 02 ॥

(ऋषि- दध्यङ् आथर्वण, देवता-बृहस्पति, छन्द-पङ्क्ति, स्वर-पञ्चम)

मन्त्रार्थ :- मे मेरे **चक्षुषो** चक्षुओं का, **हृदयस्य** हृदय का **वा** अथवा **मनसो** मन का **यत्** जो **अति** अत्यधिक **तृण्णम्** हिंसित, अंकुर **छिद्रम्** छिद्र (हो), **तत्** उसे **बृहस्पतिः** बृहस्पति **दधातु** धारण करे (बचा ले)। **यः** जो **भुवनस्य** भुवन का **पतिः** स्वामी (है), **नो** हमारे लिए **शम्** कल्याणकारी **भवतु** हो **॥ 02 ॥**

भावार्थ :- दोष-दुर्गुण-छिद्र का अंकुरण होते ही उसे दूर कर देना चाहिए। इसके लिए हम प्रयास करें तथा परमात्मा से प्रार्थना भी करें। पूरे मन से तथा सच्ची भावना से प्रयास करें तो इसमें सफलता भी अवश्य मिलेगी। दोष-दुर्गुण दूर होने पर ही हमारा कल्याण हो सकता है **॥ 02 ॥**

पदार्थ :- यत् = जो (सर्वनाम)। **मे** = मेरे लिए, मेरा (सर्वनाम)। **छिद्रम्** = छिद्र (छिद्र - छेद करना)। **चक्षुषो** = चक्षुओं का (चक्ष् - देखना, स्पष्ट कहना)। **हृदयस्य** = हृदय का (हृ - प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **मनसो** = मन का (मन- जानना,

समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **वा** = अथवा (अव्यय)। **अति** = बहुत, अत्यधिक (उपसर्ग)। **तृणम्** = हिंसित, घातक (तृह् - हिंसा करना। तृण् - घास चरना, खाना, शब्द करना, अंकुरित होना)। **बृहस्पतिः** = बृहस्पति, बृहत् का स्वामी (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **मे** = मेरे लिए, मेरा (सर्वनाम)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **दधातु** = धारण करे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **शम्** = शमन, शान्ति, सुख, कल्याण (शम् = प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **भवतु** = हो, हो जाये (भू = होना)। **भुवनस्य** = भुवन का (भू - होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **पतिः** = ऐश्वर्यवान्, स्वामी (पत् - ऐश्वर्य होना)॥ **02**॥

150. भूः भुवः स्वः, तत् सवितुः वरेण्यम्,
भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्॥03॥

काव्यानुवाद

भू है, भुवः है, स्वः भी वही है,
वह देव सविता वरण-योग्य सबका,
उस देव का भर्ग धारें सदा ही।
जो बुद्धि को प्रेरणा दे हमारी॥03॥

संहितापाठ

भूर्भुवः स्वः।तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।धियो यो नः प्रचोदयात्।D3॥

(ऋषि - विश्वामित्र, देवता - सविता, छन्द - उष्णिक्, स्वर - ऋषभ)

मन्त्रार्थ :- भूः भू **भुवः** भुवः **स्वः** स्वः। **तत्** उस **सवितुः** सविता, उत्पन्न-कर्ता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् **देवस्य** देव के **वरेण्यम्**

वरेण्य, वरण योग्य **भर्गो** भर्ग को, प्रकाश, भरण, पोषण को **धीमहि** धारण करते हैं, **यो** जो **नः** हमारी **धियो** बुद्धि को **प्रचोदयात्** प्रकृष्ट प्रेरणा दे, प्रेरित करे॥ **03**॥

भावार्थ :- हम उत्पन्न कर्ता, ऐश्वर्यवान् देव परमात्मा के वरण योग्य भर्ग अर्थात् प्रकाश, भरण, पोषण को धारण करें। भर्गो अर्थात् भर्गः या भर्ग शब्द का अर्थ प्रकाश, भरण, पोषण है। भृज्-भर्ज धातु का अर्थ चमकना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना, भूजना, तलना, पकाना है। भृ धातु का अर्थ है भरण, पोषण करना। हम परमात्मा की उपासना करते हैं, उसके भर्ग अर्थात् पोषण, धारण करने योग्य प्रकाश, तेज को धारण करते हैं, अपने जीवन में अपनाते हैं, तो हमको परमात्मा से सद्प्रेरणा तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता है। हम परमात्मा के दिव्य पोषण, प्रकाश को धारण करते हैं, अपनाते हैं तो वह हमारी बुद्धि को समुचित प्रेरणा प्रदान करता है॥ **03**॥

विशेष :- भूः भुवः स्वः को यजुष्, यजूंषि, व्याहृतियाँ कहते हैं। सामान्यतः इनको अव्यय माना जाता है। शब्दशः अर्थ न करते हुए भूः भुवः स्वः को तीन लोक, तीन काल, त्रिविध विद्या, त्रिविध जन, त्रिविध प्राणी आदि के रूप में अनेक त्रयी के प्रतीक रूप में स्वीकार किया गया है। सरलता के लिए इनका अर्थ प्राण स्वरूप, दुःख नाशक, सुख स्वरूप भी किया गया है। धातुज-निरुक्त प्रक्रिया के अनुसार भूः तथा भुवः शब्द भू धातु से ही उत्पन्न हैं जिनका अर्थ होना तथा हो चुका या होने वाला कर सकते हैं। स्वः शब्द की धातु सु होगी जिसका अर्थ उत्पन्न करना या होना तथा ऐश्वर्य होना होता है। हमारा होना प्राण रहने तक ही सम्भव है। जिसे हम नहीं चाहते हैं, इच्छा करते हैं कि बीत जाये, वह दुःख है। उस दुःख का न रहने का कारक होना ही दुःख नाशक होने का भाव है। उत्पन्न होना तथा ऐश्वर्य होना ही तो सुख है। जिस परमात्मा की कृपा से यह सम्भव होता है, वह भू भुवः स्वः अर्थात् प्राण स्वरूप, दुःख नाशक, सुख स्वरूप

कहा जाता है। भर्ग शब्द भृज् धातु से बनता है तो इसका अर्थ भूनना, दहन करना होता है। इसका अर्थ पापों को भूनने, जलाकर नष्ट करने वाले तेज से लिया जाता है। पापों, कषाय-कल्मषों, भ्रमों को जलाने के बाद तेजोमय स्वरूप प्राप्त होता है, अतः भर्ग का भावार्थ तेज भी किया जाता है। भर्गो पद में भृ धातु मानने पर इसका अर्थ भरण, पोषण, धारण करने वाला होगा। भृ धातु का अर्थ भरण, पोषण, धारण करना होता है ॥ 03 ॥

पदार्थ :- भूः = भू (भू - होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **भुवः** = भुवः (भू - होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **स्वः** = स्वः (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **सवितुः** = उत्पन्न करने वाला, अद्भुत सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान् (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **वरेण्यम्** = वरण योग्य (वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, नियमित करना, आच्छादित करना)। **भर्गो** = भर्ग, प्रकाश, भरण, पोषण, धारण करने वाला (भृज्-भर्ज - चमकना, प्रकाशित होना, प्रकाश करना, भूजना, तलना, पकाना। भृ - भरण, पोषण, धारण करना)। **देवस्य** = देव का (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। **धीमहि** = धारण करते हैं (धी - धारण करना, आधार होना, अनादर करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि - धारण करना)। **धियो** = धारणा शक्ति, बुद्धि (धी - धारण करना, आधार होना, अनादर करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि - धारण करना)। **यो** = जो (सर्वनाम)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **प्रचोदयात्** = प्रकृष्ट प्रेरणा दे, प्रेरित करे (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, चुद् - प्रेरणा देना)॥ 03 ॥

सूक्त - 2

151. कया नः चित्र आ भुवत्, ऊती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता॥ 04 ॥

काव्यानुवाद

किस विधि से हुआ हमारा वह, रक्षक, चेतन, अद्भुत स्वरूप।
वह सदा वृद्धि करने वाला, किस वाणी से है वर्तमान॥ 04 ॥

संहितापाठ

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता।D4 ॥

(ऋषि - वामदेव, देवता - इन्द्र, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- कया किसके द्वारा (किस उपाय द्वारा) **चित्र** चेतन, अद्भुत, आश्चर्यजनक, विचित्र, चित्र, रूपाकार **सदा** सदा **वृधः** वृद्धि करने वाला **ऊती** रक्षा करने वाला (परमात्मा) **नः** हमारा **सखा** सखा **आ भुवत्** हुआ। **कया** किस **शचिष्ठया** वाणी द्वारा **वृता** वर्तमान (है)॥ 04 ॥

भावार्थ :- जिस उपाय से परमात्मा हमारा मित्र बन जाता है तथा जिस वाणी से वह हमारे जीवन में इस रूप में वर्तमान रहता है, वह यही वेदवाणी है, उसे जानना चाहिए॥ 04 ॥

पदार्थ :- कया = किसके द्वारा (सर्वनाम)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **चित्र** = अद्भुत्, आश्चर्यजनक, विचित्र, चित्र, रूपाकार (चित् - चेतन होना। चित्र - चित्र बनाना, आश्चर्य करना, आश्चर्य से देखना)। **आ** = समन्तात्, सम्पूर्णतः (उपसर्ग)। **भुवत्** = हुआ (भू - होना)। **ऊती** = शब्द करने वाला, रक्षा करने वाला (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, अव - रक्षा करना)। **सदा** = सदा, सर्वदा, सदैव, सर्वकाल में (अव्यय)। **वृधः** = वृद्धि (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। **सखा** = सखा (सख् - मित्र होना)। **कया** = किसके द्वारा (सर्वनाम)। **शचिष्ठया** = वाणी द्वारा (शच - स्पष्ट बोलना)। **वृता** = वर्तमान (वृत - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, रुचना, रुचि होना, रुचि लेना, होना)॥ 04 ॥

152. कः त्वा सत्यो मदानाम्, मंहिष्ठो मत्सत् अन्धसः।
दृढा चित् आरुजे वसु॥ 05॥

काव्यानुवाद

अन्धकार में कौन तुम्हें, आनन्द महत् आनन्दित कर।
दृढ़ चित् आरोग्य वास करता॥ 05॥

संहितापाठ

कस्त्वा सत्यो मदानां मँहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु॥5॥

(ऋषि - वामदेव, देवता - इन्द्र, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- त्वा तुमको **कः** कौन **सत्यो** सत्य **दृढा** दृढ़ **चित्** भी **आरुजे** आरोग्यकारी **वसु** वसु **मदानाम्** मदों में, आनन्दों में **मंहिष्ठो** महानतम, सर्वाधिक प्रकाशित, सबसे बड़ा **अन्धसः** प्राणवान अथवा अन्धकार से **मत्सत्** आनन्दित करता है॥ 05॥

भावार्थ :- मद् धातु का अर्थ आनन्द होना है। आनन्दों में जो महानतम तथा सत्य आनन्द है, वही वास्तव में हमें आनन्द दे सकता है, शेष क्षणिक आनन्द उसका आभास मात्र हैं। अन्धसः में अन् (प्राण होना) धातु मानकर इसका अर्थ प्राणवान् किया गया है। अन्ध् धातु मानने पर इसका अर्थ अन्धकार से (अपादान, दूर) होगा। इससे अन्धकार से दूर कर महानतम आनन्द देने का भाव ले सकते हैं॥ 05॥

पदार्थ :- कः = कौन (सर्वनाम)। **त्वा** = तुमको, तुम्हें, तुम्हारे (सर्वनाम)। **सत्यो** = सत्य (सत् - सत्य होना, अस्तित्व होना)। **मदानाम्** = मदो में (मद - तृप्त करना, समाधान करना)। **मंहिष्ठो** = महानतम, सर्वाधिक प्रकाशित, सबसे बड़ा (महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। **मत्सत्** = आनन्दित हो (मद् - आनन्द होना, हर्षित होना)। **अन्धसः** = प्राणवान्, अन्धाकार से (अन् - प्राणवान् होना, अन्ध् - अन्धकार होना, अन्धा होना)। **दृढा** = दृढ़ (दृढ - दृढ़ होना, धारण करना, सहना, समर्थ होना)। **चित्** = भी (अव्यय)। **आरुजे** = आरोग्यकारी (रुज - रोग होना, आ-रुज - आरोग्य होना)। **वसु** = वसु (वस - निश्चल होना, निःछल होना, निवास करना, पोशाक धारण करना)॥ 05॥

153. अभी षु णः सखीनाम्, अविता जरितृणाम्।
शतम् भवासि ऊतिभिः॥ 06॥

काव्यानुवाद

हे मित्रों, वृद्धों के रक्षक, हम सबको सभी ओर उत्तम।
रक्षण-वाणी द्वारा शत-गुण॥ 06॥

संहितापाठ

अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम्। शतम्भवास्यूतिभिः॥ 06॥

ऋषि - वामदेव, देवता - इन्द्र, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- णः (नः) हमारे **जरितृणाम्** जरितृ, वृद्ध, बड़े, परिपक्व **सखीनाम्** मित्रों के **अभी (अभि)** सभी ओर, भलीभाँति **अविता** रक्षक (परमात्मन्), **ऊतिभिः** रक्षाओं द्वारा **शतम्** सौ **भवासि** होते हों॥ 06॥

भावार्थ :- जरितृ का भावार्थ अनेक विद्वानों ने स्तोता माना है। जृ धातु का अर्थ वृद्ध होना, वृद्धि करना, बढ़ना है। वृद्ध, वर्धित, परिपक्व होने के लिए आयु या जीवन काल ही आधार नहीं है, स्तुति-उपासना करना अनिवार्य है। स्तुति-उपासना भी मित्रों के साथ करने का सन्देश स्पष्ट है। अकेले यजन नहीं हो सकता है। सामूहिक जीवन ही श्रेयस्कर है। यदि हम समूह के साथ स्तुति-उपासना करते हैं तो परमात्मा भी सौ अर्थात् अनेक उपायों से हमारी अभिवृद्धि तथा पालन-रक्षण करते हैं॥ 06॥

पदार्थ :- अभी (अभि) = सभी ओर, भलीभाँति (उपसर्ग)। **षु (सु)** = उत्तम, अच्छा (सर्वनाम)। **णः (नः)** = हमारा, हमारे लिए, हमको

(सर्वनाम)। **सखीनाम्** = मित्रों के (सख् - मित्र होना)। **अविता** = रक्षक (अव् - रक्षा करना)। **जरितृणाम्** = जरितृ, वृद्ध, परिपक्व जनों के (जृ - वृद्ध होना, वृद्धि करना, बढ़ना, जीर्ण होना)। **शतम्** = सौ (संख्या)। **भवासि** = होते हों (भू - होना)। **ऊतिभिः** = रक्षाओं, वाणियों द्वारा (ऊ - पालन, रक्षण, शब्द करना। अव् - रक्षा-पालन करना) **।। 06 ।।**

154. कया त्वम् नः ऊत्या, अभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर ।। 07 ।।

काव्यानुवाद

किस रक्षण, वाणी से हमको, आनन्द-वृष्टि करते स्वामी।
किन स्तुतियों से पूर्ण भरण करते ।। 07 ।।

संहितापाठ

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ।। 07 ।।

(ऋषि- दध्यङ् आथर्वण, देवता-इन्द्र, छन्द- गायत्री, स्वर-षड्ज)

मन्त्रार्थ :- त्वम् तुम **वृषन्** शक्तिशाली, वर्षा करने वाले **कया** किस **ऊत्या** वाणी, रक्षण, विश्वास द्वारा **नः** हमारे लिए **मन्दसे** आनन्दित होते हो, **कया** किसके द्वारा **स्तोतृभ्यः** स्तुतियों के लिए **आ** सम्यक्, समन्तात् **भर** पूर्ण करते हो **।। 07 ।।**

भावार्थ :- हम परमात्मा को विश्वास और वाणी से ही प्रसन्न कर सकते हैं। हमारे पास जो कुछ भी है, परमात्मा का ही दिया हुआ है, अतः किसी वस्तु से तो प्रसन्न करने की बात सोचना भी उचित नहीं है **।। 07 ।।**

पदार्थ :- कया = किसके द्वारा (सर्वनाम)। **त्वम्** = तुम (सर्वनाम)। **नः** = हमारा, हमारे लिए (सर्वनाम)। **ऊत्या** = वाणी द्वारा (ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना)। **अभि** = सभी ओर (उपसर्ग)। **प्र** = अधिक (उपसर्ग)। **मन्दसे** = आनन्दित होते हो (मन्द् - स्तुति करना, तुष्ट करना, आनन्द

करना, उन्मत्त होना)। **वृषन्** = शक्तिशाली (वृष - वर्षा करना, सिञ्चन करना, प्रोक्षण करना, विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, प्रजोत्पत्ति करने में समर्थ होना)। **स्तोतृभ्यः** = स्तुतियों के लिए (स्तु - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **आ** = सम्यक्, समन्तात् (उपसर्ग)। **भर** = पूर्ण करो (भृ - पूर्ण करना, भरना) **।। 07 ।।**

सूक्त - 3

155. इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शम् नो अस्तु द्विपदे, शम् चतुष्पदे ।। 08 ।।

काव्यानुवाद

वह इन्द्र विश्व में राज करे। कल्याण, शान्ति हम सबका हो।
द्विपद में और चतुष्पद में ।। 08 ।।

संहितापाठ

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।। 08 ।।

(ऋषि - दध्यङ् आथर्वण, देवता - इन्द्र, छन्द - गायत्री, स्वर -षड्ज)

मन्त्रार्थ :- इन्द्रो इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान् **विश्वस्य** विश्व में **राजति** प्रकाशित होता है। **नो** हमारे **द्विपदे** द्विपद के लिए **शम्** कल्याणकारी, **चतुष्पदे** चतुष्पद के लिए **शम्** कल्याणकारी **अस्तु** हो **।। 08 ।।**

भावार्थ :- इन्द्र का अर्थ है परम ऐश्वर्यवान्। परमात्मा को इन्द्र कहा गया है। वह द्विपद अर्थात् दो पैरों वाले मनुष्य तथा चतुष्पद अर्थात् चार पैरों वाले पशुओं के लिए कल्याणकारी हो। सभी मनुष्यों तथा पशुओं के लिए कल्याण की कामना की गयी है **।। 08 ।।**

पदार्थ :- इन्द्रो = इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **विश्वस्य** = विश्व का, सभी का (सर्वनाम)। **राजति** = प्रकाशित होता है (राज् - चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना)। **शम्** = कल्याणकारी

(शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **अस्तु** = हो (अस् - होना)। **द्विपदे** = द्विपद के लिए (द्वि - दो (संख्या), पद - स्थानान्तर करना)। **शम्** = कल्याणकारी (शम् - कल्याण होना, सुख होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **चतुष्पदे** = चार पैर वाले के लिए (चतुः - चार, पद - स्थानान्तर करना)॥ 08 ॥

156. शम् नो मित्रः शम् वरुणः, शम् नो भवतु अर्यमा।
शम् नो इन्द्रो बृहस्पतिः,शम् नो विष्णुः उरुक्रमः ॥ 09 ॥

काव्यानुवाद

वह मित्र शान्ति-कल्याण करे, वह वरुण शान्ति-कल्याण करे।
अर्यमा शान्ति-कल्याण करे। वह इन्द्र शान्ति-कल्याण करे।
कल्याण करे वह बृहस्पति, बहु विक्रम वाले विष्णु सदा,
हम सबका ही कल्याण करें॥ 09 ॥

संहितापाठ

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्नो इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ 09 ॥

(ऋषि - दध्यङ् आथर्वण, देवता - मित्रादयो लिङ्गोक्ता,
छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- **नो** हमारे लिए **मित्रः** मित्र **शम्** कल्याणकारी, **वरुणः** वरुण **शम्** कल्याणकारी, **नो** हमारे लिए **अर्यमा** अर्यमा, प्रगति **शम्** कल्याणकारी, **नो** हमारे लिए **इन्द्रो** इन्द्र, **बृहस्पतिः** बृहत्, महान् पति, स्वामी **शम्** कल्याणकारी, **नो** हमारे लिए **उरुक्रमः** उरुक्रम **विष्णुः** विष्णु

शम् कल्याणकारी **भवतु** हो जायें॥ 09 ॥

भावार्थ :- परमात्मा हमारा मित्र है, वरणीय है, अर्यमा अर्थात् प्रगति है, इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् है, बृहस्पति अर्थात् बृहत्, महान् स्वामी है, उरुक्रम अर्थात् पराक्रमी तथा विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक है। विभिन्न परिस्थितियों में वह विभिन्न गुणों, रूपों द्वारा हमारा कल्याण करता है॥ 09 ॥

पदार्थ :- शम् = कल्याणकारी (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **मित्रः** = मित्र (मिद् - स्नेह करना)। **शम्** = कल्याणकारी (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **वरुणः** = वरुण (वृ - वरण करना, पालन करना)। **शम्** = कल्याणकारी (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **भवतु** = हो, हो जाये (भू - होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना)। **अर्यमा** = अर्यमा, प्रगति (ऋ - जाना, पाना, मिलाना)। **शम्** = कल्याणकारी (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **इन्द्रो** = परम ऐश्वर्यवान् (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **बृहस्पतिः** = बृहत्, महान् पति, स्वामी (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **शम्** = कल्याणकारी (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **विष्णुः** = व्यापक (विष् - व्याप्त होना)। **उरुक्रमः** = उरुक्रम (उरु - बहुत (अव्यय), क्रम - चलना, रक्षा करना, बढ़ना)॥ 09 ॥

157. शम् नो वातः पवताम्, शम् नः तपतु सूर्यः।
शम् नः कनिक्रदत् देवः, पर्जन्यो अभि वर्षतु॥ 10॥

काव्यानुवाद

कल्याण-शान्ति, पावनता को, वह वात प्रदान करे हमको।
कल्याण हेतु तप करे सूर्य, कल्याण हेतु हैं व्याप्त देव।
पर्जन्य करें वर्षा स्वामी॥ 10॥

संहितापाठ

शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्य्यः।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु॥ 10॥

(ऋषि - दध्यङ् आथर्वण, देवता - वातादयो, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- शम् कल्याणकारी, सुखद **वातः** वात **नो** हमें **पवताम्** पवित्र करे। **शम्** कल्याणकारी, सुखद **सूर्यः** सूर्य **नः** हमारे लिए **तपतु** तपे। **शम्** कल्याणकारी, सुखद **देवः** देव **नः** हमारे लिए **कनिक्रदत्** व्याप्त हों, प्रकाश करें, गतिमान् हों। **पर्जन्यो** पर्जन्य, जनों को पूर्ण करने वाले, (बादल, मेघ) **अभि** सभी ओर **वर्षतु** वर्षा करे॥ 10॥

भावार्थ :- परमात्मा की उपासना से प्रकृति हम सबके लिए कल्याणकारी, सुखद हो। हमें प्रकृति का अनुदान समुचित रूप से प्राप्त हो। इसके लिए हमें भी प्रकृति का संरक्षण करना चाहिए॥ 10॥

पदार्थ :- शम् = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो =** हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **वातः =** वात (वात् - सुखी होना, सेवा करना, जाना)। **पवताम् =** पवित्र करे (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **शम् =** कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना,

स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो =** हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **तपतु =** तपे (तप - तप्त होना, तप्त करना, जलन होना)। **सूर्यः =** ऐश्वर्यशाली, प्रकाशवान्, सूर्य (सुर् - ऐश्वर्य, प्रकाश होना)। **शम् =** कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो =** हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **कनिक्रदत् =** व्याप्त हों, प्रकाश करें, गतिमान् हों (कन - प्रकाशित होना, जाना, व्याप्त होना, कृ - करना)। **देवः =** देव (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **पर्जन्यो =** पर्जन्य, जनों को पूर्ण करने वाले (पृ - पूर्ण करना, भरना, जन् - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना)। **अभि =** सभी ओर (उपसर्ग)। **वर्षतु =** बरसो, वर्षा करो (वर्ष - बरसना, हिंसा करना, क्लेश देना, उत्पीड़न करना)॥ 10॥

158. अहानि शम् भवन्तु नः, शम् रात्रीः प्रतिधीयताम्।
शम् नः इन्द्राग्नी भवताम् अवोभिः,
शम् नः इन्द्रा वरुणा रातहव्या॥
शम् नः इन्द्रापूषणा वाजसातौ,
शम् इन्द्रासोमा सुविताय शम् योः॥ 11॥

काव्यानुवाद

दिन शान्तिमयी हो हम सबका, रात्रियाँ शान्ति-कल्याण करें।
वे इन्द्र, अग्नि बन युगल-रूप, रक्षाओं से कल्याण करें।
वह इन्द्र, वरुण भी इसी भाँति, हो रातहव्य कल्याण करें।
वे प्रगति-प्रदाता इन्द्र तथा पूषा मिलकर कल्याण करें।
उत्तम पालन रक्षण कर्ता, वे इन्द्र-सोम कल्याण करें॥ 11॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम्।
शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥11॥

(ऋषि - दध्यङ् आथर्वण, देवता - लिङ्गोक्ता, छन्द - अति शक्वरी, स्वर - पञ्चम)

मन्त्रार्थ :- **नः** हमारे लिए **अहानि** दिन **शम् शम्** = कल्याणकारी, सुखद **भवन्तु** हों। **रात्रीः** रात्रि **शम्** कल्याण, सुख **प्रतिधीयताम्** धारण करायें, प्रदान करें। **इन्द्राग्नी** इन्द्र तथा अग्नि **नः** हमारे लिए **अवोभिः** रक्षण द्वारा **शम्** कल्याणकारी, सुखद **भवताम्** हों। **रातहव्या** प्रदत्त दान **इन्द्रावरुणा** इन्द्र तथा वरुण **नः** हमारा **शम्** कल्याण, सुख (करे)। **वाजसातौ** प्रगतिसेवी, प्रगतिदाता **इन्द्रापूषणा** इन्द्र तथा पूषा **नः** हमारे लिए **शम्** कल्याणकारी, सुखद (हों)। **इन्द्रासोमा** इन्द्र तथा सोम **सुविताय** सुवित के लिए, उत्तम, विशेष विस्तार, संरक्षण के लिए **शम्** कल्याणकारी, सुखद **योः** मिलाने वाला (हों) **॥ 11 ॥**

भावार्थ :- परमात्मा की उपासना से हमारे लिए प्रतिपल सुखद कल्याणकारी बन जाता है। रात्रि शब्द रा धातु से निष्पन्न होता है। रा धातु का अर्थ है - देना, मिल जाना। लोक व्यवहार में रात्रि का भावार्थ है विश्राम देने वाला, निद्रा देने या मिलने वाला समय **॥ 11 ॥**

पदार्थ :- **अहानि** = दिन (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना)। **शम्** = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **भवन्तु** = हों, हो जायें (भू - होना)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **शम्** = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट

करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **रात्रीः** = रात्रि, अर्थात् विश्राम देने वाला, निद्रा देने या मिलने वाला समय (रा - देना, मिल जाना)। **प्रति** = सम्बन्ध में, विषय में। **धीयताम्** = धारण करायें, प्रदान करें (धी - धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना)। **शम्** = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **इन्द्राग्नी** = इन्द्र और अग्नि (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। **भवताम्** = हो (भू - होना)। **अवोभिः** = रक्षाओं द्वारा (अव् - रक्षा करना)। **शम्** = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **इन्द्रावरुणा** = इन्द्र और वरुण (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, वृ - वरण करना)। **रातहव्या** = रातहवि, प्रदत्त दान, दान योग्य (रा - देना, मिल जाना, हु - देना, आदान-प्रदान करना)। **शम्** = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **इन्द्रापूषणा** = इन्द्र और पूषा (इन्द - परम ऐश्वर्य होना, पूष- पोषण करना)। **वाजसातौ** = प्रगतिसेवी, प्रगतिदाता (वज् - जाना, जानना, तैयार करना, सन् - सेवा करना, दान करना, मिलाना, अलग करना)। **शम्** = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **इन्द्रासोमा** = इन्द्र और सोम (इन्द - परम ऐश्वर्य होना, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **सुविताय** = सुवित के लिए, उत्तम, विशेष विस्तार,

संरक्षण के लिए (सु - अच्छा, सुन्दर, वि - विशेष, ताय - संरक्षण करना, फैलाना)। **शम्** = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **योः** = मिलने वाला (यु - मिलना, मिलाना, अलग करना)॥ 11 ॥

159. शम् नो देवीः अभिष्टये, आपो भवन्तु पीतये।
शम् योः अभि स्त्रवन्तु नः ॥ 12 ॥

काव्यानुवाद

देवी अभीष्ट के लिए हमें, दें शान्ति, दिव्य कल्याण करें,
आपः हों पान हेतु स्वामी, सब ओर शान्ति ही शान्ति झरें ॥ 12 ॥

संहितापाठ

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्त्रवन्तु नः ॥12 ॥

(ऋषि - दध्यङ् आथर्वण, देवता - आपो, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- देवीः देवी **आपो** आप, व्याप्त, व्यापक **नो** हमारे **अभिष्टये** अभीष्ट के लिए **पीतये** पीने के लिए **शम्** सुखद, कल्याणकारी **भवन्तु** हों। **नः** हमारे लिए **शम्** सुखद, कल्याणकारी **योः** मिलाने वाला **अभि स्त्रवन्तु** अभिसिञ्चन करें ॥ 12 ॥

भावार्थ :- दिव्य शक्तियाँ हमारे अभीष्ट के लिए सुखद, कल्याणकारी हों, प्रकृति भी हमारे लिए कल्याणकारी हो, ऐसी भावना है। प्रकृति के संरक्षण से ही ऐसा सम्भव है ॥ 12 ॥

पदार्थ :- शम् = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **देवीः** = दिव्यगुणयुक्त (दिव् - तेजस्वी होना,

चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **अभिष्टये** = अभीष्ट के लिए (इष् - इच्छा करना, चाहना, जाना)। **आपो** - व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **भवन्तु** = हों, हो जायें (भू - होना)। **पीतये** = पान के लिए (पी - पीना, प्राशन करना)। **शम्** = कल्याणकारी, सुखद (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, सुख होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **योः** = मिलने वाला (यु - मिलना, मिलाना, अलग करना)। **अभि** = सभी ओर (सर्वनाम)। **स्त्रवन्तु** = अभिसिञ्चन करें (स्त्रु - जाना, चलना, बहना, टपकना)। **नः** = हमको, हमारे लिए ॥ 12 ॥

सूक्त - 4

160. स्योना पृथिवि नो भव, अनृक्षरा निवेशनी।
यच्छ आ नः शर्म सप्रथाः ॥ 13 ॥

काव्यानुवाद

यह पृथ्वी सुखद, अहिंसक हो, हम सबके हेतु निवेशमयी।
विस्तृत कल्याण प्रदान करे ॥ 13 ॥

संहितापाठ

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा न शर्म सप्रथाः ॥ 14 ॥

(ऋषि - मेधातिथि, देवता - पृथिवी, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- पृथिवि पृथिवी **नो** हमारे लिए **स्योना** सुखद, **अनृक्षरा** अनृक्षरा, अहिंसक, **निवेशनी** निवेशनी, निवेश, प्रवेश देने वाली हो। **नः** हमारे लिए **सप्रथाः** पूर्ण ज्ञान युक्त, विस्तृत **शर्म** सुख **आ** समन्तात्, पूर्णतः **यच्छ** प्रदान करे ॥ 13 ॥

भावार्थ :- यह पृथिवी हमारे लिए सुखद, दुःख रहित, अहिंसक,

निवासयोग्य रहे। पृथिवी को सुखकारी बनाये रखने के लिए हम भी अहिंसक रहें, प्रकृति संरक्षण का ध्यान रखें। प्रकृति को हानि पहुँचाने के पाप से दूर रहें, प्रकृति को नष्ट न करें॥ 13 ॥

विशेष :- वास्तविक सुख पूर्ण ज्ञान होने पर ही हो सकता है। अज्ञानी रहने पर सुख स्थायी नहीं हो सकता है। सप् धातु का अर्थ पूर्ण ज्ञान होना है तथा प्रथ धातु का अर्थ विस्तृत होना है। श्लेष अलंकार से दोनो ही अर्थ लेना उचित है॥ 13 ॥

पदार्थ :- स्योना = सुखकारी (स्योन् - सुख होना, सुख देना)। **पृथिवि** = विस्तार, पृथ्वी (पृथ - विस्तार होना, फैलाना, फेंकना)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **भव** = हो (भू - होना)। **अनृक्षरा** = अहिंसक (अन् - नहीं, ऋक्ष - मार डालना, दुःख देने का यत्न करना)। **निवेशनी** = निवेशनी, निवेश करने वाली (नि - निश्चित, निरन्तर, विश - प्रवेश करना, घुसना, भीतर जाना, धंसना)। **यच्छ** = दो, प्रदान करो (यच्छ - देना)। **आ** = सम्यक् रूप से, समन्तात् (उपसर्ग)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **शर्म** = सुख (शर्म् - सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। **सप्रथाः** = सप्रथा, पूर्ण ज्ञान युक्त, विस्तृत (स - सहित, साथ। सप् - पूर्ण ज्ञान होना। प्रथ - विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)॥ 13 ॥

161. आपो हि ष्ठा मयोभुवः, ता नः ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥ 14 ॥

काव्यानुवाद

वह आपः है गति-ज्ञान रूप, वे हमें ऊर्जा धारण कर,
देखते महत् वाणी के हित॥ 14 ॥

संहितापाठ

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥14 ॥

(ऋषि - सिन्धुद्वीप, देवता - आपो, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- आपो आपः, व्याप्त, व्यापक **हि** ही **मयोभुवः** प्रगतिशील होकर **ष्ठा** स्थित है, **ता** वह **महे** महत् के लिए **रणाय** रण के लिए, शब्द के लिए, **चक्षसे** देखने के लिए, कहने के लिए **नः** हमारे लिए **ऊर्जे** ऊर्जा **दधातन** धारण करे, प्रदान करे॥ 14 ॥

भावार्थ :- अप् धातु का अर्थ पालन करना होने से आप शब्द का अर्थ पालन करने वाली माता तथा व्यापक आध्यात्मिक अर्थ में परमात्मा भी है। आप् धातु का अर्थ व्याप्त होना होने से भी आपः का अर्थ परमात्मा ग्रहण किया जाता है। मय धातु का सामान्य अर्थ गति है। गति अर्थ वाली धातु का तीन प्रकार का लक्ष्यार्थ ज्ञान, गमन, प्राप्ति सर्वत्र ग्राह्य है। मयोभुवः का अर्थ गतिशीलता के साथ ही ज्ञान पाना भी है। रण धातु का अर्थ शब्द करना है। शब्द को देखने के संदेश को वेदवाणी का दृष्टा होने की भावना के रूप में समझना चाहिए॥ 14 ॥

पदार्थ :- आपो = व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **हि** = ही (अव्यय)। **ष्ठा** = स्थित (स्था - स्थित होना, ठहरना)। **मयोभुवः** = प्रगतिशील होकर (मय - जाना, स्थानान्तर करना)। **ता** = वे (सर्वनाम)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **ऊर्जे** = ऊर्जा के लिए (ऊर्ज् - बल होना, प्राण होना, प्राणवान् करना)। **दधातन** = धारण करे, प्रदान करे (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **महे** = महत् के लिए (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **रणाय** = रण, शब्द के लिए (रण - शब्द करना, जाना)। **चक्षसे** = देखने के लिए (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)॥ 14 ॥

162. यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयत इह नः।
उशतीः इव मातरः॥ 15 ॥

काव्यानुवाद

जो दिव्य तुम्हारा शिवतम रस, उसका सेवन दें हमें यहाँ।
स्नेही माताओं के समान॥ 15॥

संहितापाठ

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।उशतीरिव मातरः।॥15॥

(ऋषि - सिन्धुद्वीप, देवता - आपो, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- यो जो **वः** तुम्हारा **शिवतमो** अत्यन्त कल्याणकारी **रसः** रस (है), **तस्य** उसका **इह** यहाँ **नः** हमको **उशतीः** चाहने वाली **मातरः** माता **इव** के समान **भाजयत** सेवन करायें॥ 15॥

भावार्थ :- परमात्मा तथा प्रकृति की उपासना से हमारे लिए कल्याणकारी पोषण प्राप्त होता है॥ 15॥

विशेष :- उशती पद माता का विशेषण है। उश्-वश् धातु का अर्थ चाहना है। माता पुत्र को चाहती है, स्नेह करती है, पोषण करती है। उसी भाँति परमात्मा हमें अपने शिवतम अर्थात् अत्यन्त कल्याणकारी रस का सेवन करायें, यही भावना है॥ 15॥

पदार्थ :- यो = जो (सर्वनाम)। **वः** = तुम लोग, तुम्हारा, तुमको, तुम सबका, तुम सबको, तुम सबके लिए (सर्वनाम)। **शिवतमो** = अत्यन्त कल्याणकारी (शिव् - कल्याण करना)। **रसः** = रस (रस - स्वाद लेना, चखना, प्रीति करना, प्यार करना)। **तस्य** = उसका (सर्वनाम)। **भाजयत** = सेवन करायें (भज - सेवा करना)। **इह** = इसमें, यहां (सर्वनाम)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **उशतीः** = उशती (उश - इच्छा करना, चाहना)। **इव** = के समान (अव्यय)। **मातरः** = माता (मा - मान करना, मापना)॥ 15॥

163. तस्मा अरम् गमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥ 16॥

काव्यानुवाद

पर्याप्त ज्ञान, गति तुमको दे, जिसके निवास से प्रीति करें।
आपः हम सबके हेतु सृजन॥ 16॥

संहितापाठ

तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।॥16॥

(ऋषि - सिन्धुद्वीप, देवता - आपो, छन्द - गायत्री, स्वर - षड्ज)

मन्त्रार्थ :- वो तुम्हारे लिए **तस्मा** उससे **अरम्** पर्याप्त **गमाम** जायें, प्राप्त करें, **यस्य** जिसके **क्षयाय** निवास के लिए **जिन्वथ** प्रीति करो। **च** और **आपो** आप, व्यापक **नः** हमारे लिए **जनयथा** उत्पन्न करे॥ 16॥

भावार्थ :- आपः अर्थात् परमात्मा, माता, जल के रूप में तीनों अर्थों में सन्देश स्पष्ट है कि आधा-अधूरा नहीं पर्याप्त प्रयास होना चाहिए। परमात्मा की उपासना हो, परिवार हो अथवा प्रकृति हो, पूरे मन से पर्याप्त उपासना-सेवा करना आवश्यक है, तभी प्रयास फलदायी होते हैं॥ 16॥

पदार्थ :- तस्मा = उससे (सर्वनाम)। **अरम्** = अलम्, पर्याप्त (अव्यय)। **गमाम** = जायें (गम् - जाना)। **वो** = तुम लोग, तुम्हारा, तुमको, तुम सबका, तुम सबको, तुम सबके लिए (सर्वनाम)। **यस्य** = जिसके (सर्वनाम)। **क्षयाय** = निवास के लिए (क्षि - निवास करना, जाना, जानना)। **जिन्वथ** = प्रीति करो (जिन्व् - प्रीति करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। **आपो** = व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **जनयथा** = उत्पन्न करे (जन् = उत्पन्न करना)। **च** = और (अव्यय)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)॥ 16॥

164. द्यौः शान्तिः, अन्तरिक्षम् शान्तिः,
पृथिवी शान्तिः, आपः शान्तिः।
ओषधयः शान्तिः, वनस्पतयः शान्तिः,
विश्वे देवाः शान्तिः, ब्रह्म शान्तिः।
सर्वम् शान्तिः, शान्तिः एव शान्तिः,
सा मा शान्तिः एधिः॥ 17॥

काव्यानुवाद

रहे देव द्यौ शान्तिप्रदायक, अन्तरिक्ष हो शान्ति प्रदाता।
पृथिवी शान्ति प्रदान करे, हो आपः शान्ति विधाता।
ओषधियाँ हो शान्ति-कारिणी, वनस्पति शान्ति करायें।
विश्वदेव दें शान्ति, ब्रह्म भी, शान्ति सुधा सरसायें।
सभी शान्ति दें, शान्ति-शान्ति हो। मुझे शान्ति दें स्वामी॥ 17॥

संहितापाठ

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ 17॥

(ऋषि- दध्यङ् आथर्वण, देवता- ईश्वर, छन्द- शक्वरी, स्वर- धैवत)

मन्त्रार्थ :- द्यौः द्यौ, प्रकाशमान **शान्तिः** शान्ति (दे), **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष **शान्तिः** शान्ति (दे), **पृथिवी** पृथिवी **शान्तिः** शान्ति (दे)। **आपः** व्याप्त, व्यापक **शान्तिः** शान्ति (दे)। **ओषधयः** ओषधयाँ **शान्तिः** शान्ति (दें), **वनस्पतयः** वनस्पतियाँ **शान्तिः** शान्ति (दें), **विश्वे देवाः** विश्वदेव, सभी देवगण **शान्तिः** शान्ति (दें), **ब्रह्म** ब्रह्म **शान्तिः** शान्ति (दे), **सर्वम्** सभी **शान्तिः** शान्ति (दें), **शान्तिः** शान्ति **एव** ही **शान्तिः** शान्ति (दें), **सा** वह

मा मुझको **शान्तिः** शान्ति **एधिः** बढ़ाये, प्रदान करें॥ 17॥

भावार्थ :- ब्रह्म के साथ ही सम्पूर्ण प्रकृति हमारे लिए शान्तिप्रद हो। द्यौ अर्थात् प्रकाशमान, अन्तरिक्ष, पृथिवी, आपः अर्थात् व्याप्त, व्यापक, ओषधयाँ, वनस्पतियाँ, विश्वदेव अर्थात् सभी देवगण शान्ति प्रदान करें। सभी शान्ति दें, शान्ति ही शान्ति हो, यही भावना है॥ 17॥

पदार्थ :- द्यौः = प्रकाशवान्, विद्वान् (द्युः - आगे जाना, प्रकाश होना, जानना)। **शान्तिः =** शान्ति (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **अन्तरिक्षम् -** अन्तरिक्ष (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **शान्तिः =** शान्ति (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **पृथिवी =** पृथ्वी, विस्तृत भूमि (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। **शान्तिः =** शान्ति (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **आपः =** व्याप्त, व्यापक (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **शान्तिः =** शान्ति (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **ओषधयः =** ओषधयाँ (उषध् = जानना, रोगमुक्त करना, चिकित्सा करना)। **शान्तिः =** शान्ति (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **वनस्पतयः =** वनस्पतियाँ (वन् - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **शान्तिः =** शान्ति (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)।

विश्वेदेवाः = विश्वदेव, सभी देवगण (विश्व - सभी, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **शान्तिः** = शान्ति (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **ब्रह्म** = बृहत्, परमात्मा, वेद (बृह् - बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **शान्तिः** = शान्ति (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **सर्वम्** = सब, सभी (सर्वनाम)। **शान्तिः** = शान्ति (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **शान्तिः** = शान्ति (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **एव** = ही (अव्यय)। **शान्तिः** = शान्ति (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **सा** = वह (सर्वनाम)। **मा (माम्)** = मुझको (सर्वनाम)। **शान्तिः** = शान्ति (शम् - कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **एधिः** = बढ़ाये, प्रदान करें (एध - बढ़ना) **॥ 17 ॥**

सूक्त - 5

165. दृते दृंह मा, मित्रस्य मा चक्षुसा,
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्य अहम् चक्षुषा, सर्वाणि भूतानि समीक्षे,
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ 18 ॥

काव्यानुवाद

हे आदृत, सुदृढ़ करो हमको, सब मित्र दृष्टि देखें हमको।
मैं सबमें मित्र दृष्टि रखता, देखता मित्र की दृष्टि सदा ॥ 18 ॥

संहितापाठ

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ 18 ॥

(ऋषि- दध्यङ् आथर्वण, देवता- ईश्वर, छन्द- जगती, स्वर- निषाद)

मन्त्रार्थ :- दृते आदरणीय, **मा** मुझे **दृंह** दृढ़ करो। **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूत, उत्पन्न सृष्टि, प्राणी **मा** मुझे **मित्रस्य** मित्र की **चक्षुषा** दृष्टि से **समीक्षन्ताम्** देखें। **अहम्** मैं **मित्रस्य** मित्र की **चक्षुषा** दृष्टि से **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूतों, उत्पन्न सृष्टि, प्राणियों को **समीक्षे** देखता हूँ। **मित्रस्य** मित्र का **चक्षुषा** = दृष्टि से, स्पष्ट वाणी से **समीक्षामहे** = देखते हैं **॥ 18 ॥**

भावार्थ :- परमात्मा ही हमारे लिए परम आदरणीय है। वह हमें मित्र की दृष्टि से देखे तो हमारा कल्याण हो जाये। यह हम सभी चाहते हैं। वेद का निर्देश है कि हम भी सभी को मित्र की दृष्टि से देखें अर्थात् सभी के प्रति स्नेह-सहयोग की भावना रखें तो हमें भी परमात्मा की मित्र-दृष्टि का लाभ मिलता रहेगा **॥ 18 ॥**

पदार्थ :- दृते = आदरणीय (दृ - आदर करना)। **दृंह** = दृढ़ करो, बढ़ाओ (दृंह् - बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। **मा (माम्)** = मुझको (अव्यय, सर्वनाम)। **मित्रस्य** = मित्र का (मिद् - स्नेह करना, प्रीति करना)। **मा (माम्)** = मुझको (अव्यय, सर्वनाम)। **चक्षुषा** = दृष्टि से, स्पष्ट वाणी से (चक्ष् - देखना, स्पष्ट कहना)। **सर्वाणि** = सभी (सर्वनाम)। **भूतानि** = भूतों को, प्राणियों को (भू - होना)। **समीक्षन्ताम्** = देखें (सम् - सम्यक्, ईक्ष- देखना)। **मित्रस्य** = मित्र का (मिद् - स्नेह करना, प्रीति करना)। **अहम्** = मैं (सर्वनाम)। **चक्षुषा** = दृष्टि से, स्पष्ट वाणी से (चक्ष् - देखना,

स्पष्ट कहना, बोलना)। **सर्वाणि** = सभी (सर्वनाम)। **भूतानि** = भूतों (प्राणियों) को (भू - होना)। **समीक्षे** = देखें (सम् - सम्यक्, ईक्ष- देखना)। **मित्रस्य** = मित्र का (मिद् - स्नेह करना, प्रीति करना)। **चक्षुषा** = दृष्टि से, स्पष्ट वाणी से (चक्ष् - देखना, स्पष्ट कहना, बोलना)। **समीक्षामहे** = देखते हैं (सम् - सम्यक्, ईक्ष - देखना)॥ 18 ॥

166. दृते दृंह मा। ज्योक् ते सन्दृशि जीव्यासम्॥
ज्योक् ते सन्दृशि जीव्यासम्॥ 19 ॥

काव्यानुवाद

हे आदृत, सुदृढ़ करो हमको, हम चिरजीवन पायें स्वामी,
तेरी ही सम्यक् दृष्टि तले॥ 19 ॥

संहितापाठ

दृते दृꣳह मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं। ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥19

(ऋषि - दध्यङ् आथर्वण, देवता - ईश्वर, छन्द -गायत्री, स्वर-षड्ज)

मन्त्रार्थ :- दृते आदरणीय, **मा** मुझे **दृंह** दृढ़ करो। **ते** तुम्हारी **सन्दृशि** सम्यक् दृष्टि में **ज्योक्** ज्योक्, चिरम्, क्षिप्र, निकट **जीव्यासम्** जीवन पायें॥ 19 ॥

भावार्थ :- परमात्मा की सम्यक् दृष्टि में रहकर अर्थात् उसके अनुशासन का पालन करते हुए हम उसके निकट, सानिध्य में दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकते हैं॥ 19 ॥

पदार्थ :- दृते = आदरणीय (दृ - आदर करना)। **दृंह** = दृढ़ करो, बढ़ाओ (दृंह् - बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। **मा (मा - माम्)** = मुझको (अव्यय, सर्वनाम)। **ज्योक्** = चिरम्, सदा (अव्यय)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **सन्दृशि** = सम्यक् दृष्टि में (सम् - सम्यक्, दृश् - देखना)। **जीव्यासम्** = जीवन पायें (जीव् - प्राण धारण करना, जीवन

धारण करना)॥ 19 ॥

167. नमः ते हरसे शोचिषे, नमः ते अस्तु अर्चिषे।
अन्यान् ते अस्मत् तपन्तु हेतयः,
पावको अस्मभ्यम् शिवो भव॥ 20 ॥

काव्यानुवाद

तुम पावन हर के लिए नमन, अर्चन के योग्य, नमन तुमको।
अन्यों को तेरे हेतु तपें, पावक शिव-रूप रहो हमको॥ 20 ॥

संहितापाठ

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे। अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव॥ 20 ॥

(ऋषि - लोपामुद्रा, देवता - अग्नि, छन्द - बृहती, स्वर - मध्यम)

मन्त्रार्थ :- ते तुम, **शोचिषे** पावन के लिए **हरसे** हर के लिए **नमः** नमन, **ते** तुम **अर्चिषे** अर्चनीय के लिए **नमः** नमन **अस्तु** हो। **ते** तुम्हारी **हेतयः** हेतियाँ, गतियाँ, प्रेरणाएँ **अस्मत्** मुझसे **अन्यान्** अन्य को **तपन्तु** तपायें। **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **पावको** पावक, पवित्रकर्ता **शिवो** कल्याणकारी **भव** हो॥ 20 ॥

भावार्थ :- हम परमात्मा को नमन करें, उपासना करें तो उसकी शक्तियाँ हमारे लिए कल्याणकारी बनी रहेंगी। उपासकों से भिन्न जो अन्य लोग हैं, विपरीत स्वभाव वाले दुष्ट जन हैं, उनको ईश्वर की शक्तियाँ अवश्य तपाती हैं, सज्जनों, उपासकों को तो उसकी कृपा ही प्राप्त होती है॥ 20 ॥

पदार्थ :- नमः = नमन (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **हरसे** = हर के लिए (हृ - प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **शोचिषे** = पवित्र के लिए (शुच् - पवित्र होना, पवित्र

करना)। **नमः** = नमन (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **अस्तु** = हो (अस् - होना)। **अर्चिषे** = अर्चनीय के लिए (अर्च - पूजा करना, मान करना, सेवा करना)। **अन्यान्** = अन्य को (सर्वनाम)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **अस्मत्** = हमसे, मुझसे (अपादान, बहुवचन)। **तपन्तु** = तपायें (तप - तप्त होना, तप्त करना, मन से या शरीर में जलना)। **हेतयः** = हेतियाँ, गतियाँ, प्रेरणाएँ (हि - जाना, प्रेरणा करना जानना, पाना)। **पावको** = पावक (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **अस्मभ्यम्** = हमारे लिए (सर्वनाम)। **शिवो** = कल्याणकारी (शिव् - कल्याण करना, शि - तीक्ष्ण करना, पैना करना, पतला करना, सुनना, शी - सोना, शयन करना)। **भव** = हो (भू - होना)॥ **20**॥

168. नमः ते अस्तु विद्युते, नमः ते स्तनयित्नवे,
नमः ते भगवन् अस्तु, यतः स्वः सम् ईहषे॥ 21॥

काव्यानुवाद

विद्युत स्वरूप प्रभु नमन तुम्हें, गर्जन स्वरूप प्रभु नमन तुम्हें,
भगवन् मेरे है नमन तुम्हें, सम्यक् प्रयास से सुख पायें॥ 21॥

संहितापाठ

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे॥ 21॥

(ऋषि - दध्यङ् आथर्वण, देवता - ईश्वर, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- ते तुम्हारे लिए **विद्युते** विद्युत के लिए, **नमः** नमन **अस्तु** हो। **ते** तुम्हारे लिए **स्तनयित्नवे** गर्जन के लिए, **नमः** नमन (हो), **भगवन्** हे भगवन्, **ते** तुम्हारे लिए **नमः** नमन **अस्तु** हो, **यतः** जिससे **स्वः** सृजनशील, सुखकर **समीहषे** सम्यक् प्रयास करते हैं॥ **21**॥

भावार्थ :- प्रकृति परमात्मा का ही स्वरूप है। प्रकृति में परमात्मा की अनुभूति करें, इसी भावना से प्रकृति को नमन, सम्मान, संरक्षण प्रदान करें। सम्यक् प्रयास करें तो हमें भी सुख प्राप्त होगा॥ **21**॥

विशेष :- विद्युत (विद्-युत्) शब्द में विद् धातु स्पष्ट है। विद् (वेत्ति, वेद) का अर्थ जानना, समझना है। विद् (विद्यते) का अर्थ होना, विद्यमान होना, रहना है। विद् (विन्ते) का अर्थ विचार करना है। विद् (वेदयते) का अर्थ चेतन होना, जानना, समझना, समझाना, वास करना, स्थिर रहना होता है। इस प्रकार विद्युत, विद्वान्, विद्या जैसे शब्दों में ये सभी अर्थ मान्य हैं। द्युत् - चमकना, प्रकाश होना है। प्रसंग के अनुसार इनमें कोई एक या अनेक अर्थ स्वीकार किये जा सकते हैं।

पदार्थ :- नमः = नमन (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **अस्तु** = हो (सर्वनाम)। **विद्युते** = विद्युत के लिए (विद् - विद्यमान होना, रहना। वि - विशेष (उपसर्ग)। द्युत् - चमकना, प्रकाश होना)। **नमः** = नमन (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **स्तनयित्नवे** = गर्जन के लिए (स्तन - मेघ की गर्जना होना)। **नमः** = नमन (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **ते** = तुम्हारा, वे, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **भगवन्** = हे भगवन् (भग्-भज् - सेवा करना, देना, दान करना, भजना, भजन करना)। **अस्तु** = हो (अस् - होना)। **यतः** = जिससे (सर्वनाम)। **स्वः** = स्वः (स्वर् = शब्द करना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **समीहषे** = सम्यक् प्रयास करते हैं (सम् - सम्यक्, (उपसर्ग), ईह - इच्छा करना, चेष्टा करना, प्रयत्न करना)॥ **21**॥

169. यतो यतः समीहसे, ततो नो अभयम् कुरु।
शम् नः कुरु प्रजाभ्यो, अभयम् नः पशुभ्यः॥ 22॥

काव्यानुवाद

जैसे-जैसे हम कर्म करें, हमको प्रभु अभय प्रदान करो।

कल्याण हमारे जन-जन का, हो अभय हमारे पशु-धन का ॥ 22 ॥

संहितापाठ

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।

शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ 22 ॥

(ऋषि-दध्यङ् आथर्वण, देवता-ईश्वर, छन्द-उष्णिक्, स्वर-ऋषभ)

मन्त्रार्थ :- यतो-यतः जहाँ-जहाँ से, जैसे-जैसे **समीहसे** सम्यक् प्रयास करें, **ततो** उससे **नो** हमें **अभयम्** अभय **कुरु** करो। **नः** हमारे **प्रजाभ्यो** प्रजा के लिए **शम्** शान्ति, सुख, कल्याण, **नः** हमारे **पशुभ्यः** पशुओं के लिए **अभयम्** अभय **कुरु** करो ॥ 22 ॥

भावार्थ :- अभय तथा सुख, कल्याण हमें परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है। परन्तु इसके लिए प्रयास करना महत्वपूर्ण है। जीवन में **ईश्वर को स्मरण करो, कर्म पर विश्वास करो,** का विचार महत्वपूर्ण है ॥ 22 ॥

पदार्थ :- यतो-यतो = जहाँ-जहाँ से, जैसे-जैसे (सर्वनाम)। **ततो** = उससे (सर्वनाम)। **समीहषे** = सम्यक् प्रयास करें (सम् - सम्यक्, ईह- प्रयत्न करना)। **ततो** = उससे (सर्वनाम)। **नो** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **अभयम्** = अभय (अ - नहीं, भी - डरना, घबराना)। **कुरु** = करो (कृ - करना)। **शम्** = शान्ति, सुख, कल्याण (शम् - प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **कुरु** = करो (कृ- करना)। **प्रजाभ्यो** = प्रजा के लिए (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **पशुभ्यः** = पशुओं के लिए (दृश्-पश् - देखना। पश् - बांधना, जाना) ॥ 22 ॥

170. सुमित्रिया नो आपः ओषधयः सन्तु,
दुर्मित्रियाः तस्मै सन्तु,
यो अस्मान् द्वेष्टि, यम् च वयम् द्विष्मः ॥ 23 ॥

काव्यानुवाद

हों मित्र हमारे जल-ओषधि, दुर्मित्र उन्हीं के लिए रहें,

जो द्वेष करें हम लोगों से, इस कारण जिनसे द्वेष हमें ॥ 23 ॥

संहितापाठ

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु।

योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ 23 ॥

(ऋषि-दध्यङ् आथर्वण, देवता-सोम, छन्द- अनुष्टुप्, स्वर-गान्धार)

मन्त्रार्थ :- आपः आप, व्यापक **ओषधयः** ओषधियाँ **नः** हमारे लिए **सुमित्रिया** अच्छे मित्र **सन्तु** हों। **तस्मै** उनके लिए **दुर्मित्रियाः** दुर्मित्र **सन्तु** हों, **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं, **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मः** द्वेष करते हैं ॥ 23 ॥

भावार्थ :- कामना की गयी है कि प्रकृति हमारे लिए उत्तम मित्र बनकर रहे। ऐसी भावना रखने वाले हम लोगों से जो द्वेष करते हैं, और स्वाभाविक है कि ऐसे लोगों से प्रकृति संरक्षक होने के कारण हमको भी द्वेष होगा ही, ऐसे लोगों के लिए प्रकृति दुर्मित्र बनी रहेगी अर्थात् प्रकृति किसी की शत्रु तो नहीं होती है, परन्तु ऐसे लोगों के लिए प्रकृति का अच्छा मित्र बनकर रहना भी सम्भव नहीं हो पाता है। अतः प्रकृति का संरक्षण करना महत्वपूर्ण है ॥ 23 ॥

पदार्थ :- सुमित्रिया = अच्छे मित्र (सु - अच्छा, सुन्दर, मिद् - प्रीति करना, मृदुल होना)। **नः** = हमारे (सर्वनाम)। **आपः** - आप, व्यापक (आप् - व्याप्त होना, जाना, पाना, अवलम्ब होना)। **ओषधयः** = ओषधियाँ

(उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा करना)। **सन्तु** = हों। **दुर्मित्रियाः** = दुर्मित्र, दुष्ट मित्र (दुः, दुष्, दुर् - दूषित होना, दुष्ट आचरण करना। मिद् - प्रीति करना, मृदुल होना)। **तस्मै** = उसके लिए (सर्वनाम)। **सन्तु** = हों (अस् - होना)। **यो** = जो (सर्वनाम)। **अस्मान्** = हमको (सर्वनाम)। **द्वेष्टि** = द्वेष करता है (द्विष् - द्वेष करना)। **यम्** = जिसको (सर्वनाम)। **च** = और (अव्यय)। **वयम्** = हम सब, हम लोग (सर्वनाम)। **द्विष्मः** = द्वेष करते हैं (द्विष् - द्वेष करना)॥ 23॥

171. तत् चक्षुः देवहितम्, पुरस्तात् शुक्रम् उत् चरत्।
पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्।
शृणुयाम शरदः शतम्, प्र ब्रवाम शरदः शतम्।
अदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयः च शरदः शतात्॥ 24॥

काव्यानुवाद

चक्षु देवहित वह करे, पहले शुक्र उचार।
हम देखें सौ वर्ष तक, हम जीवें सौ वर्ष।
सौ वर्षों तक हम सुनें, बोलें हम सौ वर्ष।
दीन न हों सौ वर्ष तक, पुनः अधिक सौ वर्ष से॥ 24॥

संहितापाठ

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ 24॥

(ऋषि-दध्यङ् आथर्वण, देवता-सूर्य, छन्द-अत्यष्टि, स्वर-धैवत)

मन्त्रार्थ :- तत् वह **चक्षुः** चक्षु, दृष्टा, वक्ता **पुरस्तात्** पहले **देवहितम्** देवहितकारी **शुक्रम्** शुक्र, पवित्र **उत् चरत्** उच्चरण करे, उच्चगति करे। **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **पश्येम** देखें, **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक

जीवेम जीवित रहें, **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **शृणुयाम** सुनें, **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **प्र ब्रवाम** बोलें, **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **अदीनाः** अदीन, दीनता-मुक्त **स्याम** हों, **च** और **शतात्** सौ **शरदः** शरद से **भूयः** अधिक (ऐसे ही रहें)॥ 24॥

भावार्थ :- सौ वर्षों तक तथा उससे भी अधिक सक्रिय तथा गुणवान् आयु प्राप्त हों, यही कामना है। उत् चरत् का अर्थ है उच्चरण करता है, उच्चगति करता है। शरद का अर्थ एक वर्ष है। एक बार सभी ऋतुओं का चक्र पूर्ण हो जाने की अवधि सम्वत्सर है। इस अवधि में पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा पूर्ण करती है। लोक व्यवहार में इस अवधि को ऋतु से व्यक्त किया जाता है जैसे वर्ष (वर्षा ऋतु), शरद (शरद ऋतु), वसन्त आदि। आधुनिक भाषा साहित्य में भी आयु इतने वसन्त देखी जैसे उल्लेख सामान्यतः मिलते ही हैं॥ 24॥

पदार्थ :- तत् = वह (सर्वनाम)। **चक्षुः** = चक्षु, दृष्टा, वक्ता, आँख (चक्ष- स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)। **देवहितम्** = देवहितकारी (देव्, दिव् - चमकना, तेजस्वी होना, जानना। हि - जाना, जानना, पाना, वृद्धि करना)। **पुरस्तात्** = पहले (अव्यय)। **शुक्रम्** = शुद्ध, पावन, शुक्र (शुच्, शुक् - पावन होना, शुद्ध होना, शुद्ध करना)। **उत् चरत्** = उच्चरण करे, उच्चगति करे (उत् - ऊपर, उच्- कहना, समझाना, चर् - जाना, खाना, आचरण करना)। **पश्येम** = देखें (पश् - देखना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)। **जीवेम** = जीवित रहें (जीव् - प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **शृणुयाम** = सुनें (श्रु-शृण् - सुनना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ (संख्या)। **प्र** = अधिक (उपसर्ग)। **ब्रवाम** = बोलें (ब्रू - कहना, बोलना)। **अदीनाः** = दीनताहीन, अक्षय (अ - नहीं, दी - क्षय होना)। **स्याम** = हों (अस् - होना)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** = सौ

(संख्या)। **भूयः** = पुनः (भू - होना)। **च** = और (अव्यय)। **शरदः** = शरद् (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतात्** = सौ से (संख्या)॥ **24** ॥

ओम् स्तुति

(यजुर्वेद, अध्याय 40)

सूक्त - 1

172. ईशा वास्यम् इदम् सर्वम्,
यत् किम् च जगत्याम् जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा,
मा गृधः कस्य स्वित् धनम्॥ 01 ॥

काव्यानुवाद

ईश्वर-संव्याप्त सभी कुछ है, जो कुछ गतिशील जगत् में है।
इसलिए त्यागमय भोग करें, लालच न किसी के धन में है॥
चाहत न किसी के धन में है। इच्छा न किसी के धन में है॥ 01 ॥

संहितापाठ

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ 01 ॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- इदम् यह, **सर्वम्** सब, **यत्** जो, **किम् च** क्या, कुछ भी, **जगत्याम्** जगती में, गतिशील (सृष्टि) में **जगत्** गतिशील (है), **ईशा** ईश्वर द्वारा, **वास्यम्** वास किया हुआ, आच्छादित, व्याप्त (है)। **तेन** उससे, (उस कारण से) **त्यक्तेन** त्याग द्वारा, त्याग के साथ, त्यागपूर्वक **भुञ्जीथा** भोग करो। **कस्य** किस का **स्वित्** भी **धनम्** धन को **मा** मत, नहीं **गृधः** चाहो, इच्छा करो, लालच करो॥ **01** ॥

भावार्थ :- सब कुछ ईश्वरमय है। सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा का आवास है, परमात्मा से वासित, निवासित, सुवासित, आच्छादित, व्याप्त है। इस प्रकार हम सदैव परमात्मा के सानिध्य में हैं, उसके संरक्षण में हैं। जीवन निर्वाह के लिए भोग का पूर्णतः निषेध नहीं हो सकता है। अतः त्याग की भावना के साथ भोग करें, अर्थात् जीवन-निर्वाह के लिए साधन का उपयोग अवश्य करें, परन्तु किसी के धन को पा लेने की इच्छा करना उचित नहीं है, लोभ तो कदापि नहीं करें। धन का शाब्दिक अर्थ है उत्पन्न करना। अतः किसी के धन की इच्छा न करने का अर्थ है कि किसी अन्य के उत्पादन को न लेकर स्वयम् उत्पादन करें। अपने द्वारा उत्पादित संसाधनों से ही जीवन निर्वाह करना उचित है। अन्य का उत्पादन उपभोग करना अनैतिक और अकर्मण्यता भी है। यह हमारी अक्षमता का भी प्रतीक है। सामाजिक जीवन परस्पर सहयोग से ही चलता है। हवन अर्थात् दान तथा आदान-प्रदान करना आवश्यक है। सहयोग लें तो समाज के लिए स्वयम् भी सहयोग करें। इस प्रकार अन्य के धन अर्थात् उत्पादन का उपयोग करना स्वीकार्य हो जाता है। अनुचित साधनों से किसी के उत्पादन अथवा धन को लेना तथा उसका उपभोग करना अनुचित है॥ **01** ॥

पदार्थ :- ईशा = ईश्वर द्वारा (ईश् - ऐश्वर्य होना, शासन होना, अधिकार होना)। **वास्यम्** = वासयोग्य, वासमय, आच्छादित, व्याप्त (वस् - रहना, निवास करना, आच्छादन करना)। **इदम्** = यह (सर्वनाम)। **सर्वम्** = सब (सर्वनाम)। **यत्** = जो (सर्वनाम)। **किम् च** = कुछ भी (अव्यय)। **जगत्याम्** = जगत् में, संसार में (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। **जगत्** = गतिशील (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। **तेन** = उसके द्वारा, उसके साथ (सर्वनाम)। **त्यक्तेन** = त्याग किये द्वारा, त्यागमय, त्यागभाव के साथ (त्यज- छोड़ना, त्यागना, देना, दान करना)। **भुञ्जीथा**

= भक्षण करो, भोग करो, संरक्षण करो, पालन करो (भुज् - संरक्षण करना, पालन करना, खाना, भक्षण करना)। **मा** = मत (अव्यय)। **गृधः** = इच्छा करो, लालच करो (गृध् - चाहना, इच्छा करना, लालच करना)। **कस्य स्वित्** = किसी के (सर्वनाम)। **धनम्** = धन को (धन- उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना) **॥ 01 ॥**

173. कुर्वन् एव इह कर्माणि, जिजीविषेत् शतम् समाः। एवम् त्वयि न अन्यथा अतो अस्ति, न कर्म लिप्यते नरे ॥2॥

काव्यानुवाद

जीवन सक्रिय हो कर्मशील, जीवन आशा शतवर्ष रहे।
है यही मार्ग, अन्यथा नहीं, नर में सब कर्म अलिप्त रहे ॥ 02 ॥

संहितापाठ

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ 02 ॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- इह यहां, **कर्माणि** कर्मों को, **कुर्वन्** करता हुआ, **एव** ही, **शतम्** सौ, **समाः** सम विभाग (सम्वत्सर, वर्ष), **जिजीविषेत्** जीने की इच्छा करें। **एवम्** इस प्रकार, इस भाँति, **त्वयि** तुम में, **अतो** इससे, **अन्यथा** अन्य प्रकार से **न** नहीं **अस्ति** है। **नरे** नर में **कर्म** कर्म, **न** नहीं, **लिप्यते** लिप्त होता है **॥ 02 ॥**

भावार्थ :- दीर्घ आयु की कामना करना स्वाभाविक है, परन्तु जीवन कर्म करते हुए ही सार्थक है, निष्क्रिय जीवन व्यर्थ है। ईश्वर को सर्वव्यापी मानकर कर्म करते रहें तो कर्म हमारे जीवन में, चेतना में लिप्त नहीं होता है, इसका भाव है कि हम कर्म के फल के प्रभाव से मुक्त रहते हैं **॥ 02 ॥**

विशेष :- समाः का अर्थ सम्वत्सर या वर्ष माना गया है। सम को

सर्वनाम मानने पर इसका अर्थ सब होता है। सम् धातु का अर्थ समान विभाग करना, समान होना, घबराने-हिचकिचाने से रोकना होता है। जीवन-काल को समान विभागों में बाँटा गया और उसे सम कहा गया तो उचित ही है। इसी को सम्वत्सर, शरद् या वर्ष भी कहा गया है। नरे का अर्थ है नर में। नर का अर्थ है ले जाने वाला। जीवन-चेतना को ले जाने वाला, शरीर को चेतन शक्ति से ले जाने वाला प्राणी नर है। यहाँ नर का अर्थ सभी जीवों से है, केवल मनुष्य ही नहीं। अधिक व्यापक अर्थ में तो सूर्य आदि जीवन का परोक्ष उन्नयन करने वाले भी नर माने जा सकते हैं। इसी अर्थ में इनको वसु अर्थात् वसाने वाले भी कहा जाता है। वेद में ऐसे व्यापक अर्थ में प्रयोग वाले शब्दों में जीव-निर्जीव का भी भेद समाप्त हो जाता है। उनमें स्त्रीलिंग-पुल्लिंग के भेद की कल्पना तो नितान्त अस्वीकार्य है। वेद में पुत्र, सुत, मित्र आदि शब्द भी इसी प्रकार से लिंग-भेद से परे हैं। कुछ आचार्य इसे व्याकरण में लिंग-व्यत्यय कहते हैं **॥ 02 ॥**

पदार्थ :- कुर्वन् = करता हुआ (कृ - करना)। **एव** = ही (अव्यय)। **इह** = इसमें, यहां (सर्वनाम)। **कर्माणि** = कर्मों को (कृ - करना)। **जिजीविषेत्** = जीवन की इच्छा करें (जीव् - प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **शतम्** = सौ (संख्या, सर्वनाम)। **समाः** = सम विभाग, सम्वत्सर (सम - सब, सम् - समान विभाग करना, समान होना, घबराने-हिचकिचाने से रोकना)। **एवम्** = इस प्रकार, इस भाँति (सर्वनाम)। **त्वयि** = तुम में (सर्वनाम)। **न** = नहीं (अव्यय)। **अन्यथा** = अन्य प्रकार से (सर्वनाम)। **अतो** = इससे (सर्वनाम)। **अस्ति** = है (अस् - होना)। **न** = नहीं (अव्यय)। **कर्म** = कर्म या कार्य (कृ - करना)। **लिप्यते** = लिप्त होता है (लिप् - लिप्त होना, लेपन करना, बढ़ाना, अधिक करना)। **नरे** = नर में (नृ - ले जाना) **॥ 02 ॥**

174. असुर्या नाम ते लोका, अन्धेन तमसा आवृताः।
तान् ते प्रेत्य अपि गच्छन्ति, ये के च आत्महनो जनाः।D3 ।।

काव्यानुवाद

लोक हीन ऐश्वर्य से, अन्धकारमय अन्ध।
आत्म-हनन जो कर रहे, उनको पाते बन्ध।। 03 ।।

संहितापाठ

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।। 03 ।।

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- असुर्या ऐश्वर्य-हीन, सृजन-हीन, रोगी, फेकने योग्य **नाम** नाम वाले **ते** वे **लोका** लोक, दृश्य **अन्धेन** अन्ध द्वारा, **तमसा** तमस् द्वारा **आवृताः** आवृत (हैं)। **च** और **ये** जो **के** कौन, कोई **आत्महनो** आत्महनन करने वाले **जनाः** जन, लोग (हैं), **ते** वे **प्रेत्य** भागकर **अपि** भी **तान्** उनको **गच्छन्ति** जाते हैं, प्राप्त होते हैं।। **03** ।।

भावार्थ :- असुर्या का अर्थ है ऐश्वर्य से हीन, सृजन न करने वाला, रोगी, फेकने योग्य। अ उपसर्ग है जिसका अर्थ नहीं होता है। सु धातु का अर्थ ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होना, उत्पन्न करना होता है। असु-असू धातु का अर्थ रोगी होना है। अस् धातु का अर्थ फेंकना, बिखेरना, उड़ाना है। यहाँ पर भौतिक संसाधनों को ऐश्वर्य नहीं माना गया है। कुछ उत्पन्न करना, सृजन करना जिनके लिए सम्भव नहीं है, वे असुर्य हैं, ऐश्वर्यहीन हैं, सृजनहीन हैं, रोगी हैं। रोगी होने का अर्थ केवल शारीरिक रोग ही नहीं है। वे शारीरिक रूप से बलवान् भी हो सकते हैं, फिर भी वे रोगी हैं। भावनात्मक रूप से, वैचारिक रूप से, तथा आध्यात्मिक रूप से वे रोगी होते हैं। वे इन रोगों से ग्रस्त होकर स्वयम् भी अशान्त रहते हैं तथा सम्पर्क में

आने वाले लोगों को भी तनावग्रस्त कर देते हैं। जो आत्म तत्व का हनन करने वाले अर्थात् अपना ही हनन करने वाले हैं, ऐसे लोगों के लिए तो संसार असुर्या ही है। इस स्थिति से बचने के लिए वे कितना भी भागें, कितने भी उपाय करें, उनको रहना इसी स्थिति में है। हम भागकर स्थान अथवा भौतिक स्थितियाँ तो बदल सकते हैं परन्तु यदि मानसिक और भावनात्मक स्थिति नहीं बदलती है तो भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर भी वास्तविक शान्ति तो नहीं ही मिल सकती है।। **03** ।।

विशेष :- आत्महनो का अर्थ है आत्मा का हनन करने वाले। आत्मा शब्द को आत् या अत् धातु से निष्पन्न माना जाता है। आत् धातु का अर्थ होना, चिरन्तन होना, नित्य होना है, तथा अत् धातु का अर्थ सतत गमन करना, निरन्तर चलना है। गति अर्थ वाली धातुओं में ज्ञान, गमन, प्राप्ति अर्थ समाहित होते हैं। अतः आत्मा का शाब्दिक अर्थ सतत गतिशील, सर्वत्र प्राप्त तथा सर्वज्ञ भी होता है। सतत गतिशीलता का हनन करना अर्थात् आलस्य, जड़ता, अकर्मण्यता को अपनाना ही आत्महनन करना है। परम तत्व के रूप में आत्मा का हनन करना तो सम्भव ही नहीं है। वह तो नित्य अविनाशी तत्व है। वही तो परमात्मा है। वेद में आत्मा तथा परमात्मा का अभेद है। परमात्मा के अर्थ में आत्मा शब्द का ही प्रयोग किया गया है। परमात्मा सर्वव्यापी है, वही आत्मा है। तत्वतः सर्वव्यापी आत्मा तथा परमात्मा अभिन्न हैं। लोक व्यवहार में आत्महनन या आत्महत्या शब्द का आशय है आत्मा को, परम सत्ता को, ईश्वर को नकारना, अस्वीकार करना। अविनाशी आत्मा को न जानना, उसको अनुभव न करना ही व्यावहारिक रूप से उसका हनन करना है। आत्मा अर्थात् सर्वव्यापी चिरन्तन सदा-सर्वदा विद्यमान रहने वाले चेतन तत्व को न जानकर जड़ शरीर तथा संसार को ही परम सत्य मानना ही आत्म हनन करना है।। **03** ।।

पदार्थ :- असुर्या = ऐश्वर्य से हीन (अ - नहीं, सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, असु-असू - रोगी होना, अस् - फेंकना,

बिखेरना, उड़ाना)। **नाम** = नाम, नाम वाला (अव्यय)। **ते** = वे, तुम्हारा, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **लोका** = लोक, दृश्य (लोक् - देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। **अन्धेन** = अन्ध द्वारा (अन्ध - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना)। **तमसा** = इच्छा द्वारा, दुःख द्वारा, अन्धकार द्वारा (तम् - इच्छा करना, चाहना, दुःखित होना, अन्धकार होना)। **आ वृताः** = आवृत, ढका हुआ, वर्ताव, वाणी (वृत - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, हिंसा करना, चमकना, बोलना, वरण करना, आवरण करना)। **तान्** = उनको (सर्वनाम)। **ते** = वे, तुम्हारा, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **प्रेत्य** = प्रकृष्ट, अधिक गमन कर, भाग कर (प्र - प्रकृष्ट, इ - जाना)। **अपि** = भी (अव्यय)। **गच्छन्ति** = जाते हैं (गम्-गच्छ् - जाना, जानना, पाना)। **ये** = जो (सर्वनाम)। **के** = कौन (सर्वनाम)। **च** = और (अव्यय)। **आत्महनो** = आत्मा का हनन करने वाले (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना। हन् - मारना, हिंसा करना)। **जनाः** = जन, लोग (जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना)॥ 03 ॥

175. अनेजत् एकम् मनसो जवीयो,
न एनत् देवा आप्नुवन् पूर्वम् अर्षत्।
तत् धावतो अन्यान् अत्येति तिष्ठत्,
तस्मिन् अपो मातरिश्वा दधाति॥ 04॥

काव्यानुवाद

वह एक, अकम्पन, अभय, सत्य, मन से भी अधिक वेगमय है।
इसको तो देव भी पा न सके, वह पूर्व प्राप्त, अन्तर्यामी॥
सुस्थिर रहकर सब से आगे, सब वेगवान् को कर पीछे,
वह पालक, रक्षक, मातृ-वृद्धि॥ 04॥

संहितापाठ

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ 04॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - ब्रह्मा, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- एकम् एक (एक ही, अद्वितीय) **अनेजत्** अकम्पन, अभय **मनसो** मन से **जवीयो** वेगवान् (है)। **एनत्** इस **पूर्वम्** पूर्व **अर्षत्** अन्तर्यामी को **देवा** देवगण **न** नहीं **आप्नुवन्** पा सके। **तत्** वह **तिष्ठत्** स्थित है, **धावतो** दौड़ते हुए **अन्यान्** अन्यों को **अत्येति** अतिक्रम कर जाता है। **तस्मिन्** उसमें **अपो** पालक-रक्षक **मातरिश्वा** मातरि-श्वा, मातृ-गामी, मातृ-वर्द्धित **दधाति** प्रदान करता है, धारण करता है॥ 04॥

भावार्थ :- परमात्मा एक ही है। वह निर्भय है, कम्पन रहित है, मन से भी अधिक वेगवान् है। कोई कितना भी दौड़े-भागे, उसकी सीमा का ज्ञान नहीं कर सकता है। वह पूर्व ही सर्वत्र उपस्थित है, अतः कोई जहाँ तक भी विचार कर सकता है, वहाँ और उससे भी आगे परमात्मा वर्तमान होता है॥ 04॥

पदार्थ :- अनेजत् = कम्पन रहित, गतिहीन, निर्भय (अन् - नहीं, एज् - चलना, कम्पन करना, प्रकाशित होना)। **एकम्** = एक (संख्या)। **मनसो** = मन से (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। **जवीयो** = अधिक वेगवान् (जु - जाना, शीघ्रता से चलना, भागना)। **न** = नहीं (अव्यय)। **एतत्** = यह (सर्वनाम)। **देवा** = देवगण (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)। **आप्नुवन्** = पा सके (आप् - जाना, पाना, व्याप्त होना)। **पूर्वम्** = पहले ही (सर्वनाम)। **अर्षत्** = अन्तर्यामी (ऋष् = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, सूक्ष्मता से भीतर देखना, अन्तर्गमन करना)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **धावतो** = दौड़ते हुए (धाव् - जाना, दौड़ना, भागना, स्वच्छ करना, स्वच्छ होना)। **अन्यान्** = अन्यों को

(अन्य - कोई और, इतर)। **अत्येति** = अतिक्रमण कर जाता है (अति - अधिक, अतिक्रम, इ - जाना)। **तिष्ठत्** = ठहरा (तिष्ठ् - ठहरना)। **तस्मिन्** = उसमें। **अपो** = पालन करने वाला (अप - जाना, जानना, पाना, पालन करना)। **मातरिश्वा** = मातरि-श्वा, मातृ-वृद्धिकर्ता, मातृ-वर्द्धित, मातृ-गामी (मा - मान करना, मापना, तौलना, तुलना करना, श्वि - चलना, जाना, जानना, पाना, वृद्धि होना)। **दधाति** = प्रदान करता है, धारण करता है (धा-दध् - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)॥ 04॥

176. तत् एजति तत् न एजति, तत् दूरे तत् उ अन्तिके।
तत् अन्तः अस्य सर्वस्य, तत् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः ।ls॥

काव्यानुवाद

वह सचल रहे, है अचल वही, वह दूर रहे, है निकट वही।
सबके भीतर वह 'स्वामी' है, सबके बाहर भी सदा वही॥ 05॥

संहितापाठ

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ 05॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- तत् वह **एजति** चलता है, प्रकाशित होता है, **तत्** वह **न** नहीं **एजति** चलता है, प्रकाशित होता है। **तत्** वह **दूरे** दूर (है), **तत्** वह **उ** ही **अन्तिके** निकट (है)। **तत्** वह **अस्य** इस **सर्वस्य** सबके **अन्तः** भीतर (है), **तत्** वह **उ** ही **अस्य** इस **सर्वस्य** सबके **बाह्यतः** बाहर (है)॥ 05॥

भावार्थ :- परमात्मा चेतन स्वरूप होने से सक्रिय गतिशील है, सम्पूर्ण सृष्टि उसी की शक्ति से संचालित है, अतः वह गतिशील है। वह प्रकाशस्वरूप है, प्रकाशित होता है। वह सदा सर्वत्र व्याप्त है, उसे कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं है, अतः वह नहीं चलता है, ऐसा कहते

हैं। वह स्वयम् प्रकाशस्वरूप है, अतः उसे कभी प्रकाशित होने की आवश्यकता ही नहीं है, अतः कहते हैं कि वह प्रकाशित नहीं होता है। वह तो सदा-सर्वदा स्वयम् प्रकाशमान है। सर्वव्यापी होने से वह हमारे अति निकट है, परन्तु वह असीम, अनादि, अनन्त होने से पूर्णतः जानने, समझने, पाने की दृष्टि से बहुत दूर भी है। वह समर्पित भक्तों के लिए तो उनके निकट ही रहता है, परन्तु अन्य लोगों के लिए तो दूर ही है॥ 05॥

पदार्थ :- तत् = वह (सर्वनाम)। **एजति** = चलता है, प्रकाशित होता है (एज् - चलना, कम्पन करना, प्रकाशित होना, चमकना, झलकना)। **तत्** - वह (सर्वनाम)। **न** = नहीं (अव्यय)। **एजति** = चलता है, प्रकाशित होता है (एज् - चलना, कम्पन करना, प्रकाशित होना, चमकना, झलकना)। **तत्** - वह (सर्वनाम)। **दूरे** = दूर (अव्यय)। **तत्** - वह (सर्वनाम)। **उ** = ही (अव्यय)। **अन्तिके** = निकट, समीप (अव्यय, सर्वनाम)। **तत्** - वह (सर्वनाम)। **अन्तः** = बीच में (अव्यय, उपसर्ग)। **अस्य** = इसका (सर्वनाम)। **सर्वस्य** = सबका (सर्वनाम)। **तत्** - वह (सर्वनाम)। **उ** - ही (अव्यय)। **सर्वस्य** - सबका (सर्वनाम)। **अस्य** - इसका (सर्वनाम)। **बाह्यतः** = बाहर (बह् - चलना, गति करना, बाहर होना)॥ 05॥

सूक्त - 2

177. यः तु सर्वाणि भूतानि, आत्मनि एव अनुपश्यति।
सर्व भूतेषु च आत्मानम्, ततः न वि चिकित्सति॥ 06॥

काव्यानुवाद

जो प्राणी सभी प्राणियों को, देखे इस आत्म तत्व में ही।
जो देखे सबमें आत्मा को, उसको भ्रम-संशय कभी नहीं॥ 06॥

संहितापाठ

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति॥ 06॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- यः जो **तु** तो **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूतों (प्राणियों, तत्वों) को **आत्मनि** आत्मा में **एव** ही, **च** और **सर्व** सभी **भूतेषु** भूतों में **आत्मानम्** आत्मा को **अनुपश्यति** देखता है, **ततः** उससे **न** नहीं **वि चिकित्सति** संशयग्रस्त होता है॥ 06॥

भावार्थ :- सबमें आत्मा तथा आत्मा में सब कुछ देखने की व्यापक दृष्टि ही अध्यात्म का मूल तत्व है। यही भावना सांसारिकता से ऊपर उठाकर हमें सभी भ्रम संशय से बचाकर वास्तविक शान्ति प्रदान कर सकती है। यह दिव्य दृष्टि, यह अनुभूति प्राप्त हो जाना ही हमारे जीवन का, अध्यात्म का परम लक्ष्य है॥ 06॥

पदार्थ :- यः = जो (सर्वनाम)। **तु** = तो (अव्यय, निपात)। **सर्वाणि** = सब (सर्वनाम)। **भूतानि** = भूतों को, हुए को (भू - होना)। **आत्मनि** = आत्मा में (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। **एव** = ही (अव्यय)। **अनु** = पश्चात्, पीछे (उपसर्ग)। **पश्यति** = देखता है (पश् - देखना)। **सर्व** = सभी (सर्वनाम)। **भूतेषु** = भूतो में (भू - होना)। **च** = और (अव्यय)। **आत्मानम्** = आत्मा को (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। **ततः** = उससे, इसलिए (सर्वनाम)। **न** = नहीं (अव्यय)। **विचिकित्सति** = संशयग्रस्त होता है (वि - विशेष, विपरीत, चिकित् - जानना, वि-चिकित् - संशय होना, भ्रम होना)॥ 06॥

178. यस्मिन् सर्वाणि भूतानि, आत्म एव अभूत् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोकः, एकत्वम् अनुपश्यतः॥ 07॥

काव्यानुवाद

जिसमें सब प्राणी आत्मरूप, हो गये, इसे जो जन जाने।
उसको क्या मोह-शोक होगा? एकत्व भाव सबमें माने॥ 07॥

संहितापाठ

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ 07॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- यस्मिन् जिस में **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूत, हुए, अस्तित्व में आये, प्राणी **विजानतः** विशेष जानने से **आत्म** आत्मा **एव** ही **अभूत्** हो गये, **एकत्वम्** एकत्व को **अनुपश्यतः** देखते हुए **तत्र** वहाँ **को** क्या **मोहः** मोह, **कः** क्या **शोक** शोक॥ 07॥

भावार्थ :- सम्पूर्ण सृष्टि में एकमात्र आत्मतत्व ही व्याप्त है। जो इस परम सत्य को अनुभव कर लेता है, उसे इस एकत्व की अनुभूति हो जाने पर कोई मोह या शोक नहीं हो सकता है॥ 07॥

पदार्थ :- यस्मिन् = जिसमें (सर्वनाम)। **सर्वाणि** = सब, सभी (सर्वनाम)। **भूतानि** = भूत, हुए, अस्तित्व में आये, प्राणी, प्राणियों को (भू - होना)। **आत्म** = आत्मा (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। **एव** = ही (अव्यय)। **अभूत्** = हो गया (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भू - होना, प्राप्त होना)। **वि** = विशेष (उपसर्ग)। **जानतः** = जानता है (ज्ञा-जान - जानना)। **तत्र** = वहाँ (सर्वनाम)। **को** = कौन (सर्वनाम)। **मोहः** = मोह, भूल, भ्रम (मुह् - मोह होना, बुद्धिभ्रष्ट होना)। **को** = कौन (सर्वनाम)। **शोकः** = शोक, दुःख, चिन्ता (शुच - दुःख मानना, शोक करना, चिन्ता करना)। **एकत्वम्** = एकत्व को, एकता को (एक - संख्या)। **अनुपश्यतः** = देखने से (अनु - पश्चात्, पीछे, दृश्-पश् - देखना)॥07॥

179. स परि अगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्,
अस्नाविरम् शुद्धम् अपाप-विद्धम्।
कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः,
याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधात्,
शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ 08 ॥

काव्यानुवाद

वह परिगत, शुक्र, अकाय, अव्रण, अस्नाविर, शुद्ध, अपापविद्ध।
वह कवि है, वही मनीषी है, वह परिभू, वही स्वयम् भू है।
वह यथातथ्य सब अर्थों को, शाश्वत-सम-हेतु किये धारण॥ 08 ॥

संहितापाठ

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥08॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अतिजगती, स्वर - निषाद)

मन्त्रार्थ :- स उसने **शुक्रम्** पवित्र, **अकायम्** अज्ञेय, जानने वाला, काया रहित, **अव्रणम्** व्रण-हीन, घाव-हीन, **अस्नाविरम्** स्नायु हीन, **शुद्धम्** शुद्ध, **अपाप-विद्धम्** पाप से अविद्ध को, **परि** सभी ओर से **अगात्** प्राप्त कर लिया है। **कविः** कवि, **मनीषी** मनीषी, **परिभूः** परिभू, सब ओर होने वाला **स्वयम्भूः** स्वयम्भू, स्वयम् होने वाला **याथातथ्यतो** यथातथ्य **अर्थान्** अर्थों को **शाश्वतीभ्यः** शाश्वतों के लिए, गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि के लिए **समाभ्यः** समता के लिए, सम-विभाग के लिए **व्यदधात्** धारण करता है॥ 08 ॥

भावार्थ :- परमात्मा के स्वरूप का सुन्दर वर्णन किया गया है। वह अकाय अर्थात् अज्ञेय तथा जानने वाला है। वह हमारे लिए पूर्णतः ज्ञेय न होकर भी स्वयम् सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाला है। वह हमारे लिए अज्ञेय है, अर्थात् हम उसे पूर्णतः नहीं जान सकते हैं। वह हमारी जानने की शक्ति

की सीमा से परे है, परन्तु साधना-उपासना से हम उसे उसकी कृपा से जान भी सकते हैं। उपासक तो आत्म विश्वास से कहता है कि वेद अहम् एतम् पुरुषम् महान्तम्, अर्थात् मैं इस महान् पुरुष को जानता हूँ। साधना-उपासना से उसको जानकर ही तो उसके स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है। वह अकायम् अर्थात् काया रहित है। अर्थ अथवा इच्छाएं यथातथ्य होना चाहिए। वास्तविकता तथा व्यवहारिकता का ध्यान रखकर उचित इच्छाएं करें तो उचित है तथा वे पूर्ण भी हो सकती हैं, अन्यथा असीमित तथा काल्पनिक इच्छाएँ चिन्ता तथा तनाव का कारण बन सकती हैं। शाश्वतीभ्यः का अर्थ है शाश्वतों के लिए। श्वि धातु का अर्थ जाना, जानना, पाना, वृद्धि होना है। इसमें परमात्मा के गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि जैसे गुणों का वर्णन किया गया हैं॥ 08 ॥

पदार्थ :- स = वह (सर्वनाम)। **परि =** सभी ओर (उपसर्ग)। **अगात् =** प्राप्त है, विद्यमान है (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग। गम् - जाना। अग - जाना, जानना, पाना)। **शुक्रम् =** विद्वान्, शुद्ध, पवित्र (शुक् - जाना, जानना, पाना, शुच् - शुद्ध होना, पवित्र होना)। **अकायम् =** अज्ञेय, जानने वाला (अ - नहीं, अक् - जाना, जानना पाना, कि-कय - जानना, समझना)। **अव्रणम् =** व्रणहीन, घावहीन (अ - नहीं, व्रण - क्षत करना, घाव करना)। **अस्नाविरम् =** स्नायु हीन (अ - नहीं, स्नु - झरना, टपकना, बहना, स्ना - स्नान करना, शुद्ध होना)। **शुद्धम् =** शुद्ध, पवित्र (शुध् - शुद्ध होना, पवित्र होना)। **अपापविद्धम् =** पाप-हीन (अ - नहीं, पाप् - पाप् होना, पाप करना, विध्-विद्ध - विधान करना, वेधना, वेध करना)। **कविः =** ज्ञानी (कु - शब्द करना, कविता करना)। **मनीषी =** विचारक, विद्वान् (मन् - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। **परिभूः =** सब ओर होने वाला (परि - सब ओर, भू- होना)। **स्वयम्भूः =** स्वयम् होने वाले (स्वयम् - अपने आप, भू - होना)। **याथातथ्यतो =** ठीक - ठीक, यथा-तथ्य, तथ्य के अनुसार (यथा - जैसे, जिस प्रकार, तथा -

वैसे, उसी प्रकार)। **अर्थान्** = अर्थों को (अर्थ - मांगना, चाहना)। **व्यदधात्** = धारण करता है (वि - विशेष। अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग। धा-दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **शाश्वतीभ्यः** = शाश्वतों के लिए (शश्व् - नित्य होना, सदैव रहना, शश्वत होना, शाश्वत होना, श्वि - जाना, वृद्धि होना)। **समाभ्यः** = समता के लिए, सम-विभाग के लिए (सम - समान होना, सम विभाग करना, सम विभाग होना। न घबराना, परिणाम होना) ॥ 08 ॥

सूक्त - 3

180. अन्धम् तमः प्र विशन्ति, ये असम्भूतिम् उपासते।
ततो भूयः इव ते तमो, ये उ सम्भूत्याम् रताः ॥ 09 ॥

काव्यानुवाद

असम्भूति के निकट जो, अन्धे तमस् प्रवेश हो।
उससे भी अति तमस् में, जो सम्भूति रमे रहे ॥ 09 ॥

संहितापाठ

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्यां रताः ॥ 09 ॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- ये जो **असम्भूतिम्** असम्भूति को **उपासते** उपासते हैं, उपासना करते हैं, **अन्धम्** अन्ध **तमः** तमस्, इच्छा, दुःख, अन्धकार में **प्र विशन्ति** प्रवेश करते हैं, प्रविष्ट होते हैं। **ये** जो **सम्भूत्याम्** सम्भूति में **उ** ही **रताः** रमते हैं, रत रहते हैं, **ते** वे **ततो** उससे **भूयः** = पुनः, अधिक **तमो** तमस् में, इच्छा, दुःख, अन्धकार में (**प्र विशन्ति** प्रविष्ट होते हैं) ॥ 09 ॥

भावार्थ :- सम्भूति का अर्थ है सम्यक् रूप से होना तथा असम्भूति का अर्थ है सम्यक् रूप से न होना। जो सम्यक् रूप से नहीं हुआ, उसकी

उपासना से अन्धकार ही मिल सकता है, यह तो स्वाभाविक है। जो सम्यक् रूप से हुआ है, उसमें रत रहने का परिणाम भी ऐसा ही होता है, यह समझना महत्वपूर्ण है। सब कुछ सम्यक् रूप में, अर्थात् आदर्श स्वरूप में हो ही जाये, यह व्यावहारिक रूप से बहुधा सम्भव नहीं हो पाता है। अतः इस प्रकार आदर्श पूर्णतावादी दृष्टिकोण से प्रत्येक कार्य करने का प्रयास भी हमें समस्याग्रस्त बना सकता है, जीवन से सुख-शान्ति का प्रकाश छीन कर तनाव के अन्धकार में ले जाता है। जीवन में सन्तुलन बनाये रखते हुए व्यावहारिकता का ध्यान रखना भी आवश्यक है ॥ 09 ॥

पदार्थ :- अन्धम् = अन्धकार (अन्ध - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना), **तमः** = इच्छा, दुःख, अन्धकार (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, दुःखित होना)। **प्रविशन्ति** = प्रवेश करते हैं (प्र - प्रकृष्ट, विश् - प्रवेश करना, भीतर जाना)। **ये** = जो (सर्वनाम)। **असम्भूतिम्** = सम्यक् रूप से नहीं होने वाले को (अ - नहीं (उपसर्ग)। सम् - सम्यक्, भू - होना)। **उपासते** = उपासना करते हैं (उप - समीप, निकट, आस् - बैठना)। **ततो** = उससे (सर्वनाम)। **भूयः** = पुनः (अव्यय)। **इव** = के समान (अव्यय)। **ते** = वे, तुम्हारा, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **तमो** = इच्छा, दुःख, अन्धकार (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, दुःखित होना)। **ये** = जो (सर्वनाम)। **उ** = ही (अव्यय)। **सम्भूत्याम्** = सम्भूति में, सम्यक् होने में (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **रताः** = रत हैं (रम् - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना) ॥ 09 ॥

181. अन्यत् एव आहुः सम्भवात्, अन्यत् आहुः असम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणाम्, ये नः तत् वि चचक्षिरे ॥ 10 ॥

काव्यानुवाद

अन्य लाभ सम्भूति का, असम्भूति का अन्य।
धीर जनों से यह सुना, जो सद् दृष्टि अनन्य ॥ 10 ॥

संहितापाठ

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥ 10॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- सम्भवात् सम्-भव से, अर्थात् सम्यक् रूप से होने से **अन्यत्** अन्य **एव** ही **आहुः** कहा गया है। **असम्भवात्** अ-सम्-भव से, अर्थात् सम्यक् रूप से न होने से **अन्यत्** अन्य **आहुः** कहा गया है। **इति** ऐसा **धीराणाम्** धीरों का **शुश्रुम** सुना हुआ है, **ये** जो **नः** हमारे लिए **तत्** उसको **वि चचक्षिरे** विशेष रूप से देखते हैं, कहते हैं॥ 10॥

भावार्थ :- सब कुछ सम्यक् रूप से हो, अथवा सब कुछ सम्यक् रूप से न हो, स्वाभाविक रूप से दोनो के परिणाम भिन्न होते हैं। अनुभवी लोग हमको बताते हैं कि क्या करना उचित होगा॥ 10॥

विशेष :- कहने के अर्थ में आह, प्राह जैसे शब्दों का प्रयोग बहुधा होता है। ह्वे धातु का अर्थ पुकारना, शब्द करना होता है। इससे आहुः, आह, प्राह शब्द व्युत्पन्न हो सकते हैं। आह, प्राह जैसे शब्दों को कहने के अर्थ वाली कथ्-कह्-वद् धातुओं का भी विशेष प्रायोगिक रूप माना जाता है॥ 10॥

पदार्थ :- अन्यत् = अन्य, कोई और, इतर (सर्वनाम)। **एव** = ही (अव्यय)। **आहुः** = कहते हैं (ह्वे - पुकारना, शब्द करना)। **सम्भवात्** = सम्यक् रूप से होने से (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **अन्यत्** = अन्य, कोई और, इतर (सर्वनाम)। **आहुः** = कहते हैं (ह्वे - पुकारना, शब्द करना)। **असम्भवात्** = सम्यक् रूप से न होने से (अ - नहीं, सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **इति** = यह, ऐसा (सर्वनाम)। **शुश्रुम** = सुनते है (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **धीराणाम्** = धीरों का, धैर्य वालों का (धी = धारण करना, धैर्य होना)। **ये** = जो

(सर्वनाम)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **वि** = विशेष, विना, विलोम। **चचक्षिरे** = देखते हैं, कहते हैं (चक्ष - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना)॥ 10॥

182. सम्भूतिम् च विनाशम् च, यः तत् वेद उभयम् सह।
विनाशेन मृत्युम् तीर्त्वा, सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते॥ 11॥

काव्यानुवाद

जो सम्भूति-विनाश को, जान रहे हैं साथ।

वे विनाश से मृत्यु तर, अमृत लाये हाथ॥ 11॥

संहितापाठ

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।

विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥ 11॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ - यः जो **सम्भूतिम्** सम्यक् रूप से होने को **च** और **विनाशम्** विनाशशील को, **उभयम्** दोनों को **सह** साथ **वेद** जानता है, **विनाशेन** विनाशशील द्वारा **मृत्युम्** मृत्यु को **तीर्त्वा** पार करके **सम्भूत्या** सम्भूति द्वारा **अमृतम्** अमृत को **अश्नुते** भोग करता है, प्राप्त करता है॥ 11॥

भावार्थ :- सम्भूति अर्थात् सम्यक् रूप से जो होता है, वह तो श्रेष्ठ है ही, उसे तो जानना ही है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विनाशशील को भी जाना-समझा जाये। संसार गुण-दोषमय है, सभी पक्षों को जान कर ही जीवन सुचारु रूप से चल सकता है॥ 11॥

पदार्थ :- सम्भूतिम् = सम्यक् होने को (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **च** = और (अव्यय)। **विनाशम्** = विशेषतः नष्ट हो जाने वाले को (वि - विशेष, नश् - खो जाना, नष्ट होना, दिखाई नहीं देना)। **च** = और (अव्यय)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **तत्** = वह (सर्वनाम)।

वेद = जानता है (विद् - जानना)। **उभयम्** = दोनों को (सर्वनाम)। **सह** = साथ (सर्वनाम)। **विनाशेन** = विनाश द्वारा (वि - विशेष, नश् - खो जाना, नष्ट होना, दिखाई नहीं देना)। **मृत्युम्** = मृत्यु को (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **तीर्त्वा** = पार करके (तृ - तैरना, पार जाना, तीर - पूर्ण करना, समाप्त करना, पार लगाना)। **सम्भूत्या** = सम्भूति द्वारा, सम्यक् रूप से हुए द्वारा (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **अमृतम्** = अमृत को (अ - नहीं, मृ - मरना)। **अश्नुते** = भोग करता है, प्राप्त करता है (अश् - भोजन करना, व्याप्त होना)॥ 11 ॥

सूक्त - 4

183. अन्धम् तमः प्र विशन्ति, ये अविद्याम् उपासते।
ततो भूयः इव ते तमो, ये उ विद्यायाम् रताः॥ 12 ॥

काव्यानुवाद

रहे अविद्या के निकट, अन्धे तमस् प्रवेश हो।
उससे भी अति तमस् में, जो विद्या में रत रहे॥ 12 ॥

संहितापाठ

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ विद्यायां रताः॥ 12 ॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- ये जो **अविद्याम्** अविद्या को **उपासते** उपासते हैं, उपासना करते हैं, **अन्धम्** अन्ध **तमः** इच्छा, दुःख, अन्धकार में **प्र विशन्ति** प्रवेश करते हैं, प्रविष्ट होते हैं। **ये** जो **विद्यायाम्** विद्या में **उ** ही **रताः** रत रहते हैं, रमते हैं, **ते** वे **ततो** उससे **भूयः** अधिक **तमो** तमस् में, अन्धकार में (प्रवेश करते हैं, प्रविष्ट होते हैं)॥ 12 ॥

भावार्थ :- विद्या का अर्थ है विद्यमान, जानने योग्य तथा अविद्या का

अर्थ है न जानने योग्य, अविद्यमान। वास्तव में जानने योग्य तो परम चेतन सत्ता परमात्मा ही है। परम लक्ष्य वास्तविक विद्या तो उसे जानना ही है। उसकी उपासना से अन्धकार भी मिल सकता है, यह बात समझने योग्य है। संसार में जीवन निर्वाह के लिए अध्यात्म के साथ ही सांसारिक ज्ञान भी महत्वपूर्ण है। यदि संसार की पूर्णतः उपेक्षा कर दें तथा परमात्मा की उपासना में ही लीन हो जाना चाहें तो यह भी व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं हो सकेगा। जीवन यापन कठिन हो जायेगा, अन्धकार अनुभव होने लगेगा। इसी तरह केवल सांसारिक लाभ-हानि में रत रहने से भी जीवन में वास्तविक शान्ति नहीं मिल सकती है। जीवन में सन्तुलन आवश्यक है, यही वैदिक संस्कृति है॥ 12 ॥

विशेष :- विद्या और अविद्या शब्द वेद में विशेष अर्थ रखते हैं। वि तथा अ उपसर्ग हैं। वि का अर्थ विशेष के साथ ही विपरीत भी होता है। अ का अर्थ नहीं, निषेध, नकार, होता है। द्या शब्द व्यापक अर्थ रखता है। वेद में द्यु शब्द का भी बहुत प्रयोग मिलता है। द्यु धातु का अर्थ अभिगमन करना, सम्मुख जाना, आगे जाना है। द्युत् धातु का अर्थ प्रकाश करना है। द्यु शब्द में दोनो धातुओं के अर्थ माने जाते हैं। द्या-द्यै धातु का अर्थ तिरस्कार करना है। विद्या शब्द का अर्थ विशेष तिरस्कार अथवा तिरस्कार से विलग होना भी हो सकता है। व्यापक अर्थ में विद्या शब्द में विद् - जानना, रहना, विद्यमान होना के साथ ही द्यु, द्युत्, द्या-द्यै धातुओं के अर्थ भी समाहित माने जा सकते हैं॥ 12 ॥

पदार्थ :- अन्धम् = अन्धकार (अन्ध् - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना)। **तमः** = इच्छा, दुःख, अन्धकार (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, दुःखित होना)। **प्रविशन्ति** = प्रवेश करते हैं (प्र - प्रकृष्ट, विश् - प्रवेश करना, भीतर जाना)। **ये** = जो (सर्वनाम)। **विद्याम्** = विद्या को (विद् - विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **उपासते** =

उपासना करते है (उप - समीप, निकट, आस् - बैठना)। **ततो** = उससे (सर्वनाम)। **भूय** = पुनः, अधिक (अव्यय)। **इव** = के समान (अव्यय)। **ते** = वे, तुम्हारा, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **तमो** = अन्धकार (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, दुःखित होना)। **य** = जो (सर्वनाम)। **उ** = ही (अव्यय, निपात)। **विद्यायाम्** = विद्या में (विद - जानना, समझना, जीवन होना, विद्यमान होना, रहना)। **रताः** = रमे हैं, रत हैं (रम् - रमना) **॥ 12 ॥**

184. अन्यत् एव आहुः विद्यायाः, अन्यत् आहुः अविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणाम्, ये नः तत् वि चचक्षिरे ॥ 13 ॥

काव्यानुवाद

विद्या का फल अन्य कुछ, अन्य अविद्या देय।
धीर पुरुष जो जानते, उनसे सुनते श्रेय ॥ 13 ॥

संहितापाठ

अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ 13 ॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- विद्यायाः विद्या का **अन्यत्** अन्य **एव** ही **आहुः** कहा गया है, **अविद्यायाः** अविद्या का **अन्यत्** अन्य **आहुः** कहा गया है। **इति** ऐसा **धीराणाम्** धीर जनों का **शुश्रुम** सुना हुआ है, **ये** जो **नः** हमारे लिए **तत्** उसको **वि चचक्षिरे** विशेषतः देखते हैं, कहते हैं **॥ 13 ॥**

भावार्थ :- विद्या हो, अथवा अविद्या हो, स्वाभाविक रूप से दोनो के परिणाम भिन्न होते हैं। अनुभवी लोग हमको बताते हैं कि क्या करना उचित होगा **॥ 13 ॥**

पदार्थ :- अन्यत् = अन्य, कोई और, इतर (सर्वनाम)। **एव** = ही (अव्यय)। **आहुः** = कहते हैं (ह्वे - पुकारना, शब्द करना)। **विद्यायाः** =

विद्या से (विद - विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **अन्यत्** = अन्य, कोई और, इतर (सर्वनाम)। **आहुः** = कहते हैं (ह्वे = पुकारना, शब्द करना)। **अविद्यायाः** = अविद्या से (अ - नहीं, विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **इति** = यह, ऐसा (सर्वनाम)। **शुश्रुम** = सुनते है (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **धीराणाम्** = धीरों का, धैर्य वालों का (धी - धारण करना)। **ये** = जो (सर्वनाम)। **नः** = हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **वि** = विशेष (उपसर्ग), **चचक्षिरे** = देखते हैं, कहते हैं (चक्षि - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना) **॥ 13 ॥**

185. विद्याम् च अविद्याम् च, यः तत् वेद उभयम् सह।
अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा, विद्यया अमृतम् अश्नुते ॥ 14 ॥

काव्यानुवाद

विद्या को और अविद्या को, जो साथ जानते दोनों को।
कर पार अविद्या से मृत्यु, विद्या से अमृत प्राप्त करें ॥ 14 ॥

संहितापाठ

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ 14 ॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - स्वराड् उष्णिक्, स्वर - ऋषभ)

मन्त्रार्थ :- यः जो **विद्याम्** विद्या को **च** और **अविद्याम्** अविद्या को **उभयम्** दोनों को **सह** साथ-साथ **वेद** जानता है, **अविद्यया** अविद्या द्वारा **मृत्युम्** मृत्यु को **तीर्त्वा** पार करके **विद्यया** विद्या द्वारा **अमृतम्** अमृत को **अश्नुते** भोग करता है, प्राप्त करता है **॥ 14 ॥**

भावार्थ :- सम्भूति तथा असम्भूति अथवा विनाश के समान ही विद्या तथा अविद्या को भी एक साथ जाना-समझा जाये, यह आवश्यक है। जीवन में विद्या के साथ ही अविद्या को जानना भी उपयोगी है, महत्वपूर्ण

है। सभी पक्षों को जान कर ही जीवन सुचारु रूप से चल सकता है॥14॥

पदार्थ :- विद्याम् = विद्या को (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **च** = और (अव्यय)। **अविद्याम्** = अविद्या को (अ - नहीं, विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **च** - और (अव्यय)। **यः** = जो (सर्वनाम)। **तत्** = वह (सर्वनाम)। **वेद** = जानता है (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **उभयम्** = दोनों को (सर्वनाम)। **सह** = साथ (सर्वनाम)। **अविद्यया** = अविद्या द्वारा (अ - नहीं, विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **मृत्युम्** = मृत्यु को (मृ - मरना, देहत्याग करना)। **तीर्त्वा** = तैर कर, पार करके (तृ - तैरना, पार करना, तीर - पूर्ण करना, पार लगाना)। **विद्यया** = विद्या द्वारा (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना)। **अमृतम्** = अमृत को (अ - नहीं, मृ - मरना)। **अश्नुते** = भोग करता है, प्राप्त करता है (अश् - भोजन करना, व्याप्त होना)॥ 14॥

सूक्त - 5

186. वायुः अनिलम् अमृतम्, अथ इदम् भस्मान्तम् शरीरम्।
ओ3म् क्रतो स्मर, क्लिबे स्मर, कृतम् स्मर॥ 15॥

काव्यानुवाद

वायु अनिल वह अमृत है, यह शरीर भस्मान्त है।
हे कर्मशील! ओम् स्मरण करो, हे कोमल! कृत संस्मरण करो।॥15॥

संहितापाठ

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ओम् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं स्मर॥ 15॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - अनुष्टुप्, स्वर - गान्धार)

मन्त्रार्थ :- वायुः गतिशील, प्रवाहमान, सृष्टिकर्ता **अनिलम्** प्राणवान्,

प्राणदाता, स्पन्दनशील, चेतन **अमृतम्** अमृत, अविनाशी (है)। **अथ** अब **इदम्** यह **शरीरम्** शरीर **भस्मान्तम्** भस्म, भोजन से चेतन रहने वाला, अन्त में भस्म, भोजन बन जाने वाला (है)। **क्रतो** हे कर्मशील! **ओ3म्** ओम् **स्मर** स्मरण करो। **क्लिबे** हे कोमल! **स्मर** स्मरण करो। **कृतम्** कृतित्व का **स्मर** स्मरण करो॥ 15॥

भावार्थ :- परमात्मा ओम् ऋत को उत्पन्न कर उसके अनुसार सृष्टि की गति तथा रचना का नियामक है। गति, स्पन्दन ओम् में ही निहित है। वही अमृत अविनाशी है। गति, सृजन तथा स्पन्दन परमात्मा में निहित हैं, अतः अमृत- अविनाशी हैं। अब दूसरी ओर विचार करो, यह शरीर अन्त में भस्म हो जाने वाला है। जीवों का शरीर हो, प्रकृति का शरीर पर्वत आदि विराट सृष्टि हो, उसका अन्त होना ही है। अतः हे कर्मशील प्राणी! ओम् का स्मरण करो, उस ओम् की कोमलता-दयालुता-करुणा का स्मरण करो तथा अपनी कोमलता-मृदुता-निर्बलता का स्मरण करो। परमात्मा की कोमलता प्राप्त करने के लिए उपासक में भी कोमलता की भावना होनी चाहिए। ओम् की कृति विराट सृष्टि का स्मरण करो तथा अपने कृतित्व का स्मरण करो। ओम् के स्वरूप का स्मरण रहे, उसकी करुणा, कोमलता, सामर्थ्य तथा अपने कार्य-स्वभाव, सामर्थ्य, सीमा का स्मरण रहे, ओम् के तथा अपने कृतित्व का स्मरण रहे तो श्रेष्ठ विचार रहेंगे, जीवन उत्कृष्ट बना रहेगा, जीवन सफल होगा॥ 15॥

विशेष :- शरीर शब्द शृ - फटना, हिंसा करना, मारना तथा श्रि - सेवा करना, आश्रय करना धातुओं से निष्पन्न माना जाता है। इसका अर्थ है कि शरीर नाशवान् है, परन्तु यही आश्रय भी है, सेवा का साधन भी है। इसे अन्त में भस्म हो जाना है। भस् धातु का अर्थ खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना है। शरीर की परिणति तो इसी रूप में होनी है। इसे रोग, दोष, निन्दा आदि खा जाते हैं। शरीर को बने रहने के लिए भी भोजन

चाहिए। जीवन का अन्त होने पर यह कुछ अन्य जीवों का भोजन बनता है या अग्नि, मिट्टी आदि प्रकृति के तत्वों का भोजन बन जाता है॥ 15॥

पदार्थ :- वायुः - गतिशील, सृष्टिकर्ता (वा - गति करना, बहना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना) **अनिलम् -** प्राणवान्, प्राणदाता, स्पन्दनशील चेतन (अन् - प्राण होना, चेतन होना, स्पन्दन होना)। **अमृतम्** = अमृत को (अ - नहीं, मृ - मरना)। **अथ** = अब (अव्यय)। **इदम्** = यह (सर्वनाम)। **भस्मान्तम्** = भस्म (भोजन) से चेतन रहने वाला, अन्त में भस्म हो जाने वाला (भस् - खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना, अन् - चेतन होना, जीवन होना, प्राण होना, समर्थ होना, जाना, जानना, पाना)। **शरीरम्** = शरीर (शृ - सुनना, शृ - फटना, हिंसा करना, मारना, श्रि - सेवा करना, आश्रय करना)। **ओ3म्** = परमात्मा (अव्यय)। **क्रतो** = कर्मशील (कृ - करना)। **स्मर** = स्मरण करो (स्मृ - स्मरण करना)। **क्लिबे** = कोमल (क्लीब - कोमल होना)। **स्मर** = स्मरण करो (स्मृ - स्मरण करना)। **कृतम्** = कृतित्व, किया हुआ (कृ - करना)। **स्मर** = स्मरण करो (स्मृ - स्मरण करना)॥ 15॥

187. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनो,
भूयिष्ठाम् ते नमः उक्तिम् विधेम॥ 16॥

काव्यानुवाद

प्रभो! अग्नि हमको सुपथ पर चलाओ,
सभी देव विद्वान् सत्कर्म सर्जक।
करें दूर हमसे कुटिलता कलुष को,
नमन भूयशः आपके हेतु धारें॥ 16॥

संहितापाठ

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥ 16॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - त्रिष्टुप्, स्वर - धैवत)

मन्त्रार्थ :- अग्ने हे अग्नि! **देव** हे दिव्य! (परमात्मन्!), **अस्मान्** हमें **सुपथा** अच्छे मार्ग पर **नय** ले चलो। **विश्वानि** सभी **वयुनानि** रचनाशील **विद्वान्** विद्वान् **एनो** प्रकाशमान **अस्मत्** हमसे **जुहुराणम्** कुटिलता को **युयोधि** अलग करें। **ते** तुम्हारे लिए **भूयिष्ठाम्** पुनः पुनः **नमः** नमन **उक्तिम्** कथन **विधेम** विधान करते हैं, विशेष रूप से धारण करते हैं॥ 16॥

भावार्थ :- हमें ऐश्वर्य तथा सफलतायें प्राप्त करनी हैं तो श्रेष्ठ मार्ग पर चलना होगा। अच्छे मार्ग पर चलते रहने के लिए दिव्य शक्तियों अर्थात् विशेष क्षमतावान् साधन-सम्पन्न लोगों तथा रचनाशील विद्वानों के सहयोग की आवश्यकता है। वेद से दूर होने पर हम अज्ञानी, कुटिल और स्वार्थी हो जाते हैं। रचनाशील, प्रकाशमान विद्वान् समुचित मार्गदर्शन तथा सदुपदेश द्वारा हमारी कुटिलता को दूर कर सकते हैं। युयोधि शब्द में अलग करने के साथ ही युद्ध करने का भाव भी व्यक्त होता है। यु धातु का अर्थ अलग करना तथा युध् धातु का अर्थ युद्ध करना है। जब कुटिलता बहुत बढ़ जाती है तो हमारी कुटिलता को दूर करने के लिए, सद्गुण सिखाने के लिए रचनाशील विद्वानों को हमारी दुष्प्रवृत्तियों से युद्ध करने जैसा कठिन प्रयास करना पड़ता है। परमात्मा की कृपा से ऐसे धैर्यशील परोपकारी विद्वानों का सहयोग मिलता है, इसके लिए हम परमात्मा को पुनः पुनः नमन करते हैं॥ 16॥

पदार्थ :- अग्ने = हे अग्नि (अग् - गति करना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति होना, अग्रणी होना)। **नय** = ले जाओ (नी - ले जाना)। **सुपथा** = अच्छे मार्ग पर (सु - उत्तम, अच्छा, सुन्दर, पथ - चलना)। **राये** =

गतिशीलता में, दान में, शब्द में, वाणी में (रै - शब्द करना, रय् - गति करना, जाना, रा - देना, दान करना)। **अस्मान्** = हमको (सर्वनाम)। **विश्वानि** = सभी (सर्वनाम)। **देव** = देव (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **वयुनानि** = रचनाशील (वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। **विद्वान्** = जानने वाला, ज्ञानी (विद् - जानना)। **युयोधि** - अलग किया (यु - मिलाना, अलग करना, बाँधना, गूँथना, युध् - युद्ध करना)। **अस्मत्** = हमसे (अपादान, बहुवचन)। **जुहुराणम्** = कुटिलता को (ह्वृ - कुटिल होना, निवास करना, आच्छादन करना)। **एनो** = यह, प्रकाश (एनो - यह, (सर्वनाम)। इन्-एन् - प्रकाशित करना, मिलाना, अलग करना)। **भूयिष्ठाम्** = पुनः पुनः (अव्यय)। **ते** = तुम्हारा, तुम्हारे लिए (सर्वनाम)। **नमः** = नमन (नम् - नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **उक्तिम्** = उक्ति को, कथन को (उक्-उच्-वद् - कहना, समझना)। **विधेम** - विधान करें, विशेष रूप से धारण करें (वि - विशेष, धा - धारण करना)॥ **16** ॥

188. हिरण्मयेन पात्रेण, सत्यस्य अपिहितम् मुखम्। ओम् खम् ब्रह्म ॥ 17 ॥

काव्यानुवाद

है हिरण्यमय पात्र आवरण, ढके सत्य का मुख स्वरूप है।
ओम् ब्रह्म व्यापक परम ॥ 17 ॥

संहितापाठ

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। ओम् खं ब्रह्म ॥ 17 ॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - गायत्री, स्वर-षड्ज)

मन्त्रार्थ :- सत्यस्य सत्य का **मुखम्** मुख **हिरण्मयेन** दीप्तिमान, चमकीले **पात्रेण** पात्र द्वारा **अपिहितम्** ढका हुआ है। **ओ3म्** ओम् **खम्** सर्वव्यापक **ब्रह्म** बड़ा, बृहत्, महान् (है)॥ **17** ॥

भावार्थ :- सत्य के दर्शन में चमक-दमक ही बाधा है। जिनके पास धन-वैभव है, वे उसकी चमक में खोये हैं तथा साधनहीन विद्वान् सज्जनों के निर्मल हृदय नहीं देख पाते हैं। विद्वान् साधक भी साधनहीनता के कारण अपनी भावना तथा चिन्तन को समाज तक पहुँचा नहीं पाते हैं। समाज और सत्य ज्ञान के बीच वैभव की चमक बाधा बनी रहती है। यदि सांसारिक चमकदार आवरण को हटा सकें तो सत्य हमारे सामने होता है। इस सत्य का साक्षात्कार सम्भव है, स्वाभाविक है, अवश्य हो जायेगा। वैभव की चमक का आवरण हटाकर देखना होगा, इस आवरण से मुक्त होना होगा। सत्य यही है कि ओम् खम् ब्रह्म अर्थात् ओम् सर्वव्यापक, सबसे बड़ा तथा महान् है। सब कुछ ओम् ही तो है और यही तो परम सत्य है॥ **17** ॥

पदार्थ :- हिरण्मयेन = दीप्तिमान, चमकीले (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, चमकना, शब्द करना, ध्वनि होना)। **पात्रेण** = पात्र, संरक्षण, आवरण द्वारा (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **सत्यस्य** = सत्य का (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। **अपिहितम्** = ढका हुआ (हि - जाना, पाना, प्रेरणा करना, अपि-हि - आच्छादित करना, अन्तर्हित होना, ढकना)। **मुखम्** = मुख, सत्य स्वरूप (मुख - मुख्य होना, जाना, खाना)। **ओम्** = परमात्मा (अव्यय)। **खम्** = सर्वव्यापी (अव्यय)। **ब्रह्म** = बृहत्, बड़ा, अधिक (बृह् - वृद्धि होना, अधिक होना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना)॥ **17** ॥

189. ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ओम् खम् ब्रह्म। ओम् खम् ब्रह्म ॥ 18 ॥

काव्यानुवाद

परम पुरुष आदित्य जो, मैं भी हूँ वह सत्य।
ओम् ब्रह्म व्यापक परम। ओम् ब्रह्म व्यापक परम ॥ 18 ॥

संहितापाठ

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओम् खं ब्रह्म॥ 18॥

(ऋषि - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्द - गायत्री, स्वर-षड्ज)

मन्त्रार्थ :- यो जो **असौ** यह **आदित्ये** अविनाशी **पुरुषः** पुरुष (परम चेतन सत्ता परमात्मा है), **सो** वह **असौ** यह **अहम्** मैं (हूँ)। **ओ3म्** ओम् **खम्** सर्वव्यापक **ब्रह्म** बड़ा, बृहत्, महान् (है)॥ 18॥

भावार्थ :- परम सत्य का साक्षात्कार सम्भव है, स्वाभाविक है, अवश्य हो जायेगा। सांसारिक आवरण से मुक्त होकर हम देखते हैं कि जो आदित्य अर्थात् अविनाशी परम चेतन सत्ता परमात्मा है, वही मैं भी हूँ। वेद में तो आत्मा-परमात्मा एक ही हैं। वेद में आत्मा शब्द से ही परमात्मा का बोध कराया गया है। हम सांसारिक चमकदार आवरण के कारण इस सत्य का अनुभव नहीं कर पाते हैं। इसके हटने पर हमें जीव-ब्रह्म-सृष्टि की एकता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। यही सत्य है क्योंकि ओम् खम् ब्रह्म अर्थात् ओम् विराट सर्वव्यापक, सबसे बड़ा तथा महान् है। सब कुछ ओम् ही तो है और यही तो परम सत्य है॥ 18॥

विशेष :- आदित्य अर्थात् अदिति अथवा अदिति से उत्पन्न, अदिति से सम्बन्धित। अ-दिति का अर्थ है, अखण्डनीय अविनाशी, अक्षय तथा किसी का खण्डन न करने वाला। अ उपसर्ग का अर्थ है निषेध, नकार, नहीं। दी धातु का अर्थ है क्षय होना तथा दो धातु का अर्थ है खण्डन करना। अथवा (आदि + त्य) अर्थात् आदि तत्व के रूप में परम चेतन सत्ता परमात्मा। ओम् परमात्मा का मुख्य नाम है, यह अव्यय है। परमात्मा स्वयम् अव्यय है तो उसका नाम ओम् शब्द भी अव्यय है। ब्रह्म शब्द बृह् धातु से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है वृद्धि होना, अधिक होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना। परमात्मा सबसे बड़ा है, सम्पूर्ण सृष्टि के रूप में वही व्यक्त हुआ है। वह उसमें परिव्याप्त

होकर उससे भी अधिक है। वह हमें उठाता है, गिरने से बचाता है, उद्यम करना, उद्योग करना सिखाता है, उसके लिए प्रेरणा तथा सामर्थ्य प्रदान करता है। वह शब्द करने वाला है। विशेष रूप से वेद को उसकी वाणी, उसका ही शब्द माना जाता है। इसीलिए वेद को शब्द-ब्रह्म तथा परमात्मा का शब्द स्वरूप ही कहा जाता है। वही हमको भी बोलना सिखाता है, वाणी की सामर्थ्य प्रदान करता है। वैदिक साहित्य-संस्कृति में परमात्मा का प्रमुख नाम ओम् है तथा अग्नि, इन्द्र आदि नाम गुणवाची विशेषण हैं। वेद में उसके लिए ब्रह्म शब्द को भी प्रमुख माना गया है। ब्रह्म शब्द का प्रयोग सबसे बृहत्, बड़ा, महान् होने को प्रमुखता देते हुए किया गया है॥ 18॥

पदार्थ :- यो = जो (सर्वनाम)। **असौ** = यह (सर्वनाम)। **आदित्ये** = आदित्य, अदिति से उत्पन्न, अदिति से सम्बन्धित (अ-दिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना, दो - खण्डन करना)। **पुरुषः** = पुरुष (पुर् - मुख्य होना, अग्रसर होना)। **सो** = वह (सर्वनाम)। **असौ** = यह (सर्वनाम)। **अहम्** = मैं (सर्वनाम)। **ओम्** = परमात्मा (अव्यय)। **खम्** = सर्वव्यापी (अव्यय)। **ब्रह्म** = बृहत्, बड़ा, महान्, अधिक (बृह् - वृद्धि होना, अधिक होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना)॥ 18॥

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म॥

वेद पढ़ो सब वेद पढ़ाओ। वैदिक भाषा को अपनाओ॥
हवन-कुण्ड, मूर्तियाँ हटाओ। पुनर्जन्म भ्रमजाल मिटाओ॥
मिथ्या रूढ़िवाद को छोड़ो। देव-देवियों का भ्रम तोड़ो॥
सभी अन्ध-विश्वास मिटाओ। वेद-धर्म की ज्योति जलाओ।
ग्रह-नक्षत्र की पूजा छोड़ो। दिशाशूल से नाता तोड़ो॥
सभी दिशा, सब पल शुभ पाओ। मानव जाति एक सब गाओ॥

स्वामी शरण, चतुर्वेद भाष्यकार

ॐ

स्वामी शरण कृत साहित्य

मो. 9839105629, 8687849004

1. ऋग्वेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य के इस सार-संक्षेप संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

2. सामवेद भाष्य :- सामवेद भाष्य के इस सम्पूर्ण संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

3. अथर्ववेद भाष्य :- अथर्ववेद भाष्य के इस सार-संक्षेप संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का

प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

4. यजुर्वेद भाष्य :- यजुर्वेद भाष्य के इस सम्पूर्ण संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

5. वेदायन भाष्य :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ तथा सरस गेय पद्यानुवाद भी दिया गया है। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

6. वेदायन प्रवचन :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का

मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ तथा सरस गेय पद्यानुवाद भी दिया गया है। इसके साथ ही इन मन्त्रों पर विस्तृत प्रवचन भी इस पुस्तक में संकलित हैं। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है। सभी के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

7. वेदायन (सरल पाठ, काव्यानुवाद, भावार्थ सहित):- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ, काव्यानुवाद एवम् भावार्थ। **रु. 100.00**

8. वेदायन (सरल पाठ, काव्यानुवाद) :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ, काव्यानुवाद एवम् भावार्थ। वेदपाठ तथा उपासना के लिए। **रु. 100.00**

9. वेद सूक्तायन :- चारो वेदों से चुने हुए 15 प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ (छन्द पाठ), मन्त्रार्थ, विशेष भावार्थ-व्याख्या, व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद।
रु. 100.00

10. यजुर्वेद एकादशी :- यजुर्वेद के अन्तिम 11 अध्यायों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ दिया गया है। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है।

जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए उपयोगी संस्करण।
रु. 500.00

11. चतुर्वेद सरल पाठ :- प्रथम बार प्रस्तुत सन्धियों से मुक्त चारों वेदों का सरल पाठ जन साधारण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। (बृहद् आकार) **रु. 2500.00**

12. ऋग्वेद सरल पाठ :- ऋग्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। (बृहद आकार) **रु. 900.00**

13. सामवेद सरल पाठ :- सामवेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 500.00**

14. अथर्ववेद सरल पाठ :- अथर्ववेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। (बृहद आकार) **रु. 700.00**

15. यजुर्वेद सरल पाठ :- यजुर्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 700.00**

16. वैदिक धात्वादि कोश :- पाणिनि तथा काशकृत्स्न प्रोक्त धातुपाठों को समाहित कर सम्पूर्ण धातुकोश तैयार किया गया है। उपसर्ग, अव्यय, संख्या, सर्वनाम शब्द भी दिये गये हैं। इसकी सहायता से वेद सहित सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का अर्थ किया जा सकता है। अत्यन्त उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

17. वैदिक शब्दकोश :- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज, व्याकरण-सम्मत प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ। इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत वैदिक शब्दकोश। (वृहद आकार) **रु. 900.00**

18. वैदिक शब्दकोश (लघु संस्करण) :- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज, व्याकरण-सम्मत प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ। इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत वैदिक शब्दकोश। **रु. 200.00**

19. सरल संस्कृत व्याकरण :- व्याकरण के मूल तत्वों पर

आधारित इस पद्धति से शब्द रूप, धातु रूप, पाणिनीय सूत्र रटे बिना एक मास में संस्कृत पढ़ना, लिखना, बोलना सीख सकते हैं। दशकों के अनुभव के बाद प्रस्तुत उपयोगी चमत्कारिक व्याकरण प्रणाली। **रु. 95.00**

20. वैदिक इतिहास :- ब्रह्मा व मनु से आरम्भ कर बुद्ध तक का सम्पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास एक पुस्तक में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। सूर्यवंश की 128 पीढ़ियों का इतिहास प्रथम बार प्रस्तुत किया है। सूर्यवंश, चन्द्रवंश की शाखाओं सहित मनु से भोज तक सम्पूर्ण वंशावली भी दी गयी है। **रु. 200.00**

21. ओम् साधना :- ओम् साधना, वैदिक संस्कृति, वैदिक आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना। **रु. 200.00**

22. चिन्तन प्रवाह :- वैदिक संस्कृति तथा जीवन दर्शन सम्बन्धी चिन्तन। **रु. 500.00**

23. वैदिक विज्ञान :- वैदिक संस्कृति, आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना। **रु. 50.00**

24. युगबोध :- प्रबन्ध काव्य। **रु. 300.00**

25. चेतना :- काव्य संकलन। **रु. 100.00**

26. नवांकुर :- काव्य संकलन। **रु. 20.00**

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म॥

आगामी प्रकाशन योजना

1. वैदिक व्याकरण : पंचपाठी व्याकरण का समयानुकूल प्रस्तुतीकरण। अष्टाध्यायी सूत्रों का अनुवृत्ति सहित प्रस्तुतीकरण, जिससे प्रत्येक सूत्र स्वयम् ही सम्पूर्ण अर्थ स्पष्ट कर सके। व्यापक प्रभाव वाले सूत्रों को महत्व देते हुए, अपवादों को स्पष्ट करना तथा उनकी सीमाओं का स्पष्टीकरण करना। पंचपाठी की अन्य पुस्तकों का भी इसी भाँति सम्पादन तथा उणादि कोष आदि का अकारादि क्रम से प्रस्तुतीकरण।

2. वैदिक महापुराण : पुराण विद्या का व्यापक शोधपरक अध्ययन कर पंच-लक्षणों के आधार पर सम्पादन।

3. वैदिक जीवन : वैदिक संस्कृति तथा जीवन दर्शन के साथ ही वैदिक साहित्य का सम्पूर्ण परिचय।

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म॥

वेदायन भाष्य स्वामी शरण

अस्मिता

मन्दगति प्रशिक्षण (स्लो लर्नर्स सेंटर) एवम् मानसिक स्वास्थ्य केन्द्र

सेक्टर 18, म. नं. 444, अस्मिता पार्क के निकट, रिंग रोड, इन्दिरा नगर, लखनऊ - 16, मो. : 9415104155, 9415414252, 0522-2343257

डॉ. कृष्णदत्त
पूर्व चिकित्सा मनोवैज्ञानिक
के.जी.एम.यू. लखनऊ)

डॉ. अल्पना रस्तोगी,
वरिष्ठ परामर्शदात्री
(पूर्व मनोवैज्ञानिक निपसिड)

डॉ. कृष्णदत्त एवं श्रीमती माधुरी

उपलब्ध सेवाएँ

- बुद्धि (I. Q.) परीक्षण
- व्यक्तित्व (Personality) परीक्षण
- अभिक्षमता (Aptitude) परीक्षण
- कैरियर काउन्सेलिंग (Career Counseling)
- मनोवैज्ञानिक सलाह व परामर्श (जीवन के किसी पड़ाव पर)
- मन्दगति मन्दबुद्धि बच्चों के प्रशिक्षण एवं पुनर्वास सम्बन्धी सलाह
- ADHD, autism जैसी समस्याओं हेतु प्रशिक्षित काउन्सेलर्स का दिशा निर्देश।
- प्रशिक्षु मनोवैज्ञानिकों के लिए Assessment & Counseling Course

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः,
सो असौ अहम्, ॐ खम् ब्रह्म॥

डॉ. कृष्णदत्त
(संरक्षक)

डॉ. उमेश पालीवाल
(संरक्षक)

स्वामी शरण
(चतुर्वेद भाष्यकार)

अम्बिका प्रसाद वेदव्यास
(संचालक)

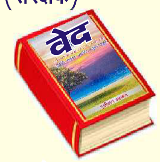

वेद पीठ

★ वेद पाठ ★ प्रशिक्षण ★ पुस्तकालय ★ संस्कार

87/6, शास्त्री नगर, पुरानी रामलीला पार्क, कानपुर, उप्र
सम्पर्क : 9839105629, 8687849004, 6390254281

गायत्री साहित्य केन्द्र

वैदिक साहित्य मिलने का प्रमुख स्थान

117/एच-1/02, पालीवाल भवन, पाण्डु नगर, जे. के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005
मो. 9839105629, 8687849004, 7985402016

वेदायन भाष्य स्वामी शरण